1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-9, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2025, ₹100/-

कला और कलाकारों को समर्पित राष्ट्रीय पत्रिका का 29 वाँ वर्ष
137 वाँ अंक...

# कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

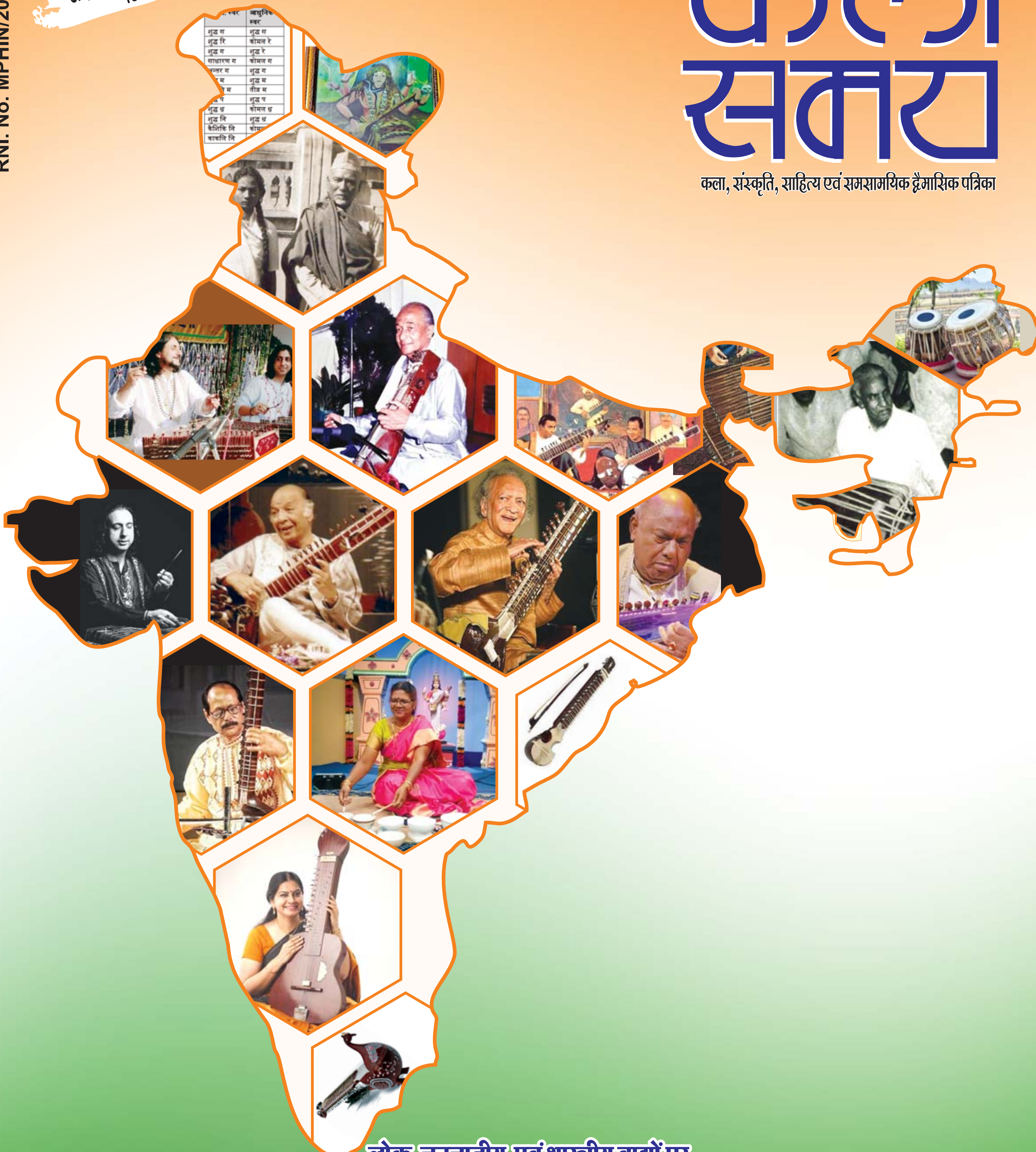

## लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केन्द्रित विशेषांक (भाग-2)

अतिथि संपादक : प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

# कला समय के प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास का विशेष सम्मान

### श्रीमंत महाराजा यशवंत राव होल्कर प्रथम की छत्री स्थल भानपुरा
### महाराजा यशवंत राव होल्कर की 214 वीं स्मृति तिथि पर आयोजन संपन्न
### होल्कर युगीन ऐतिहासिक धरोहरों को सहेजें
### महाराष्ट्र, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश के श्रद्धालुओं ने अर्पित की पुष्पांजलि

भानपुरा, 28 अक्तूबर 2025 । भानपुरा को एक समय अपनी राजधानी का गौरव दिलाने वाले, स्वतंत्रता प्रेमी नरेश श्रीमंत यशवंत राव होल्कर प्रथम की 214 वीं पुण्यतिथि पर गरिमा मय आयोजन का शुभारंभ ध्वज उतोलन एवं शिवार्चन से शुरू हुआ। स्वागत भाषण राम भाऊ लांडे ने दिया। आयोजन समिति ने सभी अतिथियों को स्मृति चिह्न, पुष्पमाला अंग वस्त्र भेंट कर किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पूर्व विधायक देवीलाल धाकड़ ने आश्वस्त करते हुए कहा कि होल्कर युगीन सभी ऐतिहासिक धरोहरों को सहेजा जाने और उनका संरक्षण किए जाने का प्रयास शासन प्रशासन के साथ मिलकर किया जावेगा। भानपुरा अंचल ऐतिहासिक दृष्टि से संपन्न है। प्रमुख वक्ता घनश्याम होल्कर इतिहासकार भरतपुर ने ओजस्वी वाणी मे भावुक कर देने वाला प्रेरक वक्तव्य दिया और होल्कर युगीन विरासतों को बचाने की बात कही। कार्यकम में भंवरलाल श्रीवास संपादक कला समय भोपाल, और चित्रकार अनुराग मेहता उदयपुर,को महाराजा यशवंत राव होलकर प्रथम के 214 स्मृति दिवस सहारोह में महाराज का छत्री स्थल पर श्री श्रीवास और श्री मेहता ने अपने विचार भी रखें तथा आभार व्यक्त किया।कमलेश राव पंधरीनाथ ढाले, रामेश्वर काले, सुभाष मेदंड, रतेश लबासे, हरीश जोहरे महाराष्ट्र ने तथा पुराविद डॉ. प्रद्युमन भट्ट ने संबोधित किया। कार्यक्रम में ठाकुर अर्जुन सिंह चन्द्रावत, डॉ. देवेंद्र कुमार, डॉ अवधेश पाण्डेय तथा होल्कर कॉलेज के प्राध्यापक, धर शर्मा लक्ष्मी नारायण सोनी अजय तिवारी, सहित राजस्थान मध्यप्रदेश के विभिन्न शहरों से आये श्रद्धालु उपस्थित थे। आभार मल्हारगढ़ के समाजसेवी पूर्व पार्षद मनोज फनसे ने माना, समारोह के दौरान कला समय के प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास को विशेष सम्मान से सम्मानित किया गया। संचालन राम भाऊ और घनश्याम होल्कर ने किया।

# जन परिषद संस्था मंदसौर द्वारा प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास का सम्मान

मंदसौर । साहित्य संस्कृति और संस्कार परस्पर जुड़े हुए हैं इनका संरक्षण भविष्य की पीढ़ी को राष्ट्र भाव से जोड़ने में अहम भूमिका है श्री श्रीवास ने मंदसौर में चल रही साहित्यिक सांस्कृतिक और रचनात्मक गतिविधियों की सराहना करते हुए कहा कि यह अच्छे वातावरण निर्माण में सहायक है। समारोह के विशिष्ट अतिथि दशपुर प्राच्य शोध संस्थान निदेशक एवं वरिष्ठ इतिहासकार श्री कैलाश चन्द्र पाण्डेय ने हाल में नई दिल्ली में सम्पन्न संस्कृति मंत्रालय की अंतर्राष्ट्रीय पाण्डु लिपि एवं लिपि शास्त्र सेमिनार में शामिल होने और अपनी प्रस्तुति का विवरण दिया। उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश से दिल्ली के विज्ञान भवन में सम्पन्न अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में श्री पाण्डेय एकमात्र प्रतिनिधि थे और केंद्रीय संस्कृत एवं पर्यटन मंत्री श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत ने श्री पाण्डेय की विशिष्टता को सम्मान दिया। जन परिषद समारोह की अध्यक्षता सार्थक संस्था फाउंडर एवं पर्यावरणविद डॉ उर्मिला सिंह तोमर ने की । संचालन डॉ घनश्याम बटवाल ने किया और आभार सचिव श्री नरेंद्र कुमार त्रिवेदी ने माना। इसके पूर्व साहित्यकार श्री भंवरलाल श्रीवास एवं पुरातत्व विद्वान श्री कैलाश चन्द्र पाण्डेय का अभिनन्दन और सम्मान जन परिषद मंदसौर चैप्टर द्वारा किया गया। इस मौके पर अखिल भारतीय साहित्य परिषद जिला सचिव नंदकिशोर राठौर, कवि गोपाल बैरागी स्पीक मैके को ऑर्डिनेटर श्रीमती चंदा डांगी, सक्षम संस्था सचिव डॉ रविन्द्र पाण्डेय, शिक्षाविद अजीजुल्लाह खालिद, कवि लेखक अजय डांगी, राजेन्द्र तिवारी कलाकार राहुल श्रीवास एवं अन्य गणमान्य जन उपस्थित रहे।

- डॉ. घनश्याम बटवाल की रिपोर्ट

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+09=29) पूर्णांक-137,

वर्ष-9, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2025, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

# कला समय

**कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका**

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

**संरक्षक**
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव

**कानूनी सलाहकार**
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)

**परामर्श**
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य

**सांस्कृतिक प्रतिनिधि**
चेतना श्रीवास

**वेबसाइट प्रबंधन**
मयंक अग्रवाल

रेखाचित्र : मनोहर काजल

**संपादक**
भँवरलाल श्रीवास

**सलाहकार संपादक**
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

**सह संपादक**
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी

**उप संपादक**
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति

नरिन्दर कौर
**प्रबंध संपादक**

**संपादक मंडल**
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
**साहित्य**

अरुण तिवारी
**समसामयिक**

हरीश श्रीवास
**कला, संस्कृति**

**सदस्यता सहयोग राशि:**

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| वार्षिक | : | 600 (व्यक्तिगत) | 700 (संस्थागत) | साधारण डाक |
| द्वैवार्षिक | : | 1200 (व्यक्तिगत) | 1400 (संस्थागत) | साधारण डाक |
| चार वर्ष | : | 2300 (व्यक्तिगत) | 2700 (संस्थागत) | साधारण डाक |
| आजीवन (10 वर्ष के लिए) | : | 10,000 (व्यक्तिगत) | 12000 (संस्थागत) | साधारण डाक |

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

**कार्यालय सम्पर्क :**
**संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग**
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

**ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :**
**'कला समय' का बैंक खाता विवरण**

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केन्द्रित विशेषांक ( भाग-2 ) के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ. मोहन यादव

मंजरी सिन्हा

अद्वैतवादिनी कौल

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

डॉ. मल्लिका बनर्जी

डॉ. कमला शंकर

वीणा पहाड़ी

केशव परांजपे

डॉ. रमा दास

आरती राव

सुकन्या सरकार

डॉ. शुप्रीत सिंह

डॉ. कुमार ऋषितोष

डॉ. लयोत्तमा उप्रेति

डॉ. प्रिया तिवारी

डॉ. कुलविन्दर कौर

सौगत दास

डॉ. वीथिका टिक्कू

डॉ. राहुल कुमार

सुज्ञान दानी

आचार्य जागृति

प्रो. रवि शर्मा

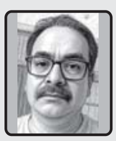
डॉ. प्रदीप मिश्र

गौरीशंकर दुबे

डॉ. पूरन सहगल

आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

डॉ. प्रताप सिंह सोढ़ी

इस प्रतिष्ठा विशेषांक की अतिथि संपादिका

**सुनीरा कासलीवाल व्यास**

दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में प्रोफेसर एवं भूत पूर्व डीन व विभागाध्यक्ष, वाद्यों पर शोधपरक ग्रंथ की लेखिका तथा राजस्थानी वाद्यों की विशेषज्ञा

## इस बार


- **अतिथि संपादक की कलम से...**

  वाद्य कला का रिश्ता मानव सभ्यता के साथ जुड़ा है 5
- **संपादकीय**

  प्रभात–कालीन पक्षी गाकर सूर्योदय की घोषणा करता ... 7
- **आलेख**

  सितार का इटावा इमदादख़ानी घराना। / मंजरी सिन्हा 9

  कश्मीर के वाद्य -एक अन्वेषण / अद्वैतवादिनी कौल 13

  राजस्थान की समृद्ध शास्त्रीय वाद्य-परम्परा / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 18

  तुम्बे का इतिहास एवं महत्व / प्रो. रवि शर्मा 22

  प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र और यूनान के .../डॉ. मल्लिका बनर्जी 25

  गिटार की विकास यात्रा एवं भारतीय संगीत में ... / डॉ. कमला शंकर 29

  कंठ के निकट का वाद्य – सारंगी / वीणा पहाड़ी 32

  महाराष्ट्र के लोकसंगीत के तालवाद्य - संबल ... / केशव परांजपे 35
- **संस्मरण**

  महान सरोद वादक, पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन.../ डॉ. रमा दास 38
- **आलेख**

  पक्कसारणि व सारणि मार्ग: आधुनिक कर्णाटक संगीत .../ आरती राव 40

  गुलज़ार की मीरा (1979) में पं. रविशंकर का योगदान.../ सुकन्या सरकार 43

  गुरमत संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का विश्लेषण .../ डॉ. शुप्रीत सिंह 45
- **साक्षात्कार**

  ''मैं शास्त्र को कभी नहीं छोड़ता'' युवा संतूर वादक श्री अभय सोपोरी से सुनीरा कासलीवाल की बातचीत 49
- **आलेख**

  अवनद्ध वाद्य परंपरा में स्त्री सहभागिता .../ डॉ. कुमार ऋषितोष 53

  भारतीय वाद्यों में तन्त्रियों का क्रमिक विकास / डॉ. लयोत्तमा उप्रेति 56

  तबला वाद्य की उत्पत्ति एवं विकास / डॉ. प्रिया तिवारी 59

  "शरन रानी वाद्य वीथिका" देश को एक अमूल्य... / डॉ. कुलविन्दर कौर 62

  इसराज: इतिहास और शांतिनिकेतन अनुलग्नक / सौगत दास 65

  शततंत्री से संतूर तक / डॉ. वीथिका टिक्कू 69

  राजस्थान की संस्कृति और परम्परा / डॉ. राहुल कुमार 71

  भारतीय संगीत में जलतरंग वाद्य / सुज्ञान दानी 79

  वाद्य संगीत में योग का तत्व : शरीर, मन और आत्मा.../ आचार्य जागृति 81

  जनजातीय समुदायों की पारंपरिक लोककथाओं में .../ डॉ. पूरन सहगल 83

  मध्यप्रदेश के स्थापना दिवस पर विशेष... / डॉ. मोहन यादव 86

  उस्ताद अली अकबर खां साहब... जिनके नाम से.../ डॉ. प्रदीप मिश्र 88

  शंकराचार्य और रामानुजाचार्य / गौरी शंकर दुबे 90

  भारतीय ज्ञान परंपरा में महामाहेश्वर का .../ आचार्य प्रभुदयाल मिश्र 91
- **पुस्तक : समीक्षा**

  आचार्य मिश्र की कृति 'भारतीय ज्ञान.../ आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा 94

  राष्ट्रीय चेतना का उद्घोष करती कविताएँ / डॉ. प्रताप सिंह सोढ़ी 95
- **कला- चिन्तन**

  अभिनंदन नया वर्ष और नव / भँवरलाल श्रीवास 97


---


**शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स,** भोपाल, 9981984888

**मुख्य आवरण** - कला समय

**छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार

**सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र :** मनोहर काजल

**आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

# वाद्य कला का रिश्ता मानव सभ्यता के साथ जुड़ा है

"सबसे पहला वाद्य कौनसा हुआ यह प्रश्न प्राय: पूछा जाता है जिसमें मतमतान्तर हैं। डॉ. बी.सी.देवा के अनुसार मनुष्य का शरीर ही सर्व प्रथम वाद्य बना। जिस तरह मनुष्य ने अपने शरीर के विभिन्न हिस्सों को थपथपाकर विविध ध्वनियों का निष्पादन किया और इस तरह उसे विभिन्न ध्वनि प्रकारों को उत्पन्न करने की प्रेरणा मिली। कुछ विद्वान घन वाद्यों को सर्वप्रथम वाद्य मानते हैं जिनमें पत्थर के दो टुकड़ों को आपस में टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। यह वास्तव में ताली का ही पर्याय है।"

भारतीय वाङ्गमय में 'वाद्य' उस उपकरण अथवा यंत्र को कहते हैं जो बोलता है अथवा जिसे बोलवाया जा सकता है। 'वदति इति वाद्य:' यह किसी भी वाद्य की परिभाषा कही गयी है। 'वाद्य' संज्ञा 'वद्' से बनी है जिसका अर्थ है बोलना। वद् की उत्पति वाक् से होती है। चूंकि वाक् की उत्पत्ति सर्वप्रथम मानव कण्ठ से होती है अत: हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मानव कण्ठ को भी वाद्य मानते हुए इसे 'गात्र वीणा' अथवा ईश्वरी वीणा, यह कहा है।

वाद्यों की उत्पत्ति कब व कैसे हुई इस प्रश्न के उत्तर में लगभग सभी विद्वान एकमत हैं कि मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही वाद्यों की उत्पत्ति हुई। मानव जब पाषाण युग में था उस समय मानव निर्मित वाद्य पाषाण के थे और आज जब हम कम्प्यूटर के युग में हैं हमारे वाद्य भी कम्प्यूटराइज्ड हो गए हैं।

सबसे पहला वाद्य कौनसा हुआ यह प्रश्न प्राय: पूछा जाता है जिसमें मतमतान्तर हैं। डॉ. बी.सी.देवा के अनुसार मनुष्य का शरीर ही सर्व प्रथम वाद्य बना। जिस तरह मनुष्य ने अपने शरीर के विभिन्न हिस्सों को थपथपाकर विविध ध्वनियों का निष्पादन किया और इस तरह उसे विभिन्न ध्वनि प्रकारों को उत्पन्न करने की प्रेरणा मिली। कुछ विद्वान घन वाद्यों को सर्वप्रथम वाद्य मानते हैं जिनमें पत्थर के दो टुकड़ों को आपस में टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। यह वास्तव में ताली का ही पर्याय है।

कई विद्वान सुषिर वाद्यों को सर्वप्रथम वाद्य मानते हैं क्योंकि ये वाद्य मनुष्य को प्रकृति से मिले हैं, जिनमें शंख और बाँसुरी प्रमुख हैं। बाद में इन्हीं ध्वनियों के आधार पर मनुष्य ने मिट्टी को पकाकर विविध सीटियों का निर्माण किया जिनसे स्वर लहरी भी प्राप्त होती थी।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान 'कर्ट सैक्स' 'रैटिल' यानि झुनझुने को सबसे पहला वाद्य मानते हैं। इसकी प्रेरणा भी मनुष्य को प्रकृति से ही मिली। पेड़ों पर लगने वाले फल जब सूख जाते थे तो उनके भीतर के बीजों से विभिन्न ध्वनियाँ प्राप्त होती थीं। इसी से मनुष्य को झुनझुना बनाने की प्रेरणा मिली होगी। जिससे आगे चलकर घुंघरु जैसे घन वाद्यों की निर्मिती की गई।

इन सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवत सबसे पहले घन वाद्य फिर सुषिर वाद्य और इनके बाद अवनद्ध वाद्य आए होंगे क्योंकि पेड़ की लकड़ी के कुन्दे को काटकर उसपर खाल मंढ़ने की प्रक्रिया सभ्यता के अगले चरण का क्रम रहा होगा। सभी विद्वान एक मत हैं कि तंत्री वाद्य सभ्यता के क्रम में सबसे उन्नत वाद्य हैं। इनकी उत्पत्ति मनुष्य के धनुष बाण से हुई होगी ऐसा अनुमान लगाया जाता है। और यह वाद्यों के क्रम में सबसे बाद में अस्तित्व में आए होंगे। वैसे भी मनुष्य को लय पहले मिली और स्वर बाद में आया होगा क्यूंकि विकास सदैव स्थूल से सूक्ष्म के क्रम में होता है।

प्रश्न उठता है कि किसी भी वाद्य में वो मूलभूत घटक क्या हैं जो उसे वाद्य की श्रेणी में रखते हैं। इसका उत्तर यही है कि किसी भी वाद्य में दो चीजों का होना अनिवार्य है। पहला वो पदार्थ या वस्तु जो कम्पमान है दूसरा उन कम्पनों को गूंज देने वाली कोई आकृति। उदाहरण के लिए यदि किसी अवनद्ध वाद्य को देखेंगे तो उसकी आच्छादित पुड़ी या छावनी कम्पमान वस्तु किन्तुइसके कम्पन को गूंज देने का काम इसके साथ जुड़ी हुई गोलाकार आकृति देती है जिस पर यह पुड़ी मढ़ी होती है। तबला हो नगाड़ा हो या छोटी दिमड़ी हो पुड़ी की ध्वनि को बड़ा करने का काम इसके साथ जुड़ी हुई आकृति ही करती है जिसे-अंग्रेजी में 'रैसोनेटर' कहते हैं। सितार, तानपुरा, रूद्र वीणा इत्यादि तंत्री वाद्यों में गूंज उत्पन्न करने का

काम तुम्बे करते हैं जो हमें प्रकृति से प्राप्त होते हैं।

'रैसोनेटर' के आकार-प्रकार और इसको बनाने के लिए प्रमुख धातु के बदलाव के साथ वाद्य की ध्वनि और उसकी टोनल क्वालिटी में अंतर प्राप्त होता है। वाद्य निर्माण एक अत्यन्त उच्च कोटि की कला है जिसका विकास मानव सभ्यता के प्रारम्भ से हुआ और यह विकास अभी भी चल रहा है।

विश्व की विभिन्न सभ्यताओं के वाद्यों की बनावट और उनके निर्माण की प्रक्रिया को जानना न सिर्फ हमें उस सभ्यता के सांगीतिक इतिहास और विकास की जानकारी देता है वरन् वहाँ के लोग कितने वैज्ञानिक हैं और सभ्यता कितनी उन्नत है इसकी भी जानकारी देते हैं। इसके साथ ही उस क्षेत्र विशेष के पेड़ों और जानवरों के बारे में भी पता चलता है। क्योंकि वाद्यों के निर्माण में परम्परागत रूप से विविध पेड़ों की लकड़ी जानवरों की खालों, हड्डी और सीगों का प्रयोग होता है। तंत्री वाद्यों की तंत्री निर्माण के लिए प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार की घासों का और तत्पश्चात पेड़ों के महीन रेशों, रेशम के धागों और साथ ही विविध पशुओं की आँतो का प्रयोग किया जाता रहा है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में गिद्ध के पंखों की हड्डियों से तंत्री वाद्यों की सारिकाएं (अंग्रेजी में जिन्हें फ्रेट्स कहते हैं) बनाने का उल्लेख मिलता है। राजस्थान में पाए जाने वाले वाद्य जन्तर में गोह नामक पशु की चमड़ी से सारिकाओं का निर्माण होता है।

विश्व की विभिन्न जातियों और सभ्यताओं के विविध वाद्यों का विकास क्रम खोजना और उसका अध्ययन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है जो रोचक होने के साथ ज्ञानवर्धक और विस्मय कारक भी होता है।

विभिन्न जनजातियों, लोक और शास्त्रीय संगीत के विविध वाद्यों पर आधारित 'कला समय' का यह द्वितीय विशेषांक वाद्यों के ऐसे ही विस्मयकारी लोक का दर्शन आपको कराएगा, ऐसा मेरा मानना है।

इस अंक के लिए विशेष तौर से वरिष्ठ लेखकों जैसे मंजरी सिन्हा, मधु भट्ट तैलंग, कमला शंकर, आरती राव, वीणा पहाड़ी, रमा दास, प्रदीप मिश्र, प्रिया तिवारी ने अपने अमूल्य लेख दिए हैं इन्होने हमारे देश की शास्त्रीय परम्पराओं में प्रचलित वाद्यों पर गम्भीर सामग्री उपलब्ध कराई है।

अद्वैतवादिनी कौल, केशव परांजपे, राहुल कुमार एवं शुप्रीत सिंहने क्रमश: काश्मीर, महाराष्ट्, राजस्थान और पंजाब के वाद्यों पर शोधपरक आलेखों को प्रदान किया हैं।

संतूर और जल तरंग वाद्यों पर वीथिका टिक्कू और सुज्ञान दानी के आलेख हैं। डॉ. कुमार ऋषितोष ने महिला अवनद्ध वादिकाओं पर रोचक सामग्री दी है।

संतूर के अग्रणी युवा वादक श्री अभय रुस्तम सोपोरी का साक्षात्कार आपको सूफियाना घराने के सोपोरी बाज का परिचय देगा।

बाँकिया: श्यामाराम

रवि शर्मा जी के लेख से पाठकों को विविध तंत्री वाद्यों में प्रयुक्त होने वाले तुम्बे के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।

सौगत दास के आलेख से इसराज वाद्य और शान्तिनिकेतन के इतिहास का पता चलेगा। सुकन्या सरकार के आलेख में मीरा फिल्म में पं. रविशकर जी के अविस्मरणीय संगीत में वाद्यों के प्रयोग की जानकारी प्राप्त होगी। लयोत्तमा उप्रेती के शोधपरक लेख से भारतीय वाद्यों के क्रमिक विकास एवं मल्लिका बनर्जी के आलेख से प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित तंत्री वाद्यों की जानकारी प्राप्त होगी। आचार्य जागृति जी और डॉ. पूरन सहगल के आलेख अपने आप में अनूठे विषय पर हैं।

सभी विद्वान लेखकों को उनके आलेखों के लिए बहुत-बहुत आभार व्यक्त करते हुए हर्ष है कि सभी आलेखों से सुसज्जित यह वाद्य विशेषांक भाग 2 आपके हाथों में है। वाद्यों की अनूठी और रोमांचकारी जानकारियों से भरा यह विशेषांक आपको सुरूचिपूर्ण लगेगा। यदि इस विशेषांक से आपके मन में वाद्यों की इस अचरज भरी दुनियाँ की क्षणिक भी झांकी मिले और आप इस जानकारी को बढ़ाने के लिए प्रवृत्त होंगे तो हमारा यह प्रयास सफल होगा।

कला समय के श्री भंवरलाल श्रीवास ने इस अंक को संपादित करने का जो कार्य भार मुझे दिया उसके लिए मैं सम्पूर्ण कला समय परिवार की आभारी हूँ। शेष शुभ

**देव उठनी एकादशी**
**1 नवम्बर 2025**

**सुनीरा कासलीवाल व्यास**
लेखिका : दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में प्रोफेसर एवं भूत पूर्व डीन व विभागाध्यक्ष, वाद्यों पर शोधपरक ग्रंथ की लेखिका तथा राजस्थानी वाद्यों की विशेषज्ञा

संपादकीय

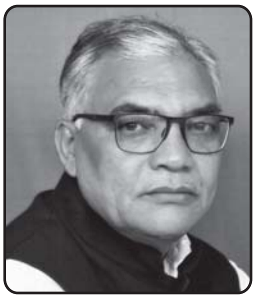

# प्रभात–कालीन पक्षी गाकर सूर्योदय की घोषणा करता, वैसे ही सारे संस्कार मंगलवाद्यों से सम्पन्न किए जाते हैं

**' तत् को पहले कहत हैं, वितत दूसरो जान।**
**तीजो घन चौथे शिखर, तानसेन परमान।।**
**तार लगे सब साज़ के, सो तत् ही तुम मान।**
**चरम मढ्यों जाको मुखर, वितत सु कहे बखान।।'**

प्रशान्त चेतना के बन्धन के समाज, मुख पर बिखरी रेखओं के बीच में उठी हुई सुडौल नासिक को गर्व के प्रमाण – पत्र के अतिरिक्त कौन – सा नाम दिया जावे! पर वह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व था, इतर अहंकार नहीं; इसी से उसके सामने मनुष्य, मनुष्य के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता है, स्पर्धा या ईर्ष्या का नहीं। ठीक उसी प्रकार 'कला सौन्दर्य का दिग्दर्शन है, सौन्दर्य दिव्यज्ञान का उद्घाटन है' वैसे ही वाद्य के प्रतीक से रस और उस रस से प्रतीकात्मकता की खोज है, जब कभी शंख, घण्टी, घण्टा, घड़ियाल की ध्वनि उत्पन्न हो तो वहाँ शंख, घण्टा, घण्टी ईश्वरोपासना का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार नगाड़ा, भेरी, दुन्दुभि, शंख , तुरहि, आदि वाद्य जिन स्थानों पर बजाए जाते हैं, उन स्थानों को बिना देखे ही हम यह समझ लेते हैं कि वहाँ युद्ध होने जा रहा या युद्ध की कोई घोषणा है। दृश्य सामने न होने पर ये वाद्य प्रतीकात्मक रूप से दृश्य का बोध कराते हैं, वाद्यों के प्रयोग से दृश्य न देखते हुए भी यह प्रतीत होता है, कि यह ध्वनि युद्ध की है या पूजा अर्चना आदि की। संगीत हमारे दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है, जिसके बिना हमारे उल्लास अधूरे हैं। संगीत में वाद्य और रस का अनूठा संयोग संगीत को और सारगर्भित बनाता है। संगीत वाद्यों में रस को लेकर पृथक्कीकरण पाया जाता है, जैसे कि सितार, शहनाई, वंशी आदि वाद्य श्रृंगार प्रधान वाद्य हैं। भेरी, मृदंग, दुन्दुभि युद्ध के लिए प्रेरित करने वीर रस युक्त वाद्य हैं। सारंगी इत्यादि वाद्य करुण रस प्रधान वाद्य हैं। वाद्यों में स्वरों के माध्यम से रस उत्पन्न किया जाता है, वाद्यों का रसात्मक स्वर वाद्य की विशेष बनावट पर निर्भर करता है। वाद्य सम्पूर्ण होते हैं, वाद्यों का अपना स्वरूप वादक पर निर्भर करता है, जैसे वाद्य हो, सितार तो यह चंचल प्रकृति का वाद्य है, इसमें श्रृंगार रस होता है, गंभीर वाद्य जैसे सारंगी करुण रस प्रधान है। तबला श्रृंगार रस प्रधान वाद्य है, वाद्य विशेष मानव के कोमल भावों को प्रकट करने में सक्षम होता है। रस संगीत को मूर्त रूप देता है, जो रसान्नुस्वादन करने पर मधुर और आनन्ददायी लगता है। सितार यदि समरसता पा ले तो फिर झंकार के जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह तो हर चोट के उत्तर में उठती है और सम-विषम स्वरों को एक विशेष क्रम में रखकर दूसरों के निकट संगीत बना देती है। यदि आघात या आघात का अभाव दोनों एक मौन या एक स्वर बन गए हैं, तब फिर संगीत का सृजन और लय सम्भव नहीं। आज सर्वत्र असंतोष और बेचैनी व्याप्त है। इससे संगीत ही राहत दिला सकता है। भारतीय संगीत हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। इसे सुरक्षित रखा जाना चाहिए। संस्कृति एवं संगीत के बिना जीवन नीरस हो जाएगा भारत में तो जीवन सदा संगीतमय रहा है। सामवेद संगीत की सर्वोतम धरोहर है। संगीत भक्ति का माध्यम रहा है। भगवान कृष्ण पूर्णावतार के रूप में पूज्य हैं और सदा बाँसुरी युक्त रहे हैं। उन्होंने कहा था – संगीत सीखे बिना किसी को मोक्ष नहीं मिल सकता। भगवान शंकर तो फक्कड़ होने के बावजूद संगीत के आदि सृष्टा माने जाते हैं। स्वदेशी संगीत मीठा संगीत है इसे विदेशी दूषण से बचाना चाहिए।

संगीत पूरी सृष्टि में परिव्याप्त है। वायुलहरी में भी उसकी गूँज है। रेडियों और ट्रांसमीटर्स ध्वनितरंगे चौबीसों घण्टे हमारे कानों में गूँजती रहती हैं। उन्हीं का पर्याय संगीत है। वर्षा की झड़ी, समुद्र के गर्जन, झरने की कलकल, पेड -पत्तों की चरमराहट और चिड़ियों की चहचहाहट में भी संगीत की ही ध्वनि है। सर्वविदित हैं कि संगीत के प्रभाव से दीपक जल उठते थे। मेद्य वर्षा करने लगते थे। पेड़-पौधों और फसलों की उपज में वृद्धि होने लगती है। फूल खिल उठते हैं। सर्प मुग्ध होकर, फन उठाकर डोलने लगता है। गायें जंगल से लौट आती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। कृष्ण की मुरलिया से तो सारा

❛आज सर्वत्र असंतोष और बेचैनी व्याप्त है। इससे संगीत ही राहत दिला सकता है। भारतीय संगीत हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। इसे सुरक्षित रखा जाना चाहिए। संस्कृति एवं संगीत के बिना जीवन नीरस हो जाएगा भारत में तो जीवन सदा संगीतमय रहा है। सामवेद संगीत की सर्वोतम धरोहर है। संगीत भक्ति का माध्यम रहा है। भगवान कृष्ण पूर्णावतार के रूप में पूज्य हैं और सदा बाँसुरी युक्त रहे हैं। उन्होंने कहा था – संगीत सीखे बिना किसी को मोक्ष नहीं मिल सकता। भगवान शंकर तो फक्कड़ होने के बावजूद संगीत के आदि सृष्टा माने जाते हैं। स्वदेशी संगीत मीठा संगीत है इसे विदेशी दूषण से बचाना चाहिए।❜

ब्रजमंडल गूँज उठता था और गोपियाँ अपने पिऊओं को छोड़-छोड़कर कुन्जवन में चली जाया करती थीं। ये मात्र किवदन्तियाँ नहीं है; आप संगीतज्ञ इस महान तथ्य को भली भाँति जानते हैं। संगीत के प्रभाव से वीरों में शौर्य जागता है। युद्ध में इसीलिए नगाड़े और बैंड बजाए जाते हैं। जन्म से मरण तक संगीत हमारे जीवन को छू गया है। बालक के जन्म होते ही घर की औरतें तशला या थाली बजा देती हैं, और मृत्यु को भी हमारे देश में एक समारोह माना गया है, अनेक जातियों और राज्यों में शवयात्रा के साथ भजन-कीर्तन होते रहते हैं। हमारी औरतें प्रात: हाथचक्की चलाते हुए गीत गया करती हैं। हमारी पीढ़ी का वह जमाना हाल ही में बीता है जब प्रात: उठते ही कहीं न कहीं से हमें प्रभाती का राग सुनाई पड़ जाता था। बालक को सुलाने में भी बहन और माता लोरियाँ गा-गाकर थपकियों से उसे सुला दिया करती थी। हमारे देश में प्रात:, सायं देवता की आरती व आराधना शंख, घंटा, झाँझ और करताल से तथा आधुनिक वाद्यों सहित भक्त समूह द्वारा हुआ करती है। नृत्य और रास भी उसके ही अंग हैं। नक्कारखानों में शेहनाई सदा गूँजा करती थी। हमारे सारे संस्कार मंगलवाद्यों और गीतों से सम्पन्न किए जाते हैं।

हमारे स्थापत्य और प्राचीन शिल्पों में संगीतमय कलाकारी बहुतायत से मौजूद सदा संगीतमय रहा है। लोकनर्तकों, लोकगायकों की तो बात ही निराली है। उनके द्वारा प्रस्तुत, साँगीत, हरिकीर्तन, पद, भजन, गीत, नृत्य नाटय, अभिनय तथा तंतु और घनवाद्यों का बाज सब संगीत की ही प्रस्तुतियाँ हैं। हमारे जनजातीय– माड़िया, करमा, गोंड़, भील जनजातियाँ, मछुआरे, धोबी, कहार, मल्लाह, किसान और मजदूर सभी श्रमजीवी अपने परम्परागत संस्कारों, रीति-रिवाजों और जातिगत त्यौहारों तथा वार्षिक उत्सवों में संगीतमय आनन्द की प्रस्तुतियाँ और प्रदर्शन करते रहते हैं। उनके उल्लास का क्या कहना ?

ढोल नृत्य

हजारों संतों और भक्त कवियों की वाणी – भक्तिमय लोकोंपदेश – संगीतमय भाषाओं, गाथाओं व छंदों, आर्याओं, पदों और भजनों में लिपिबद्ध है, संगीत जिनका मूलाधार है और जो गद्य रहित हैं। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, विद्यापति, नरसी मेहता, दादू, नानक, चैतन्य, रैदास, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ सभी ने संगीतमय प्रस्तुतियाँ दी है। हमारे हिन्दू-मुस्लिम सभी संगीतज्ञ उन्हीं रागों और रचनाओं को अपनी-अपनी अदाकारी में प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक रवीन्द्र संगीत से बंगाल छा गया है। इकबाल की शायरी सुब्रह्मण्य भारती के राष्ट्रगीत और कविवर झवेर चंद मेघाणी के राष्ट्रगीतों से उनके अपने-अपने क्षेत्रों की मातृवाणी गुंजरित हुई है। संगीत का हमारे जीवन में प्रभाव प्रकृतिप्रदत्त है। संगीत हमें चिंताओं, असाध्य रोगों से विमुख व मुक्त करता है। शारीरिक थकान उतारता है। नए कामों के लिए प्रेरणा उल्लास तथा स्फूर्ति प्रदान करता है। संगीत की महिमा अपार है। हम लोगों की पिछली पीढी पक्के गाने, रागिनियों, राग दरबारी तथा निर्गुणिया और सगुणिया पदों, भजनों और गीतों को सुनने की आदी हो गई थी। हमारे संगीत के विद्वान ठुमरी, दादरा, ख्याल, कजरी और गजल सुनने के आदि हो चुके थे। अब तो हम सुगम संगीत और सिनेमा के गाने सुनने के शौकिन होते जा रहे हैं। वायु और पर्यावरण में जैसा कि प्रदूषण रहता है वैसा ही पाश्चात्य प्रभाव से हमारे संगीत में शोर शराबे और धमाके का ज्यादा मिश्रण हो चला है। जो शायद युग के अनुकूल है। आज के युवाओं को मस्ती के लिए भले ही उपयुक्त हो लेकिन इसमें मन की शान्ति नहीं। हमारा निवेदन है आज के संगीत शास्त्रियों की इस दुविधामय स्थिति पर भी विचार कर हमारे भारतीय जीवन में उदात्तता और सुसंस्कार स्थापित हो, इस दिशा में मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

**अर्पित हो मेरा मनुज काय**
**बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।**

कला समय का यह महत्वपूर्ण विशेषांक भाग-2 , लोक जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केंद्रित विशेषांक निश्चित रूप से दोनों भाग मिलाकर समग्र रूप से दस्तावेज बन सका है। हम इस विशेषांक की अतिथि संपादक प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास जी के अत्यन्त आभारी हैं। उन्होंने अपने बहुत ही कीमती समय में से समय निकालकर हमारे आग्रह पर इस प्रतिष्ठा अंक का संपादन ही नहीं किया बल्कि देश/विदेश के लेखकों से जीवन्त संवाद के माध्यम से मौलिक आलेख मंगाए तथा पंडित भजन सोपोरी जी के सुपुत्र प्रतिभावान युवा संतूर कलाकार श्री अभय रुस्तम सोपोरी से लंबी बातचीत इस अंक की विशेष उपलब्धि है। आदरणीया प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास जी के व्यक्तिगत प्रयास से ही संभव हो सका उनके इस विशेषांक के प्रति समर्पण और कला समय पर अपार स्नेह के प्रति हम कृतज्ञ हैं साथ ही सभी विद्वान संगीताचार्य, विद्वज्जन के भी आभारी हैं कि उन्होंने बहुत ही सीमित समय सीमा में इस अंक के लिए अपना रचनात्मक सहयोग दिया। हम ऐसे गुणी कलाकारो/लेखकों के प्रति कृतज्ञ हैं। आशा करते हैं कि आगे भी इसी तरह आपका सहयोग कला समय को मिलता रहेगा। हम यहाँ पर स्पष्ट करना चाहते हैं कि किसी भी लेखकों के आलेखों में किसी प्रकार की कटौती नहीं की गई है। कला समय का आगामी अंक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक, गायकी और घराने पर केन्द्रित होगा कृपया उसमें भी आपके आलेख सादर आमंत्रित हैं। इस विशेषांक के अतिथि संपादक पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' वरिष्ठ शास्त्रीय गायक व गुरु होगें। अगले अंक से हमारे बीच कला-चिंतन स्तंभ को लेकर चन्द्र मोहन पाठकों को शोधपरक सामग्री अपने नये स्तंभ के माध्यम से देगें। कला समय परिवार में आपका स्वागत है। हमेशा की तरह अपनी प्रतिक्रिया अवश्य हम तक पहुँचाए।

शुभमवस्तु

**- भँवरलाल श्रीवास**

# सितार का इटावा इमदादख़ानी घराना

मंजरी सिन्हा

भारतीय संगीत में वाद्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है, तत्, सुषिर, अवनद्ध एवं घन वाद्य।तारों वाले वाद्य तत् वाद्य कहलाते हैं, फूँक से बजने वाले सुषिर, ताल-वाद्य अवनद्ध एवं धातु से बनने वाले घन वाद्य हैं जैसे मंजीरा, घंटी इत्यादि। पहली अर्थात् तत् वाद्यों की श्रेणी में आने वाला सितार भारतीय संगीत का एक महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी वाद्य है। शास्त्रीय संगीत में राग की प्रगल्भ प्रस्तुति हो या सुगम अथवा लोक संगीत का माधुर्य, यह मानव मन की हर तरह की भावनाओं की अभिभिव्यक्ति में पूर्णतया सक्षम है। इसके उद्गम के संबंध में कई मान्यताएँ हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्राचीन भारतीय 'त्रितंत्री वीणा' का परिष्कृत रूप है। अन्य विद्वान इसे ईरान से आए सेहतार, यानी सेह अर्थात् तीन तार वाले वाद्य का रूपांतरित स्वरूप मानते हैं जिसे इमानुद्दीन अब्दुल हसन उर्फ़ अमीर ख़ुसरो ने भारतीय संगीत की ज़रूरत के मुताबिक़ १३वीं शताब्दी में ईजाद किया।

अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों और संगीत-शास्त्रियों ने इस सिद्धांत पर भी संदेह व्यक्त किया है कि अमीर ख़ुसरो ने सितार का आविष्कार किया।उनका तर्क है कि १८वीं शताब्दी तक किसी भी प्रमाणिक संगीत-ग्रंथ में सितार का उल्लेख नहीं मिलता। वास्तव में, १८वीं शताब्दी से पूर्व की किसी भी चित्रकला, मूर्तिकला या अन्य दस्तावेज़ों में सितार का कोई नामोनिशान नहीं मिलता। अकबर के दरबार के सुप्रसिद्ध कलाकारों की सूची में भी न तो सितार का नाम आता है, न किसी सितार वादक का। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सितार का आविष्कार 18वीं शताब्दी से पहले नहीं हुआ था।वर्तमान सितार वादकों की परंपरा को भी हम दो-तीन सौ सालों से अधिक पीछे तक नहीं खोज पाते।उपर्युक्त तथ्यों एवं अधुनातन शोध के आधार पर यह तर्कसंगत प्रतीत होता है कि सितार एक अपेक्षाकृत नवीन वाद्य है और लगभग १८वीं शताब्दी में सदारंग के भाई फ़क़ीर ख़ुसरो ख़ाँ ने इसका निर्माण किया।

सितार के भौतिक स्वरूप का विकास उसके आकार, निर्माण में प्रयुक्त सामग्री, तारों की संख्या, तारों को वांछित सुर में मिलाने की विधियों और फ़्रेट्स यानी परदों की संख्या आदि में देखा जा सकता है।यह माना जाता है कि १९वीं सदी के उत्तरार्ध तक सितार पूरी तरह लकड़ी से बनाया जाता था। कुछ इलाक़ों में पेपरमैशी (काग़ज़ की लुगदी) के बने सितार भी प्रचलित थे। बाद में सुखाए गए कद्दू का उपयोग तुंबा बनाने के लिए किया गया जिससे इसकी ध्वनि की गूँज अधिक मधुर और स्पष्ट हो गई।वाद्य के ऊपरी सिरे पर एक और तुंबा या रेज़ोनेटर जोड़ने से ध्वनि की तीव्रता बढ़ गई और इसे अधिक गुंजायमान बनाया जा सका।

19वीं शताब्दी तक सितार में दो प्रकार की फ़्रेट व्यवस्था अर्थात् परदों की संख्या प्रचलित थी।पहले में 'अचल-थाट' स्थिर परदों वाला सितार था जिसमें २४ परदे होते जिन्हें मंद्र सप्तक के 'तीव्र मध्यम' से लेकर तार सप्तक के 'मध्यम' तक आधे सुरों की दूरी पर बाँधा जाता था।इसके बरक्स 'चल-थाट' (चलने योग्य परदे) वाले सितार में 17 परदे होते जिन्हें राग की ज़रूरत के हिसाब से खिसका कर विकृत स्वरों का काम लिया जाता। 19वीं शताब्दी के अंत तक 'चल-थाट' सितार में परदों की संख्या बढ़ाकर 20 कर दी गई। इसमें 'कोमल नि' (नीचे और मध्य सप्तक) तथा 'कोमल ग' (मध्य सप्तक) के परदे जोड़े गए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सितार के भौतिक विकास पर उसकी निर्माण सामग्री, तारों की व्यवस्था, और संरचनात्मक परिष्कार, जैसे तुम्बों और परदों की संख्या आदि का प्रभाव पड़ा।इन सब परिवर्तनों के साथ, वर्तमान स्वरूप में सितार एक अत्यंत विकसित और बहुआयामी वाद्य यंत्र बन चुका है।अपने क्रमशः विकासक्रम की यात्रा में आज सितार शास्त्रीय संगीत का एक अत्यंत परिपक्व वाद्य बन चुका है और राग के संपूर्ण स्वरूप को, उसकी सूक्ष्मतम भावनात्मक छटा सहित अभिव्यक्त करने में यह पूर्णतया सक्षम है।

सितार की शैलीगत विशेषताओं का विकास उसकी वादन शैली के

उस्ताद विलायत ख़ाँ

विभिन्न चरणों के अनुसार हुआ। प्रारंभिक काल में सितार एक सहायक वाद्य के रूप में प्रयुक्त हुआ, विशेषकर क़व्वाली गायन के साथ।वादक का बायाँ हाथ गायक की पंक्ति जिस सुर पर समाप्त होती उस स्वर पर स्थिर रहता जबकि दायाँ हाथ 'दिर दिर दा रा' जैसे बोलों को बजाकर गायन के बीच के अंतराल को भरता था। इस शैली को पूरक बाज कहा जाता था।

कालांतर में सितार एक स्वतंत्र वाद्य के रूप में उभरा और प्रस्तुति में गतों का शुमार हुआ। विलंबित लय में मसीतख़ानी तथा द्रुत लय में रज़ाख़ानी गतों का समावेश हुआ।मोहम्मद शाह रंगीले के समय में अनेक बंदिश की ठुमरियाँ रची गईं, जो मुख्यतः कथक नृत्य के साथ गाई जाती थीं। एक मत के अनुसार, इन्हीं ठुमरियों को सितार पर बजाया गया, जिनसे रज़ाख़ानी गतों की उत्पत्ति हुई।ऐसा माना जाता है कि उस काल में सरस्वती वीणा या बीन के आचार्य अपने परिवार के बाहर किसी को शिक्षा नहीं देते थे। अतः यह अनुमान है कि बाहरी विद्यार्थियों को सिखाने के उद्देश्य से सुरबहार का आविष्कार हुआ, जो सितार का एक परिवर्तित और बड़ा रूप था। सुरबहार में

उस्ताद साहेबदाद ख़ाँ, उस्ताद इनायत ख़ाँ

बीन और सितार दोनों की विशेषताएँ समाहित थीं; यह आकार में बड़ा होता था और इसका स्वर (pitch) अपेक्षाकृत नीचा होता था।

इसके बाद का चरण आलाप, जोड़, विलंबित और द्रुत गतों की संतुलित प्रस्तुति का था। अब राग की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति इन सभी चरणों के माध्यम से होने लगी, और सितार वादन का दर्जा गायन के समकक्ष हो गया। सितार में मींड खींचने की तकनीक और improvisation का प्रयोग आरंभ हुआ, जिससे बाँए हाथ का महत्व और भी बढ़ गया।राग को बरतने के क्रम में परिचयात्मक आलाप, जोड़ से ले कर विलंबित और द्रुत गत, तोड़ा, तान और झाला तक प्रस्तुति की पूरी प्रक्रिया राग के क्रमशः विस्तार और विकास की प्रत्येक अवस्था को विलंबित से द्रुत और अतिद्रुत चरणों में लयात्मक विन्यास के साथ सजाने संवारने में पूरी तरह समर्थ है।शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में आज सितार अपने आप में एक परिपक्व और सम्पूर्ण वाद्य की तरह तो मान्य है ही, उपशास्त्रीय ठुमरी दादरा और भजन, ग़ज़ल जैसी विधाओंकी प्रस्तुति के लिए भी उपयुक्त है। हर तरह की भावनाओं को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य के कारण यह अत्यधिक लोकप्रिय वाद्य है।

सितार वादन में घराना परम्परा ख़याल-गायन की घराना परंपरा की तरह ही विकसित हुई। इससे पहले ध्रुपद शैली में बानी के आधार पर वर्गीकरण होता था जैसे नौहार बानी, खंडहार बानी, गोबरहार बानी और डागुर बानी इत्यादि। सितार वादन के संदर्भ में कुछ विशिष्ट शैलियाँ घरानों के रूप में जानी जाती हैं।इनमें प्रमुख हैं इटावा इमदादख़ानी घराना, मैहर घराना, सेनिया घराना, जयपुर बीनकार घराना, विष्णुपुर घराना इत्यादि।घराना' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - घर-परिवार।संगीत के संदर्भ में, किसी घराने की शैली का अर्थ है - किसी विशिष्ट परिवार के संगीतज्ञों द्वारा स्थापित एवं गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा विकसित और परिष्कृत की गई वादन या गायन शैली। प्रायः घराने का नाम उस नगर या क्षेत्र के नाम पर रखा जाता था जहाँ उसके संस्थापक संगीतज्ञ रहते थे — जैसे आगरा, ग्वालियर, पटियाला, किराना अथवा इटावा, मैहर आदि।यदि कोई विशिष्ट संगीतज्ञ किसी स्थापित शैली में अपनी अद्वितीय छाप छोड़ता है, तो घराना उसके नाम से भी जाना जाता है — जैसे अल्लादिया ख़ाँ का घराना, इमदादख़ानी घराना, विलायतख़ानी घराना अथवा पंडित रविशंकर जी की सितार वादन शैली का घराना।

घराना वस्तुतः अपनी ख़ास विशेषता (specialization) की वजह से स्थापित होता है। संगीत की प्रस्तुति में यह विशेषता दो दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है। पहली बात है - क्या बजाया जा रहा है यानी बावत / विषयवस्तु; और दूसरी बात है कि कैसे बजाया जा रहा है, यानी तरीक़ा। विभिन्न घरानों में राग और ताल समान हो सकते हैं लेकिन प्रस्तुति की तकनीक भिन्न होती है, और यही घराने की विशिष्टता (specialization) को जन्म देती है जो कि घराना प्रणाली का मूल तत्व है। किसी भी घराने के परिपक्व होने में दो से तीन पीढ़ियाँ लगती हैं। यह समय, अनुभव, साधना और परंपरा से निर्मित होता है।

इटावा इमदादख़ानी घराना उस्ताद इमदाद ख़ाँ के पिता उस्ताद साहबदाद ख़ाँ, उस्ताद इमदाद ख़ाँ, उस्ताद इनायत ख़ाँ, उनके भाई उस्ताद वहीद ख़ाँ तथा महान उस्ताद विलायत ख़ाँ जैसे उस्तादों की विलक्षण देन का घराना है।। उस्ताद इमदाद ख़ाँ साहेब ने उस्ताद साहबदाद ख़ाँ के पदचिह्नों का अनुसरण किया। "रियाज़" उस्ताद इमदाद ख़ाँ की पहचान था। उनके अनुशासित और कठोर अभ्यास के अनेक मार्मिक किस्से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उन्होंने यमन, पूरिया जैसे कुछ रागों को इतनी परिपूर्णता से साधा था कि वे जिस भी संगीत समारोह में उपस्थित होते, वहाँ अन्य कलाकार इन रागों को बजाने से परहेज़ करते।

उस्ताद इमदाद ख़ान के ज़माने तक सितार की शैली अधिकतर दाएँ हाथ पर केन्द्रित दिखती है, यद्यपि बाँए हाथ की भूमिका पूर्ववर्ती समय से बढ़ चुकी थी। तानों का निर्वहन अभी "एक स्वर—एक मिज़राब" के स्तर तक नहीं पहुँचा था। उस्ताद इमदाद ख़ाँ की शैली के कई ऐतिहासिक रिकॉर्ड उपलब्ध हैं, जिनमें दाएँ हाथ के जटिल बोलों का विलक्षण, पारदर्शी

निष्पादन और अविश्वसनीय वेग साफ़ झलकता है। आलाप में ध्रुपद अंग की मींड थीं लेकिन ख़याल-अंग की मुरकियाँ अनुपस्थित थीं। गतें मसीतख़ानी शैली पर आधारित थीं जिनके विकास में बोल-पैटर्न से मेल खाते गत-तोड़े शामिल होते। द्रुत (रज़ाख़ानी) गतों में तानों के निर्वाह में मुख्यतः दाएँ हाथ का प्राधान्य रहा—जैसे दिर-दिर आदि बोल। द्रुत गतों की रचनाओं में बोल-मिज़राब का प्रचुर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। उनका जोर स्पष्टतः अद्भुत गति और नियंत्रित निष्पादन पर था, जिससे श्रोता स्तब्ध रह जाते!

संक्षेप में, उस्ताद साहबदाद ख़ाँ और इमदाद ख़ाँ की शैली में दाएँ हाथ का प्राधान्य, उसकी पकड़ और शक्ति-विलंबित गत, गत-तोड़ा, द्रुत गत, तान इत्यादि का निर्दोष निर्वहन; आलाप अपेक्षाकृत सरल और ख़याल-अंग की मुरकियों से रहित, ध्रुपद-अंग की मींडों पर आश्रित-ये सभी विशेषताएँ स्पष्ट मिलती हैं। उस्ताद इमदाद ख़ाँ के सुरबहार रिकॉर्डिंग्स में ये तथ्य प्रत्यक्ष हैं।

उस्ताद इनायत ख़ाँ की शैली में उनकी अंतर्मुखी, भक्तिभावपूर्ण धारा तुरंत अनुभव होती है। इमदादख़ानी बाज में उन्होंने अपने चिंतनशील व्यक्तित्व का रंग घोला, जिससे उनका संगीत अधिक गहन, आध्यात्मिक और मननशील हुआ। निष्पादन (तरीक़े) के स्तर पर भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है-आलाप में ख़याल-अंग की मनोहर, सधी हुई मुरकियाँ सुनाई देती हैं; सुरबहार पर पूरे सप्तक में फैली दीर्घ मींडें मिलती हैं; सितार पर 3-4 स्वरों की मींडों का उदार उपयोग। गतों में "एक स्वर-एक बोल" के सिद्धान्त पर चलने वाली फुर्तीली सपाट तानें मिलती हैं। माना जाता है कि उस्ताद इनायत ख़ाँ ने सितार प्रस्तुति में तिहाइयों का प्रचलन आरंभ किया, और तरब तारों के उपयोग को भी निखारा। उनके अनेक नवोन्मेषी बोल-पैटर्न प्रसिद्ध हैं। उनका वादन धीर-गम्भीर था बल्कि कुछ महान संगीतज्ञों के शब्दों में—"समाधि की अवस्था तक ले जाने वाला है।" राग भैरव में की उनकी सुरबहार रिकॉर्डिंग इसका उज्ज्वल उदाहरण है। उनके यहाँ पारदर्शी, घिसे-पिटेपन से परे, चकाचौंध-रहित पर अत्यंत परिष्कृत तकनीक और उच्च आध्यात्मिकता का संतुलित संगम मिलता है।

उस्ताद इनायत ख़ाँ के भाई उस्ताद वहीद ख़ाँ महान सुरबहार और सितारवादक थे, जिन्होंने सुरबहार की तकनीक को विकसित और सिद्ध किया। उन्हें ख़ानदानी तालीम की बड़ी पूँजी विरासत में मिली। उनके उपलब्ध रिकॉर्ड बताते हैं कि उनका सितार-वादन सरल, मनोहर और कठोर साधना का प्रतिफल है।

उस्ताद विलायत ख़ाँ का पदार्पण, भारतीय संगीत-जगत के लिए समृद्धि का संकेत था। आठ–नौ वर्ष की कोमल आयु में ही, उस्ताद इनायत ख़ाँ के साथ तथा उनके समक्ष बजाए गए दो रिकॉर्ड यह सिद्ध करते हैं कि बाल्यावस्था में ही उन्हें पिता से उत्कृष्ट तालीम मिली। लगभग उसी आयु में इलाहाबाद संगीत सम्मेलन में पिता के साथ उनका मंच-प्रदर्शन उनकी प्रतिभा का साक्ष्य है। समय के साथ वे कोलकाता से दिल्ली, फिर नाहन और

उस्ताद विलायत ख़ाँ अपने शागिर्द अरविंद पारिख के साथ

बाद में बंबई आ बसें। १९४० के दशक के उनके कोलंबिया रिकॉर्ड्स में अब भी उस्ताद इनायत ख़ाँ की शैली की स्पष्ट छाया और वैसा ही सितार दृष्टिगोचर होता है। इसके बाद उनकी शैली में विशिष्ट परिवर्तन दिखाई देता है।

ननिहाल से उस्ताद बंदे हसन की गायकी की विरासत पाकर, उस्ताद विलायत ख़ाँ ने सितार पर गायकी अंग को विकसित किया। ख़याल अंग पर आधारित उनकी इस नई सोच ने सितार-वादन को एक नया आयाम दिया। सितार एक प्लकिंग वाद्य है—हर मिज़राब की ध्वनि-अवधि सीमित होती है। सारंगी जैसे गज़ से बजाए जाने वाले वाद्य की तरह स्वर की अवधि दीर्घ नहीं होती। उस्ताद विलायत ख़ाँ ने बाँए हाथ की ऐसी तकनीक दी कि एक स्वर की गूँज को बहुत अधिक देर तक सतत रखा जा सके। इसे आधार बनाकर उन्होंने संगीत में निरन्तर, गीतिमय प्रवाह रचा जो गायन के अत्यंत निकट है। साथ ही, उन्होंने स्वरगत सूक्ष्म मुरकियों का अत्यंत जटिल और निष्ठापूर्ण प्रयोग जोड़ा। परिणामस्वरूप उनकी गीतिमयता और लयात्मक मादकता वाली शैली की तरल और विशिष्ट अभिव्यक्ति को सुनकर अनेक सहृदय रसिक बोल उठे, "उनका सितार सचमुच गाता है।"

सितार की शैलीगत यात्रा में गायकी अंग का प्रावर्तन, उस्ताद विलायत ख़ाँ का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है।उनकी व्यक्तिगत शैली के स्वाभाविक परिणामस्वरूप वाद्य में भी कुछ बुनियादी बदलाव आवश्यक हुए। जटिल मुरकियों, गमक-तान तथा पाँच-स्वरी मींडों के लिए मज़बूत तबली (soundboard) ज़रूरी थी—जो दाएँ हाथ के जोरदार स्ट्रोक्स का दबाव सँभाल सके। अतः पतली तबली के स्थान पर अधिक मोटी तबली लगाई गई, जो ब्रिज के माध्यम से आने वाले भारी दबाव को सह सके।ब्रिज में दो कारणों से बदलाव हुए, पहला - वह मजबूत हो तथा ऐसी गुणवत्ता का हो जो उस्ताद की वांछित गोल/गंभीर जवारी को संभाल सके। दूसरा- उसकी ऊँचाई बदली गई ताकि तार और परदों के बीच की दूरी बढी, वरना वांछित गमक और मींड संभव न होती।बाएँ-दाएँ हाथ के दमदार निष्पादन के लिए डांड और मुख्ये तुंबे के जोड़ का यांत्रिक ढाँचा अतिरिक्त मजबूत चाहिए था—इसके लिए धातु के स्क्रू और विशेष तकनीकें अपनाई गईं।तार-गहन को भी अधिक मोटा किया गया ताकि तारों के अधिक खिंचाव का प्रतिरोध

कर सके; इसकी वक्रता में भी विशेष ध्वनि-उत्पादन हेतु परिवर्तन किए गए।परदों को अधिक मोटा और टिकाऊ बनाया गया—पीतल की जगह जर्मन-सिल्वर के परदे, और उनकी वक्रता इस तरह रची गई कि मींडों का सही, सहज व सटीक निष्पादन हो।

तारों की व्यवस्था और गेज में भी बदलाव हुए।सात-तारों वाले सितार को छह-तारी बनाया गया; एक जोड़-तार हटाया गया ताकि जोड़ का अत्यधिक कंपन कम हो और बोलों की स्पष्ट, स्वच्छ अभिव्यक्ति मिले।

उस्ताद इमदाद ख़ाँ

षड्ज-पंचम तार को इस्पात-तार से बदला गया जो की एक क्रांतिकारी परिवर्तन था जिसने समूचे ध्वनि प्रारूप पर दीर्घगामी प्रभाव डाला। इस नए विकसित सितार की काया (आकार, तबली की मोटाई, जवारी आदि) को ध्यान में रखते हुए तारों को ऊँचे पिच—आम तौर पर 'सी शार्प' पर मिलाना सबसे उपयुक्त पाया गया। परिणाम इतना विशिष्ट निकला कि ऐसे सितार की मात्र हल्की सी "छेड़छाड़" (strumming) से ही पहचान लिया जाता है कि वह विलायतख़ानी सितार है।निश्चय ही विलायतख़ानी बाज का प्रभाव व्यापक और चमत्कारिक है।गांधार-पंचम वाला उनका सितार आज अत्यधिक लोकप्रिय हो चुका है।

अपने महान पुरखों उस्ताद इमदाद ख़ाँ, इनायत ख़ाँ और वहीद ख़ाँ के दाएँ हाथ की तकनीकों पर उस्ताद विलायत ख़ाँ ने और अनुसंधान किया तथा विविध निष्पादन-रूपों का विस्तार किया। यह एक गौरवशाली संगीत-परिवार है। अभी इस समृद्ध शैली के अनुयायी: उनके भाई उस्ताद इमरत ख़ाँ, पुत्र शुजात ख़ाँ, उस्ताद इमरत ख़ाँ के सुपुत्र निशात ख़ाँ और इरशाद ख़ाँ, तथा उस्ताद वहीद ख़ाँ के पौत्र शाहिद परवेज—सभी विलायतख़ानी घराने के ध्वजवाहक हैं। इसके अतिरिक्त, घराने के अनेक श्रेष्ठ शागिर्द सितारवादकों का योगदान भी उल्लेखनीय है, जिनमें उस्ताद विलायत ख़ाँ के वरिष्ठतम शिष्य पंडित अरविंद पारीख, जिन्होंने आधी सदी से अधिक अवधि तक उनसे तालीम पाई है। प्रख्यात सितारवादक एवं उद्योगपति पंडित अरविंद पारीख ने न केवल अपने उस्ताद के वाद्य और वादन शैली की गवेषणा पूर्ण व्याख्या की अपितु इस शैली के प्रशिक्षण और प्रसार के लिए तन, मन, धन समर्पित किया।आज उनके अनगिनत शिष्य इस घराने की कीर्तिपताका फहरा रहे हैं। मैं स्वयं उनके शिष्यत्व और मार्गदर्शन में इस घराने के संबंध में जो कुछ सीख-समझ पाई हूँ उसी के आधार पर यह लेख प्रस्तुत है।

**(सभी चित्र - साभार पंडित अरविंद पारीख)**

Address- 2263 Compass Point Ln, Reston.
VA 20191 USA.
Email-manjari@sinha.com.
Contact :+91 9811253341, +1 571 484 3523

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

**प्रबंध संपादक**

**सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058**

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com bhanwarlalshrivas@gmail.com

## पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए।

– **संपादक**

आलेख

# कश्मीर के वाद्य -एक अन्वेषण

अद्वैतवादिनी कौल

**पृष्ठभूमि :**

भारतीय परंपरा में संगीत आध्यात्मिक अनुभूति का एक साधन रहा है। भारतीय संस्कृति और दर्शन की संपूर्ण संरचना में संगीत की अवधारणा सृष्टि की मूल अवधारणा से जुड़ी हुई है। भारतीय संगीत पद्धति नाद की मूल धारणा पर केंद्रित है। दोहरे लक्षण के आधार पर नाद को आहत और अनाहत ध्वनि के रूप में जाना जाता है। आहत नाद वह ध्वनि है जो दो वस्तुओं के घर्षण से उत्पन्न होती है, जैसे किसी वाद्य यंत्र को बजाने से। यह वह ध्वनि है जिसे हम अपने कानों से सुन सकते हैं, जैसे संगीत, बोलना, या प्राकृतिक ध्वनियाँ या आवाज़ें। इसके विपरीत, अनाहत नाद एक अदृश्य और आध्यात्मिक ध्वनि है, जो बिना किसी आघात के अपने आप होने वाला नाद है, जिसे केवल योगी और साधक गहन ध्यान में अनुभव कर सकते हैं। पहला आनंद उत्पन्न कराता है और दूसरा आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है। इसका एक भौतिक और एक आध्यात्मिक प्रभाव है। भौतिक धरातल पर संपूर्ण मानव जाति ध्वनि पर निर्भर है और ध्वनि का आध्यात्मिक सिद्धांत भारतीय धार्मिक व्यवस्था में संगीत की स्थिति को दर्शाता है और इस प्रकार नादबिंदु और नादब्रह्म जैसी अवधारणाओं को जन्म देता है। वेदों के मंत्र संगीत में शब्द-समुच्चय के प्रारंभिक उदाहरण हैं।

भारत के विशाल सांस्कृतिक पटल पर, कश्मीर बौद्धिक उपलब्धियों के साथ-साथ साहित्यिक और सौंदर्यपरक उपलब्धियों के क्षेत्र में भी सुप्रतिष्ठित रहा है। संगीत मनुष्य की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्तियों में से एक है। कश्मीर को ऐसे अनुभवों और अभिव्यक्तियों से अलग करना असंभव प्रतीत होता है। यद्यपि ऐसी अभिव्यक्तियों का अनुभव तभी सार्थक होता है जब उन्हें उनकी स्थानिक-कालिक निरंतरता और बहुविध संबंधों में देखा जाए। इस आलेख में साहित्यिक संदर्भों और अत्यंत अल्प उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर कश्मीर में वाद्य यंत्रों के अस्तित्व का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

भरतनाट्यशास्त्र को नाट्यवेद कहा गया है। यह ग्रंथ अत्यधिक अंतर्विषयक प्रकृति का ग्रन्थ है। कश्मीर के आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा लिखित नाट्यशास्त्र पर एकमात्र भाष्य उपलब्ध है। वे कश्मीरी शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के एक प्रखर विद्वान थे। आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक पर 'काव्यालोकलोचन' और नाट्यशास्त्र पर 'अभिनवभारती' नामक अपने दो महान ग्रन्थों के माध्यम से संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक आलोचक के रूप में उनकी ख्याति उतनी ही महान है जितनी कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में उनकी ख्याति। नाट्यशास्त्र की पांडुलिपियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों और नेपाल में भी पाई गई हैं, जो विभिन्न लिपियों में लिखी गई हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह कृति पूरे भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध रही होगी। एक और तथ्य जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि यद्यपि ये ग्रन्थ कश्मीर सहित उत्तर भारत के विद्वानों द्वारा रचे गए थे, नाट्यशास्त्र और अभिनवभारती की पांडुलिपियाँ, रस और साहित्यिक आलोचना पर अन्य उत्कृष्ट कृतियों के साथ भारत के दक्षिणी भागों से उपलब्ध हुई हैं। यह पूरे उपमहाद्वीप में इन कृतियों की मान्यता और लोकप्रियता की ओर संकेत करता है। यह निस्संदेह भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले संस्कृत विद्वत्ता के एकीकरण के गुण और उसके फलस्वरूप एकरूपता की शक्ति को भी सिद्ध करता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र, जिसमें संगीत की कला सहित विभिन्न कला रूपों की नींव रखी गई है, कश्मीर में अज्ञात नहीं था। बल्कि यह ग्रंथ कई शताब्दियों तक कश्मीर में किए गए साहित्यिक और दार्शनिक प्रयासों का एक अभिन्न अंग बना रहा।

आचार्य अभिनवगुप्त के दक्षिण भारतीय शिष्य मधुराजकविविरचित श्रीगुरुनाथपरामर्श में अंकित उनके शब्द चित्र में आचार्य को नाद वीणा वादन करते दिखाया गया है जिसके अनुसार चित्र कला में बनाने के प्रयास किए गए हैं :

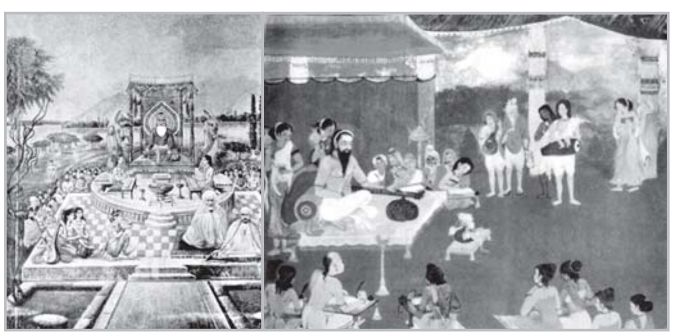

**"वामश्रीपाणिपदनस्फुरितनखमुखैर्वादयन्नादवीणा।"**
"अपने अमूल्य बाएं हस्त कमल की अंगुलियों के नखों से नाद वीणा बजाते हुए"

शारङ्गदेव के संगीतरत्नाकर (सं. र.) को भारतीय संगीत के इतिहास में नाट्यशास्त्र के बाद अगला महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है क्योंकि यह पूर्ववर्ती परंपरा का उल्लेखनीय विवरणों को प्रस्तुत करता है। शारङ्गदेव मूल रूप से कश्मीर के थे, यह बात उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ के आरंभ में अंकित की है (सं. र. 1.2-3)। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दादा 12वीं शताब्दी के दौरान कश्मीर से देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) चले गए थे। शारङ्गदेव को ऐसी सांस्कृतिक विरासत धरोहर के रूप में मिली थी जिसमें शिक्षा और कला की उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय परंपराओं का सम्मिश्रण था। सिंहभूपाल (14वीं शताब्दी) संगीतरत्नाकर के आरंभिक टीकाकारों में से एक थे। उनकी टिप्पणियों पर ध्यान देना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा है कि भरत और अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित संगीत की पूरी प्रणाली शारङ्गदेव के आगमन से पहले ही बिखर चुकी थी और उन्होंने ही इसे समेकित किया और अब वे (सिंहभूपाल) स्वयं लोगों के हित में इसे समझने योग्य बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, संगीतरत्नाकर की रचना की योजना की तुलना भरत के नाट्यशास्त्र से करना भी आवश्यक होता है। जिससे स्पष्ट होता है कि नाट्यशास्त्र एक बहुआयामी ग्रन्थ है जो अपने में सभी कला रूपों को समाहित करता है, जबकि संगीतरत्नाकर गीत, वाद्य और नृत्य के सम्मिश्रण से संगीत के चित्रण के लिए समर्पित है।

**कश्मीर के वाद्ययन्त्र :**

नीलमत पुराण (7वीं से 9वीं शताब्दी ई.) कश्मीर का सबसे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्य है, जो मुख्यतः धार्मिक अनुष्ठानों और समारोहों से संबंधित है। इसके परिचयात्मक श्लोकों में कश्मीर को वैदिक मंत्रों की ध्वनि (ब्रह्मघोषसमाकुलम्, नी. पु. 21) और वीणा तथा ढोल की ध्वनि (वीणापटहनादितम्, नी. पु. 22) से गूंजती भूमि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक अवसरों पर गायन और नृत्य का विधान है, जैसे भगवान विष्णु के जागरण पर (नी. पु. 421, 425-27); भगवान बुद्ध के जन्मदिन पर नाट्य और नृत्य कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं (नी. पु.,713)।

अशोकिका (नी. पु., 786-87) जैसी देवियों की पूजा के लिए भी यही निर्देश दिए गए हैं। भद्रकाली (नी. पु., 816-17); श्यामा (नी. पु., 830-33) और दिव्य प्रतिमाओं की स्थापना (नी. पु., 896-98) या पूजा के बाद प्रतिमाओं के विसर्जन (नी. पु., 743-49) के लिए भी यही निर्देश दिए गए हैं। राजा के राज्याभिषेक की वर्षगांठ (नी. पु., 846-49) के उत्सव के दौरान शहर अभिनेताओं और नर्तकों से सुसज्जित होना चाहिए। वितस्ता (प्रमुख नदी) के प्राकट्य दिवस के बाद तीन दिनों तक विभिन्न अवसरों पर नाट्य प्रदर्शनों (नी. पु., 731-32,769,795) के लिए उपहार और कलाकारों का सम्मान (नी. पु., 795) करने का सुझाव दिया गया है। नीलमत पुराण (769, साथ ही 731-32) में दिए गए निर्देशों के अनुसार मंच पर प्रदर्शन करने वाले कलाकारों का आदर सत्कार किया जाना चाहिए। इस पुराण में नाट्यशास्त्र में वर्णित चार में से दो प्रकार के वाद्ययंत्रों का उल्लेख है। इनमें तंत्री का उल्लेख मिलता है जिसे तत् के रूप में भी जाना जाता है। वीणा आदि जैसे तार वाले वाद्ययंत्र; और अवनद्ध जैसे ढोल आदि ताल वाद्य, (नी. पु., 687-88,690)। भारतीय परंपरा के अनुसार इसमें ब्रह्मा की सभा का वर्णन भी किया गया है जिसमें नारद दो गंधर्वों विश्ववसु और शालिशी (नी. पु., 663) के साथ कई नर्तकियों (नी. पु., 664-65) की उपस्थिति में भगवान की स्तुति गा रहे हैं। प्रत्येक उत्सव के अवसर पर गायन, नृत्य और वाद्य यंत्रों का वादन करने का संकेत मिलता है। फाल्गुन माह में किसी उत्सव के आयोजन का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि पूर्णिमा की रात्रि में गायन, नृत्य और वाद्य यंत्रों का वादन करते हुए जागरण किया जाना चाहिए। अगले दिन नर्तकों, अभिनेताओं और गायकों के प्रदर्शन देखने चाहिए। यह कृष्ण पक्ष की पंचमी तक जारी रहना चाहिए (नी. पु., 546-47)। इसी प्रकार प्रथम हिमपात के अवसर पर गायन और वाद्य संगीत सुनना और नर्तकों का आनंद लेने का संकेत है (नी. पु., 483-84)। वाद्य यंत्रों की ध्वनि के बीच बीज बोने का वर्णन है (नी. पु., 566)और बीज बोने के बाद, वाद्य यंत्रों की हृदय-मोहक ध्वनि (वाद्यशब्दैः मनोहरैः,नी. पु. 568)के साथ गायन और नृत्य से भरा एक उत्सव मनाया जाना चाहिए - ऐसा निर्देश दिया गया है।

वाद्य यंत्रों के लिए प्रयुक्त सामान्य शब्द वाद्य (नी. पु., 399, 546, 749, 787, 1441), वादित्र (नी. पु., 836, 849) और वाद्य-भाण्ड (नी. पु., 820) मिलते हैं। नीलमत पुराण में उल्लिखित विभिन्न वाद्य यंत्र हैं: वीणा (426, 441), वेणु (441), शंख (399, 849), पटह (426) और मुरज (1441)।

जहाँ तक नृत्य का प्रश्न है, यह संगीत प्रदर्शनों के साथ-साथ चलता है। इस तरह के प्रदर्शन धार्मिक समारोहों, ऋतुओं के स्वागत में आयोजित सामाजिक समारोहों और कृषि उत्सवों (नी. पु., 722-23) आदि से संबंधित अवसरों पर भी होते थे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। इस प्रकार नीलमत पुराण में उस काल में कश्मीर में प्रचलित संगीत की जीवंत परंपरा का उल्लेख मिलता है।

कल्हण की राजतरंगिणी (रा. त.) के अनुसार, ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों के आसपास कश्मीर में संगीत बौद्ध भिक्षुओं के बीच लोकप्रिय रहा(रा. त. I.140) । इस काल में मंदिरों से जुड़ी नर्तकियों की प्रथा भी विद्यमान थी। कल्हण कहते हैं कि राजा जलौक ने अपने महल की सौ नर्तकियों को ज्येष्ठरुद्र मंदिर में समर्पित किया था (रा. त. I.151)। ललितादित्य मुक्तपीड़ (8वीं शताब्दी) के समय तक यह प्रथा लुप्त हो गई थी, यह एक घटना से परिलक्षित होता है जिसमें राजा ललितादित्य एक सुदूर वन में दो देवियों के संपर्क में आए - उनमें से एक गा रही थी और दूसरी नृत्य कर रही थी। अपनी प्रस्तुति पूरी करने के बाद, उन्होंने प्रणाम किया और चली गईं। राजा ने देखा कि ये दोनों महिलाएँ प्रतिदिन उस विशेष स्थान पर अपना अनुष्ठान करने आती हैं। इसलिए, जिज्ञासावश राजा ने इसका कारण पूछा।

महिलाओं ने उत्तर दिया कि वे एक मंदिर की नर्तकियाँ हैं और अपनी माताओं, जो उस विशेष स्थान पर नृत्य करती थीं, के निर्देशानुसार यह अनुष्ठान कर रही हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वहाँ नियमित रूप से नृत्य करना उनकी पारिवारिक परंपरा है (रा. त. IV. 265-276)। कल्हण ने चक्रवर्मन के समय का एक और रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो तीसरी बार (936-37 ई.) सिंहासन पर बैठे थे। राजा ने बाहरी स्वागत कक्ष में रंग नामक एक प्रसिद्ध डोम्ब गायक को आने का अवसर दिया था जो अपने दल के साथ राजा और उनके मंत्रियों व सरदारों की सभा के समक्ष प्रस्तुति देने के लिए विदेश से आया था। हंसी और नागलता नामक दो महिला कलाकारों ने अपने गायन और नृत्य से राजा का मन जीत लिया (रा. त., वि. 354-388)।इसके बाद, कल्हण लिखते हैं कि राजा कलश (1063-89 ई.) ने उपांगगीत (वृंदगान) में रुचि का सूत्रपात किया और नर्तकियों का चयन अन्य क्षेत्रों की तरह ही सावधानी से किया (रा. त., VII. 606)। कश्मीर के राजा हर्ष (189-1101 ई.) के दरबार का वर्णन करते हुए कल्हण उनके दरबार के गायकों की तुलना गंधर्वों (दिव्य गायकों) से करते हैं (रा. त. VII.949)। नृत्य कला में राजा की विशेषज्ञता और विशेष रुचि तब और उजागर होती है जब कल्हण उन्हें नर्तकियों को नृत्यकला की शिक्षा देते हुए बताते हैं (रा. त. VII.1140)।

दामोदरगुप्त (आठवीं शताब्दी ई. का उत्तरार्ध) का कुट्टनिमतकाव्य (कु. म.) एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो मुख्यतः कामशास्त्र, काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र जैसे विषयों पर आधारित है। दिलचस्प बात यह है कि कल्हण (रा. त. IV. 496) ही एकमात्र स्रोत है जो इस कृति का नाम का और इसके रचयिता का उल्लेख करता है, जिन्हें कश्मीर के कारकोट राजा जयापीड विनयादित्य ने प्रधानमंत्री (धी: सचिव) नियुक्त किया था। इस प्रकार दामोदरगुप्त की अनुमानित तिथि ज्ञात होती है, जो अन्यथा किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं है। ऐसा माना जाता है कि यह ग्रंथ संभवतः समकालीन कश्मीर का चित्रण करता है, लेकिन पूरे काव्य में कश्मीर का कोई उल्लेख नहीं है। वर्णित प्रसंगों का दृश्य वाराणसी, पाटलिपुत्र और माउंट आबू का है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कृति लंबे समय तक लोकप्रिय रही होगी क्योंकि इसका उल्लेख साहित्यिक आलोचना, व्याकरण और 12वीं शताब्दी तक के कई संकलनों में मिलता रहा है। भरत का नाट्यशास्त्र दामोदरगुप्त द्वारा अत्यधिक उपयोग किए गए अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। नाट्यशास्त्र के अनुसार श्री हर्ष की रत्नावली के प्रदर्शन का विवरण (कु. म., 880-928) दामोदरगुप्त के इस ग्रंथ के गहन अध्ययन का उल्लेखनीय प्रमाण प्रदान करता है। कुट्टनिमतकाव्य कलाओं, विशेषकर संगीत, नृत्य और नाटक की समकालीन स्थिति के बारे में प्रचुर जानकारी प्रदान करता है, जिसकी पुष्टि कश्मीर से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों और अन्य साहित्यिक साक्ष्यों से की जा सकती है।

दो अन्य महत्वपूर्ण किन्तु विविध संदर्भ11वीं शताब्दी के हैं, एक बिल्हण द्वारा और दूसरा क्षेमेंद्र द्वारा उनके समकालीन इन कलाओं की स्थिति के बारे में विवरण देते हैं। बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित (XVIII. 23, 29) में अभिनय और अंगहारों की उच्च कुशल तकनीकों का प्रमाण मिलता है, जिनमें कश्मीर की महिलाएं निपुण थीं। इसी प्रकार क्षेमेंद्र ने अपने देशोपदेश (30) में व्यंग्यात्मक रूप से एक गायक का उल्लेख किया है जो देवताओं के आह्वान के समय वीणा को कंधे पर उठाए यज्ञ स्थल में प्रवेश करता है और गड़गड़ाहट भरी ध्वनि में विसर्जन के गीत गाता है।

संगीत, नृत्य और रंगमंच के क्षेत्र में विकास से संबंधित कुछ वर्णनात्मक और सूचनाप्रद विवरण श्रीवर की ज़ैनतरंगिणी (ज़ै. त.) में उपलब्ध होते हैं। श्रीवर (15वीं शताब्दी) स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। यह उनके इन कलाओं के विशेष संदर्भों से स्पष्ट होता है। सुल्तान ज़ैन अल-अबिदीन (1418/20- 1470 ई.) को संगीत से बहुत प्रेम था। उन्होंने अपने महल के प्रांगण में सोने की वर्षा की, जो उस समय कश्मीर में प्रचलित सभी स्थानीय धुनों से गूंज रहा था (ज़ै. त. I.3.42)। भाद्रपद माह के शुक्ल पक्ष की 13 तारीख को वितस्ता नदी के आविर्भाव दिवस मनाए जाने पर उन्होंने नाव में बैठकर संगीत सुनने का पूर्णतया आनंद लिया ((जै. त. I. 3.53-56)। सुल्तान पूरी रात ऐसे महान संगीतज्ञों के गीत और संगीत के रस का आस्वादन करने में बिताता था जो अंतरतम प्रेरणा से गाते थे ((जै. त. I.3.58)। कश्मीर की महिलाओं द्वारा गाए गए गीतों का संदर्भ भी दिया गया है जो मधुर, मार्मिक, सौंदर्य व आनंद से भरे हुए थे और आवाज और धुन के संबंध में सुखद सरगम से युक्त थे((जै. त. I. 4. 6-7)। लोगों में मंच के प्रति रुचि थी((ज़ै. त. I.4.8) और अभिनेता गायन और वाद्य संगीत के साथ-साथ नृत्य में भी पारंगत थे। गुण सम्पन्न महिलाओं ने संगीतमय मुख्य स्वरों के माध्यम से उनचास भावों को प्रस्तुत करते खूब तालियाँ बटोरीं((ज़ै. त. I.4.9-12)। रंगभूमि ( open air theatre) का बहुत प्रचलन था((ज़ै. त. I.4.13-18)। इस समय कश्मीर में पहले से ही फ़ारसी, तुर्की और अन्य विदेशी संगीतकार प्रदर्शन कर रहे थे। श्रीवर ने विदेशी धुनों को गाने में भी विशेषज्ञता हासिल कर ली थी(ज़ै. त. I.4.31-35)। एक ही स्थान पर उपलब्ध संगीत परंपराओं की विविधता को देखते हुए बताया गया है कि एक बार दर्शक-दीर्घा में एक ही गीत को बारह विविध धुनों में प्रस्तुत किया गया था (ज़ै. त. I.4.36)। एक बार, जब सुल्तान क्रमसरस (कौनसरनाग) झील में घूमने के लिए नाव पर सवार हुआ था, श्रीवर कहते हैं कि अधिपति (सुल्तान) मुझसे गीतगोविंद के गीतों को सुनते हुए भगवान कृष्ण की भक्ति में पूरी तरह से सराबोर हो गया था और उस समय अकथनीय सुख का आनंद ले रहा था (ज़ै. त. I.5.99-100)। उसकी रुचि को देखते हुए अन्य देशों के सामंतों ने सुल्तान के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के लिए उसे उपहार भेजे। ग्वालियर (गोपालपुर) के राजा डुगरसीह (डुग्गर सिंह) ने संगीत चूड़ामणि (ज़ै. त. I.6.14-15) नामक भारतीय संगीत पर एक प्रबंध ग्रन्थ भेजा। ज़ैन अल-अबिदीन के बाद उनके बेटे हाजी खान ने दो साल तक हैदर शाह (1470-

1472) नाम से गद्दी संभाली। हालाँकि उसे एक अच्छे शासक के रूप में चित्रित नहीं किया गया है, लेकिन साथ ही श्रीवर उनकी वीणा बजाने और उस पर शिक्षा देने में उनकी विशेषज्ञता को उजागर करने से नहीं चूकते (ज्ञै. त. II. 56-58)।

उत्तर भारत से एक जुड़वां ग्रंथ, तर्जुमा-ए-मानकुतुहल वा रिसाला-ए-रागदर्पण (त. म. कु. और रि. रा. द.) है, जिसे मुगल सम्राट औरंगजेब (17वीं शताब्दी) के एक सूबादार ने फारसी में संकलित किया था। नवाब सैफ खान, जिन्हें फकीरुल्लाह के नाम से जाना जाता था, ने राजा मानसिंह (1486-1517) के मानकुतुहल का अनुवाद किया और इसके साथ रागदर्पण का संकलन भी जोड़ा, जिसके बारे में वे स्वयं कहते हैं कि यह भरत के नाट्यशास्त्र, संगीतदर्पण और संगीतरत्नाकर पर आधारित है (त. म. कु. और रि. रा. दि. pp. 12-13)। लेखक ने कश्मीर में अपने कार्य को अंतिम रूप दिया। भीषण सर्दी के कारण उन्हें अपने कार्य से कुछ खाली समय मिला जिसका उपयोग उन्होंने अपने पहले से संकलित ग्रन्थ को अंतिम रूप देने में किया (त. म. कु. एवं रि. रा. द. p.225)। इस पाठ के अंत में आने वाला उपसंहार उस समय के कश्मीर के संगीत पर लेखक के संक्षिप्त परिचय को व्यक्त करता है जो पहले से बदले हुए परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। वह लिखते हैं, "चूँकि कश्मीर केवल फ़ारसी संगीत जानता है, भारतीय नहीं, जहाँ तक मूलभूत बातें हैं। केवल कुछ विशेषज्ञ वाद्य वादक कभी-कभी यहाँ (भारत के बाहर से) आते हैं और सफलतापूर्वक प्रदर्शन करते हैं। अन्यथा, यह फ़कीर फ़ारसी संगीत के बारे में शायद ही कुछ जानता है। केवल कुछ फ़ारसी मक़ाम (ईरान की प्रमुख धुनें) जिनमें भारत की रागों के साथ एक अद्भुत समानता है, उनकी जानकारी मिलती है जिनसे मैं परिचित हूँ, और वह भी, साजिन्दाह (वादक) और गोइन्दाह (गायक) तथा जानने वालों से (केवल) उनके नाम पता करने के बाद" (त. म. कु. एवं रि. रा. द. पृ. 225-28)।

अतः यह देखा जा सकता है कि लगभग 10वीं शताब्दी तक कश्मीर में प्रचलित संगीत विशुद्ध रूप से भारतीय परंपरा के अनुरूप था। किन्तु सल्तनत काल में कश्मीर में संगीत और नृत्य कला के साथ अन्य कलाओं का प्रचलन भी धीरे-धीरे विदेशी प्रभाव से प्रभावित हुआ और इससे एक नए सम्मिश्रण का उदय हुआ जो मुगलों के काल तक मूर्त रूप ले चुका था।

यहां कश्मीर से संबंधित कुछ एक पुरातात्विक और अन्य दृश्य सामग्रि को प्रस्तुत करना भी आवश्यक है :

इस हारवन टाइल पर कमलपद्मों की पंक्ति के नीचे एक महिला संगीतकार को ढोल बजाते हुए दिखाया गया है, जो स्पष्टतः उसके बाएं कंधे पर लटका हुआ है (स्रोत : Ancient Monuments of Kashmir)

हारवन की इस टाइल के ऊपरी भाग में तीन संगीतकार दिखाई दे रहे हैं। बाएँ वाला बांसुरी बजा रहा है, बीच वाला झांझ बजा रहा है और सबसे दाएँ तीसरा ढोल बजा रहा है। (स्रोत : Ancient Monuments of Kashmir)

उत्तर पश्चिमी फ्रेन्टियर क्षेत्र से प्राप्त 7वीं शताब्दी ईस्वी की शिव तांडव की एक दुर्लभ लकड़ी की प्रतिमा अब ब्रिटिश संग्रहालय में है। इसमें त्रिपर्णी अर्धमंडलाकार के भीतर शिव को आनंद ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाया गया है, जो पाँच दिव्य कृत्यों (पञ्चकृत्य) का प्रतीक है। सामने चार संगीतकारों का एक समूह बाँसुरी, ढोल और झाँझ बजा रहे हैं। ( स्रोत : Kashmir Sculptures Vol. I)

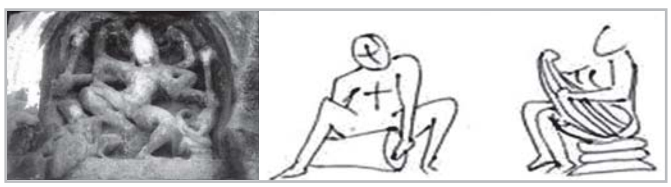

कश्मीर के पायर मंदिर से प्राप्त, 8वीं-9वीं शताब्दी की पत्थर की शिव नटराज प्रतिमा। यह प्रतिमा 58×60 से. मी. के एक आले में स्थापित है। इसके साथ दो संगीतकार भी हैं। नटराज के बाईं ओर एक महिला स्टूल पर बैठी वीणा बजा रही है और दाईं ओर एक पुरुष अपने पैर के नीचे रखे ढोल को बजा रहा है।(स्रोत : Kashmir Sculptures Vol. 1)

9वीं शताब्दी की देवसर, कश्मीर से प्राप्त इस पत्थर की गोलाकार मूर्ति के ऊपरी भाग में मातृकाएं अपने -अपने वाहनों पर विराजमान हैं। निचले भाग में पाँच महिला संगीतकार हैं। चार अपने वाद्य यंत्र बजा रही हैं और

बीच वाली नृत्य कर रही है। स्पष्ट रूप से इसे एक नाव पर दिखाया गया है। (स्रोत :Kashmir Sculptures Vol. 1)

हमारे क्षेत्र के भैरव का नाम वेताल भैरव है। इनके ध्यान मंत्र में इन्हें वीणा वादक के रूप में दर्शाया गया है:

**"वीणां वाद्यप्रवीणामुरसिविनिहितां वादयन्तं भुजाभ्याम्"**

" वीणा बजाने में कुशल अपनी छाती पर रखकर हाथों से (वीणा) बजाते हैं"

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, जैसा कि साहित्यिक साक्ष्यों और विद्यमान प्रथाओं तथा कश्मीर से प्राप्त या कश्मीर से संबंधित पुरातात्विक एवं अन्य दृश्य सामग्रियों पर आधारित प्रस्तुत चर्चाओं से स्पष्ट होता है कि कश्मीर में संगीत उसी शाश्वत स्रोत से आता है जिसका भारत की समग्र परंपरा में निर्वहन किया जाता रहा है। समय के साथ विदेशी प्रभावों की विभिन्न धाराएँ इस विशाल सागर में समाहित हो गईं और इसे एक नया रूप दिया।

इस शोधपत्र का उद्देश्य खंडित तथ्यों के बीच संबंध स्थापित करना है। अभी भी कई संबंध स्थापित किए जाने बाकी हैं। उदाहरण के लिए, ज़ैनतरंगिनी (ज़ै.त. I.4.34) में तुम्बवीना का उल्लेख है।

यह तुम्बकनारी की याद दिलाता है - एक ताल वाद्य जिसका उपयोग कश्मीर के हिंदू और मुसलमान दोनों ही विवाह और त्योहारों जैसे विभिन्न अवसरों पर छकरी (कश्मीर का लोक संगीत) बजाते समय अन्य वाद्यों के साथ करते हैं। तुम्बकी एक ईरानी वाद्य भी है जो कश्मीर के तुम्बकनारी जैसा दिखता है। छकरी नृत्य के साथ-साथ गाया जाने वाला एक गीत रूप भी है। यह रूप जक्कड़ी, जिकरी और जिगरी से जुड़ा है (त. म. कु. और रि. रा. द. पृ. 119 और 285, n.77)। इस विषय से संबंधित साक्ष्यों की पहचान के लिए संस्कृत के साथ-साथ कश्मीरी और अन्य भाषाओं, विशेष रूप से फ़ारसी में विशाल साहित्य मौजूद है। प्रस्तुत आलेख इस दिशा में एक प्रारंभिक प्रयास मात्र है।

लेखिका: वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
Add. D-001 Exotica Fresc Sector -137, Noida
Expressway Noida UP-201305
Mob. 9818844338

कला समय

**पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'**
**मध्यप्रदेश शासन का शिखर सम्मान प्राप्त**
**( गायनाचार्य ग्वालियर घराना )**
**इस अंक के अतिथि संपादक**
**मो. 9425673106**

**आगामी अंक**
**दिसम्बर - जनवरी 2026**

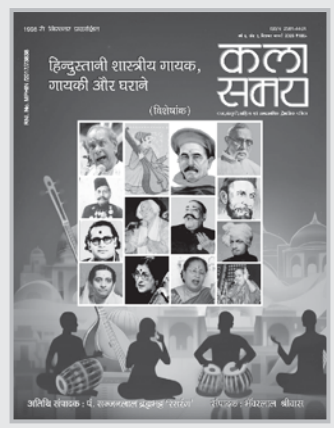


**हिन्दुस्तानी शास्त्रीय, गायक, गायकी और घराने पर केन्द्रित विशेषांक**

**अतिथि संपादक : पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'**
**( गायनाचार्य ग्वालियर घराना )**

**इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु गायक, गायकी और घराने पर मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 दिसम्बर 2025 है।**

- संपादक

**ई-मेल :** kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com **मो.- 94256 78058**

# राजस्थान की समृद्ध शास्त्रीय वाद्य-परम्परा

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

संगीत को संरक्षण और संवर्द्धन प्रदान करने वाली देश की प्रमुख रियासतों में इन्दौर, बडौदा, ग्वालियर, रामपुर एवं जयपुर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। देश के शीर्षस्थ गायक-वादकों के आकर्षण का केन्द्र जयपुर रियासत रही है। ये देश भर के घरानों एवं कलाकारों की शरणस्थली भी रही है। 18 नवम्बर 1727 ई. में राजा सवाई जयसिंह-द्वितीय (1693-1744 ई.) द्वारा जयपुर की स्थापना की गई। इसके वास्तुकार कछवाहा शासक विद्याधर भट्टाचार्य थे। तब इसकी राजधानी आमेर हुआ करती थी। 30 मार्च सन् 1949 को जयपुर राजस्थान की राजधानी बना। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि सवाई जयसिंह-द्वितीय द्वारा विभिन्न कलाओं के संरक्षण- संवर्द्धन हेतु 36 कारखानों की स्थापना की, ये मात्र उत्पादन के केन्द्र ही नहीं थे अपितु सांस्कृतिक समृद्धि की प्रयोगशाला अथवा केन्द्र थे। इन 36 कारखानों में जो संगीत से संबंध रखता है वह 'गुणीजन खाना', जिसमें हुनरमन्द गायन, वादन एवं नृत्य के कलाकारों को एक तरह से नियुक्ति करके उन्हें गुरु का पद देने के अलावा राज गायक, वादक एवं नर्तक जैसे सम्मानजनक पद पर रखा जाता था एवं उन्हें अपनी कला के प्रदर्शन का उचित अवसर दिया जाता था।

कहते हैं कि गुणग्राही रामसिंह द्वितीय (1833-1880 ई.) ने राजदरबार के इस महत्वपूर्ण कला-संस्थान को पूर्ण विकसित किया। ये जयपुर शासक जयसिंह-तृतीय (1818-1835 ई.) के पुत्र थे। वीणावादक बन्दे अली खां, हरिवल्लभाचार्य 'हररंग', बीनकार मुशर्रफ एवं सांवल खां, सितारवादक जोड़ी रहीम सेन एवं अमृत सेन 'कोठी वाले' के नाम से प्रसिद्ध मुहम्मद अली खां, जो मनरंग के पोते एवं पं. भातखण्डे जी के गुरु थे। इस दौरान हैदर खाँ सितारवादक का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

महाराजा रामसिंह द्वितीय (जयपुर)

एक और बात महत्वपूर्ण है कि जयपुर घराने के जन्मदाता 'मनरंग' के वंशज मोहम्मद अली 'कोठीवाला' द्वारा इसे प्रचलित करने के उपरान्त इसकी दो शाखाएँ पटियाला एवं अतरौली बने। जयपुर के इस घराने का प्रमुख आधार ध्रुवपद गायकी रही अतएव राजस्थान निवासी कलाकार एवं राजस्थान के कलाकारों से तालीम लेने वाले हर गायक-वादक का संबंध राजस्थान में पनपी ध्रुवपद की वाणियों से रहा। यथा - ख्वाजा मोहम्मद खाँ एवं उनके पुत्र आसिफ अली खां और उनके वंशज डागुर वाणी, गुलाम हुसैन नौहार वाणी, हुसैन खाँ एवं शबाब खां गोबरहारी वाणी, मन्नू खां एवं वंशज और इमाम बख़्श खण्डार वाणी से संबद्ध थे।

महाराजा रामसिंह के दरबारी गायक जयपुर के बाबा बहराम खां द्वारा प्रवर्तित डागर घराने के वंशजों में उ. जियाउद्दीन एवं उनके पुत्र उ. जिया मोहियुद्दीन एवं उनके पुत्र उ. मोहि बहादुद्दीन ने भी रुद्र वीणा को अंगीकार किया। इन सभी का कार्यक्षेत्र उदयपुर के बाद कालान्तर में राजस्थान से बाहर रहा। सहारनपुर का माने जाने वाले इस घराने के ही बन्दे अली खां वीणा-वादन में दक्ष थे, जो जयपुर से भी संबद्ध रहे। बूंदी नरेश बख्तसिंह के दरबार में रहे राजस्थान से बाहर मथुरा के काले खां 'सरसपियां' भी गायन के साथ सितार में दक्ष थे, जिन्होंने जयपुर में मामा रज़ब अली से सितार सीखा, इसी प्रकार ही मथुरा घराने से संबद्ध पान खां के पोते भी सितार-वादन में दक्ष जयपुर से भी संबद्ध रहे।

राजस्थान के टोंक, उदयपुर, अलवर, जोधपुर एवं जयपुर राजदरबारों में ऐसे गायकों-वादकों को संरक्षण प्राप्त हुआ, जिन्होंने गायन, वादन एवं नृत्य के घरानों को जन्म दिया। दरबार ही नहीं अपितु राजस्थान के छोटे-छोटे रजवाड़े, ठिकाने, रईसों, सेठों एवं जागीरदारों आदि ने संगीत-साधकों को पर्याप्त संरक्षण दिया, जयपुर में इसका सर्वाधिक विस्तार दृष्टिगत होता है।

**जयपुर का सेनिया घराना**

सेनिया घराना तानसेन के पुत्र सुरत सेन से संबद्ध है। इस घराने के गायक-वादक गौरहारी व खण्डारवाणी के अनुयायी हैं। तानसेन पुत्र-वंश में ध्रुवपद के साथ वीणा एवं रबाब व पुत्री-वंश में वीणा और ध्रुवपद दोनों ही अपनाये गये।

जयपुर के सेनिया घराने का संबंध तानसेन के पुत्र विलास खां से माना जाता है। विलास खां के पौत्र करीम सेन और उनके पौत्र मसीत खां ने सितार-वादन में सुधार कर मसीतखानी बाज बनाया, जिसका

अनुसरण तानसेन पुत्र सुरत सेन ने भी किया। जयपुर के महाराजा रामसिंह के आश्रित कलाकार मसीत खां सितारिये की चैथी पीढ़ी में पैदा अमृत सेन एवं भांजे निहाल सेन ने सितार-वादन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। रहीम सेन और अमृत सेन तानसेन के वंशज करीम सेन की पुत्री वंश से थे। रहीम सेन से पूर्व तानसेन के पुत्र-वंश में उनके पौत्र उदय सेन एवं उसके पुत्र करीम सेन को सिखाया, जो जयपुर, गुणीजन खाने में रहे। इस प्रकार तानसेन के वंशज रहीम सेन एवं अमृत सेन ने जयपुर में ही सितार के सेनिया घराने की नींव डाली। इस घराने के कलाकारों ने गायन की अपेक्षा वादन को अपनाया एवं सितार-वादन के विकास का श्रेय इन दोनों पिता-पुत्र को ही जाता है। जयपुर महाराजा रामसिंह के समय सेनिया घराने के वंशजों एवं उनके शिष्यों ने धूम मचा दी, जिसमें रज़ब अली, मोहम्मद खां, अमृत सेन, अमीर खां, मुबारक अली तथा सादिक अली खां प्रसिद्ध कलाकार हुए। मसीत खां के पुत्र बहादुर खां और उनके पोते रहीम सेन ने वीणा और सितार को ऊँचा उठाया। रहीम सेन ने ससुर दूल्हे खां से भी सितार सीखा। तानसेन पुत्र निहाल सेन तथा बहनोई अमीर खां ने सितार के विकास एवं प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। रहीम सेन एवं अमृत सेन में ध्रुवपद-ख़्याल को पूर्णतः सितारमय बना दिया। इस प्रकार राजस्थान में अलवर, भरतपुर, उदयपुर तथा जयपुर सेनिया घराने के प्रमुख गढ़ रहे।

**रज़ब अली का बीनकार घराना**

महाराजा रामसिंह के गुरु रहे प्रसिद्ध बीनकार रज़ब अली खां के पिता व पुत्र रहमत अली खां एवं कुतुबअली खां जयपुर गुणीजन खाने में रहे। भांजे मुशर्रफ खां अलवर व खेतड़ी महाराज के दरबारी बीनकार रहे। इनके तीन पुत्रों में मुसाहिब व सादिक अली खां, झालावाड़, अलवर व रामपुर में भी रहे। सादिक के पुत्र उ. असद अली खां विश्वविख्यात वीणावादक हुए हैं। मुशर्रफ के पुत्र मुसाहिब, भुराव खां व उनके शिष्य बाबू खां, मोहम्मद अली व उनके शिष्य गलता तीर्थाचार्य हरिवल्लभ 'हररंग', मोहम्मद अली के पुत्र आशिक अली, इनायत खां, वीणावादक जमालुद्दीन एवं सितारिये हाफिज़ अली आदि जयपुर के राजा माधोसिंह के दरबारी-कलाकार रहे। बाद में सेनिया घराने में ही सरोदवादक अलाउद्दीन खां ने मैहर, रज़ब अली ने देवास, गायक एवं रबाबवादक मुहम्मद अली खां ने भरपूर ख़्याति प्राप्त की। ख़्याल के लिए ख़्यात सदारंग-अदारंग घराने का विस्तार ग्वालियर, आगरा, किराना व जयपुर में रहा। होरी-धमार का मोहम्मद अली व अमीर खां के घराने का भी मुख्य केन्द्र रामपुर व जयपुर रहा।

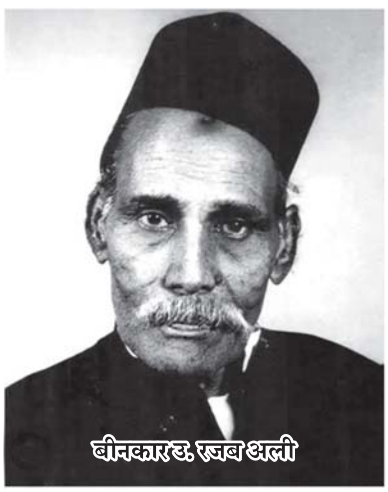

बीनकार उ. रज़ब अली

**राजस्थान के पखावज घराने**

फकीरुल्ला रचित राग 'रागदर्पण' में जावली निवासी पखावजी भगवानदास का तानसेन के संगतकार होने का उल्लेख है। जावली ग्राम भी राजस्थान के मत्स्य अंचल में है। अकबर से उन्हें गुणवत्ता के कारण ढेरों सम्मान प्राप्त हुए एवं पखावज की वर्तमान प्रचलित सभी वादन-शैलियों की मूल में जावली के भगवानदास को माना जाता है। इनकी शिष्य-परम्परा में कृपालराय जोधपुर दरबार में नियुक्त थे, जिन्हें औरंगजेब ने 'मृदंगराय' ख़िताब दिया। इनकी परम्परा में घासीराम और भवानी दीन थे, जिनके कुदऊसिंह पंजाब के ताज खां डेरेदार, लाहौर वाले हद्द खाँ, कादर बख़्श एवं नाना पानसे घराने के प्रवर्तक भी इनके शिष्य रहे। कुदऊ सिंह परम्परा में भवानीदीन, पंजाब में भवानीदास एवं नाना पानसे के लोग इन्हें भवानी सिंह कहते हैं।

पं. पुरुषोत्तम दास पखावजी

जयपुर राज्य में पखावज की परम्परा का 300 वर्षों का इतिहास पं. घनश्यामदास कृत 'मृदंग सागर' में प्राप्त है। आमेर से प्रारम्भ, जयपुर में विकसित होकर ये परम्परा नाथद्वारा में पूर्णपुष्पित होकर पं. पुरुषोत्तम दास पखावजी के प्रयासों से विश्व में अंकित हो गई। यह घराना पं. रूपराम के नाम से विख्यात हुआ। लगभग 275 वर्षों पूर्व आमेर निवासी पं. तुलसीदास से जयपुर में पखावज का सूत्रपात हुआ। इनके वंशजों में हालू जी, हरभगत, फकीरदास, छाजू जी, छबीलदास, पोखरदास, विष्णुदास, सेवादास, चिमना, मान जी आदि नामी पखावजी हुए। इनकी 5वीं पीढ़ी में रूपराम ने इसको नई पराकाष्ठा दी। हालू जी के नाम से जयपुर में एक बस्ती 'हालूका' कहलाई। रूपराम पखावज में ताण्डवनृत्य, डमरु पर नृत्य बोल, राधा कृष्ण, नृत्य-परनों आदि के माहिर वादक थे।

इनके पुत्र वल्लभदास एवं उनके तीन पुत्र चतुर्भुजदास, शंकरलाल एवं खेमलाल हुए। इन्हें राजस्थान में जोधपुर नरेश तख्तसिंह, जसवन्त सिंह, उदयपुर महाराणा फतेहसिंह एवं स्वरूपसिंह, डूंगरपुर राजा उदयसिंह, झालावाड़ नरेश पृथ्वीसिंह आदि का भरपूर प्रोत्साहन मिला। सन् 1893 में शंकरलाल के देहान्त के बाद 'मृदंग सागर' के प्रणेता घनश्यामदास, मन्दिर सेवा में रहे। इनके पुत्र पद्मश्री पं. पुरुषोत्तमदास विश्व प्रसिद्ध पखावजी हुए। ध्रुवपद-गायक जयपुर के पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग ने सन् 1956 के दशक में दिल्ली के श्रीराम कला भारतीय केन्द्र में बड़े डागर बन्धुओं से तालीम लेते वक्त इनसे भी गंडाबन्ध पखावज सीखी।

नाथद्वारा एवं कांकरोली के पुष्टिमार्गीय मंदिरों के ध्रुवपद-कीर्तन में पखावज-संगतकारों में मूलचंद रणछोड़दास की चैथी पीढ़ी के कलाकार थे। उनके पूर्वज वृन्दावनवासी थे एवं श्री नाथजी की सेवा में रहे। उनके भाई रतनलाल एवं उनके ही वंश के श्यामलाल ने भी पखावज-वादन किया।

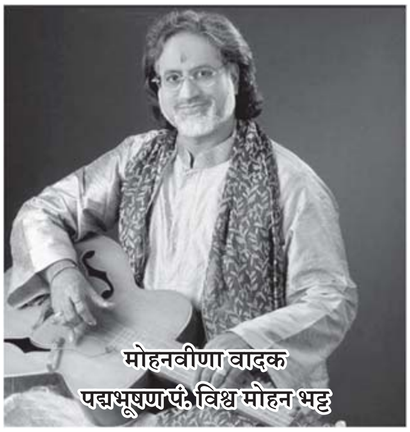

मोहनवीणा वादक
पद्मभूषण पं. विश्व मोहन भट्ट

**गोस्वामी पखावज-परम्परा**

नाथद्वारा के पुष्टिमार्ग के आचार्यों ने भी पखावज की उत्कृष्ट साधना की। गोस्वामी गोविन्दराम सितार एवं पखावज के उद्भट ज्ञानी थे। उनके सुपुत्र देवकीनन्दन पखावज में दक्ष रहे। गोस्वामी कृष्णराय पखावज व तंतु वाद्य दोनों में दक्ष थे, तो गिरधर लाल और उनके तीन पुत्र गो. कल्याणराय, गोकुलदास व देवकीनन्दन जी पखावज में सिद्ध हुए। इन्होंने पं. दीनानाथ, पं. चुन्नीलाल पंवार, गोविन्द मालू, कृष्णदास बनातवाला बुरहानपुर आदि से शिक्षा प्राप्त की। आप लोग ध्रुवपद-ख्याल के भी विद्वान हैं।

कुल मिलाकर राजस्थान की संगीत-परम्परा राजस्थान के संगीतपारखी राजाओं द्वारा संरक्षित, संवर्द्धित होती रही, जिसमें कलावंत, कत्थक, सारंगिये, पखावजिये, रासधारी, वीणावादक, सितारिये एवं करताली आदि को पगार दी जाती थी एवं महाराजाओं के समक्ष उनकी कलाओं के उम्दा प्रस्तुतीकरण हेतु बड़े ईनाम एवं जागीर आदि दी जाती थी। कलाकारों के ऐसे विभागों को उदयपुर में संगीत-प्रकाश, जोधपुर में 'तालीम खाना' एवं बीकानेर में 'संगीतशाला' कहा जाता था।

**राजस्थान के कलाकार, जो स्वयं में घराने थे**

आज एक अहम् प्रश्न यह उठता है कि जयपुर घराने का अस्तित्व जयपुर में ही नगण्य है किन्तु माना जाये तो जयपुर घराने का अस्तित्व ही राजस्थान में गुणीजन खाने की समाप्ति यानि लगभग सन् 1947-57 के मध्य ह्रासोन्मुख था। जयपुर-अतरौली घराना, जो उ. अल्लादिया खां की देन है किन्तु उनके महाराष्ट्र चले जाने के बाद सारे शिष्य महाराष्ट्र में ही पनपे एवं जयपुर घराने के जो भी उस्ताद या शागिर्द रहे, उनके शिष्य सभी राजस्थान से बाहर ही तैयार हुए। उनके शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में राजस्थान में कोई भी गायक-वादक कलाकार प्राप्त नहीं होता है किन्तु यहीं के कुछ ज़िम्मेदार वरिष्ठ साधक, जिन्होंने राजस्थान को ही अपना धर्म और कर्मक्षेत्र मानकर राजस्थान की सांगीतिक विरासत को समृद्ध किया, ख़ुद गाया-बजाया-नाचा। ये अपने फन के माहिर रहे। नई पीढ़ी में शिष्य-प्रशिष्य परम्परा तैयार की, अपनी निजी शैली, रचनाओं के अनेक प्रयोग और नवाचार किये, जिन्हें संगीत-समाज में बहुत आदर से देखा-सुना जाता रहा है, जिनकी तीन पीढ़ियाँ भी तैयार हुईं जो घराने को परिभाषित भी करता आया है। किन्हीं कलाकारों की तीन पीढ़ियाँ यद्यपि नहीं भी दृष्टव्य है किन्तु उनकी कला को किसी भी तरह कम नहीं आँका जा सकता है। कुछ वरिष्ठ कलाकार ऐसे भी हैं, जो स्वयं गायक रहे या अन्य विद्या के किन्तु उन्होंने यहाँ वाद्यकारों की इमारत खड़ी की। उपरोक्ताधार पर कुछ नाम उल्लेखनीय हैं, जो निम्नानुसार हैं - पं. शशी मोहन भट्ट (सितार), पं. महेन्द्र भट्ट (वॉयलिन), पद्मश्री पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग (ध्रुवपद-गायन, वॉयलिन, सितार), पद्मभूषण प. विश्वमोहन भट्ट (मोहन वीणा), पं. रघुवीर शरण भट्ट (सितार), प्रो. रामू शास्त्री (वॉयलिन, अलवर-वाराणसी), उ. महबूब खां (सारंगी), उ. मिठ्ठन खां (क्लारनेट), पं. लक्ष्मी नारायण पंवार (कत्थक एवं तबला), उ. काले खां (तबला), पखावजी पं. पुरुषोत्तम दास (नाथद्वारा-दिल्ली), उ. कायम सेन (सितार), उ. भुल्लन खां (पखावज), पं. अयोध्या प्रसाद (पखावज, जयपुर एवं रामपुर), पं. किशोर पंवार (तबला), पं. रतनलाल (पखावज), पं. श्याम लाल (पखावज), उ. इकराम खान, उ. निज़ामुद्दीन खां (सारंगी), उ. रमजान खां (सारंगी), उ. करीम खां (सारंगी), पत्ती खां (सारंगी), उ. महमूद धौलपुरी (हारमोनियम), उ. अमीर मोहम्मद खां (तबला), पं. दुर्गा लाल (कत्थक, पखावज), उ. दायम अली (तबला), उ. आशिक हुसैन (तबला), उ. हिदायत खां (तबला), पं. जय कुमार पंवार (वॉयलिन), पं. सत्यनारायण पंवार (तबला), पं. ठाकुर किशन सिंह जी (तबला), पं. रवि मोहन भट्ट (वॉयलिन), पं. घिसीलाल डांगी (कत्थक, तबला), पं. जटाशंकर डांगी (तबला), पं. महेश दलवी (तबला), प्रो. आर.डी. वर्मा (सितार, वनस्थली-दिल्ली), पं. राम किशोर दास (पखावज, जयपुर-दिल्ली), पं. बद्री नारायण (पखावज), पं. इन्दरलाल राणा (पखावज), पं. आसकरण गोस्वामी (सितार), पद्म विभूषण उ. सुलतान खां (सारंगी, सीकर-मुम्बई), उ. मोइनुद्दीन खां (सारंगी, सीकर), पद्म विभूषण पं. राम नारायण (सारंगी, उदयपुर एवं मुम्बई)।

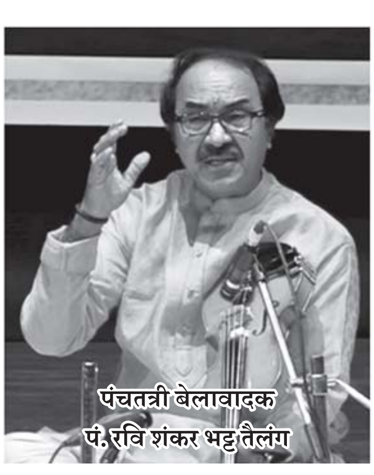

पंचतत्री बेलावादक
पं. रवि शंकर भट्ट तैलंग

**उपरोक्त वरिष्ठ कलाकारों की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा**

इन्हीं वरिष्ठ गुणवन्त कलाकारों की आज शिष्य-प्रशिष्य परम्परा भी विभिन्न वाद्यों की संलग्न साधना से राजस्थान की वाद्य-परम्परा में समर्पित योगदान प्रदान कर रहे हैं - पं. कृष्ण मोहन भट्ट (सितार, जयपुर एवं अमेरिका), पद्मश्री उ. मोइनुद्दीन (सारंगी, जयपुर), पं.

राजशेखर व्यास (रुद्रवीणा), उ. निसार हुसैन खां (तबला), डॉ. विकास गुप्ता (सितार), पं. हरिहर शरण भट्ट (सितार), पं. बाबू लाल शर्मा (बांसुरी), पं. सुरेश गोस्वामी (वॉयलिन), पं. सलिल भट्ट (सात्विक वीणा), पं. रविशंकर भट्ट तैलंग (शास्त्रीय गायन एवं वॉयलिन), प. ब्रज भूषण भट्ट (वॉयलिन), श्री नारायण जी (तबला), प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास (सितार, जयपुर-दिल्ली), डॉ. असित गोस्वामी (सितार), श्री अमित गोस्वामी (सरोद), श्री प्रेम कुमार शर्मा (तबला), श्री कपूर चन्द गंधर्व (तबला), उ. गुलाम हुसैन (तबला), श्री मुंशी अहमद (तबला), श्री धन्नालाल शर्मा (मोहन वीणा), पं. आलोक भट्ट (मोहन वीणा), डॉ. अश्विन दलवी (सुरबहार), प. महेन्द्र शंकर डांगी (तबला), डॉ. त्रिपुरारी सक्सैना (तबला), उ. ज़फर मोहम्मद (तबला), डॉ. पूनम जोशी (सितार), डॉ. वीणा जैन (सितार), पं. चन्द्र मोहन भट्ट (सितार), सरदार अमरजीत सिंह (तबला, अलवर एवं अमेरिका), डॉ. अंकित भट्ट (सितार), श्री राजेन्द्र डांगी (तबला), श्री अथर्व भट्ट (मोहन वीणा), श्री मुदित भट्ट (शास्त्रीय गायन एवं वॉयलिन), श्रीमती मुदिता भट्ट (वॉयलिन), श्री लालाराम भारती (तबला), श्री राजकुमार (तबला), पं. घनश्याम राव (तबला) श्रीमती उर्मिला उपाध्याय (तबला), डॉ. वसुधा सक्सेना (तबला), डॉ. विजय सिद्ध (तबला), श्री सोमनाथ (तबला), श्री मानवेन्द्र डांगी (तबला), उ. अजीज़ खां (क्लारनेट), श्री अनवर हुसैन 'नीलू' (संतूर), श्री दिनेश खींची (तबला), श्री परमेश्वर कत्थक (तबला), पं. प्रवीण आर्य (पखावज), श्री प्रतीश रावत (पखावज), श्री ऐश्वर्य आर्य (पखावज), श्री मोहम्मद गौस (तबला), श्री अल्लारक्खा खां (सितार), श्री शाहनवाज़ खान (सारंगी), उ. ज़ाकिर धौलपुरी (हारमोनियम), श्री अमीरुद्दीन खां (सारंगी), श्री साबिर खां (सारंगी), श्री कायम खां (सारंगी), श्रीमती अरुणा कल्ले (सारंगी), डॉ. वर्षा अग्रवाल (संतूर, झालावाड़-उज्जैन), पं. ब्रजनारायण (सरोद), डॉ. गीत सुधा भट्ट (सितार), श्री मोमिन खां (सारंगी), डॉ. अंकित पारीक (तबला), श्री मुज़फ्फर रहमान (तबला), मास्टर मो. ज़मान (तबला), मो. इरफान (सितार), श्री अकबर हुसैन (तबला), श्री फरीद हुसैन (तबला), श्री अब्दुल करीम (सारंगी), श्री लियाकत खां (सारंगी), डॉ. संतोष पाठक (सितार), डॉ. सुमित (वॉयलिन), श्री भंवरलाल राव (तबला), श्री कपिल वैष्णव (तबला), श्री हरिनारायण (पखावज), श्री मांगीलाल पंवार (तबला), डॉ. अनूपराज पुरोहित (हारमोनियम) एवं श्री कयाम अली (संतूर)।

अन्तोगत्वा यह कहना अत्यन्त आवश्यक एवं अहम् है कि वर्तमान में राजस्थान में वाद्य की परम्परा अत्यन्त समृद्ध एवं संतोषजनक मानी जा सकती है। आवश्यक है केन्द्र एवं राजस्थान सरकारों, सरकारी एवं गैर सरकारी प्रतिष्ठानों एवं पूंजीपति उद्योगपतियों द्वारा उसे समुचित प्रोत्साहन प्रदान करें, जिससे प्रतिभा-पलायन रोका जा सके।

लेखिका: भूतपूर्व अधिष्ठाता, ललित कला संकाय एवंभूतपूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
टॉप ग्रेडेड आकाशवाणी-दूरदर्शन ध्रुवपद-गायिका
सम्पर्कः 118-ए, 'श्री गोकुल मंजरी', गेटोर रोड़, ब्रह्मपुरी, जयपुर - 302002 (राजस्थान)
मो. 9414336936, 9928277833, 8058778336
Email.- madhubhatttailang@gmail.com

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ●आकर्षक गेटअप
●नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है- चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ- साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।

- भँवरलाल श्रीवास
निदेशक

आप स्वयं पधारे या सम्पर्क करें...

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आलेख

# तुम्बे का इतिहास एवं महत्व

प्रो. रवि शर्मा

**शोध सार:**

प्रस्तुत लेख में तूम्बे का इतिहास, उपलब्धता तथा उपयोगिता का वर्णन किया गया है तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि तुम्बा संलग्न वाद्यों में ध्वनि माधुर्य अधिक होता है जिसको सुनने से उसकी ध्वनि में स्निग्धता का भाव आता है तथा तूम्बे के प्रयोग से नाद में तीव्रता बढती है।

**ऐतिहासिक तथ्य:**

वर्तमान में यदि तूम्बे की उपयोगिता पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि प्राचीन काल के संगीत विद्वानों ने नाद की तीव्रता अर्थात वॉल्यूम को बहुत गम्भीरता से लिया था। अत: लगातार प्रयोगों के बाद लौकी अर्थात कद्दू को ही नाद की तीव्रता में अधिक उपयोगी पाया होगा। आज भी तूम्बा ही ऐसा महत्वपूर्ण अंग है जिसकी बदौलत नाद की तीव्रता में वृद्धि होती है। यह उन्हीं महर्षियों के शोध का परिणाम था, जिसके कारण तूम्बा तत वाद्यों में उपयोगी हुआ। भारतीय संगीत के तंत्री वाद्यों की श्रेणी में तूम्बे का प्रथम प्रमाण सूत्र काल में प्राप्त होता है। इससे पहले अरण्यक काल में भी तूम्बे का उल्लेख आया है परन्तु वह लकड़ी को खोदकर बनाये गये संदर्भ में आया है, जिसे 'अम्भण' कहा गया तथा दो प्रकार की वीणाओं के विभिन्न अंगों की तुलना करते समय इस हिस्से का भी उल्लेख हुआ है। इस काल में दो प्रकार की वीणाओं के प्रचलन का उल्लेख मिलता है- दैवी वीणा एवं मानुषी वीणा। अम्भण का आविर्भाव यह प्रमाणित करता है कि इससे पहले का तंत्री वाद्य 'वाण' तूम्बा-रहित था। परिणाम स्वरूप इसमें नाद की तीव्रता कम थी। बाद में वीणा का एक नया रूप सामने आया जिसमें डाँड सीधी थी तथा स्वरों की निकासी तारों पर उँगलियों द्वारा घसीट कर ही प्राप्त की जाने लगी।

अमरकोश (400 ई.) में कद्दू को लौकी और लौआ नाम से जाना गया है। इसके पर्यायवाची शब्दों में पहले तूम्बी तथा बाद में अलाबू कहा गया है। लाट्यायन श्रोत सूत्र में कई वीणाओं का वर्णन आया है, परन्तु जिस तंत्री वाद्य के साथ तूम्बा जुड़ा हुआ है उसे अलाबू वीणा कहा गया है। अन्य वीणाओं के लिए ये तथ्य प्राप्त नहीं होता कि उनमें तूम्बा जुड़ा था या नहीं बल्कि यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल अलाबू वीणा में ही तूम्बा जुड़ा हुआ था। जिन वीणाओं का सर्वाधिक प्रचलन हुआ, वे सभी प्राकृतिक तूम्बे से जुड़ी वीणाएँ ही थीं। इसके पीछे मूल कारण ध्वनि-विस्तार ही था।

प्रतिशांख्य एवं शिक्षा काल (800 ई.) में वाद्य सम्बंधी छुटपुट जानकारी के अतिरिक्त कुछ विशेष वर्णन नहीं मिलता।

तत वाद्यों की विकास यात्रा में स्वरों के निकास के लिए एक स्वर के लिए एक तार जैसी सुविधा के अतिरिक्त अब स्वरों की उत्पत्ति तार पर घसीट कर की जा सकती थी तथा तूम्बे का प्रारम्भिक विकास भी हो चुका था। हरिवंश पुराण (ई. 200 से 500 ई.) में तो तूम्बे युक्त वाद्य को तूम्बी वीणा कहा गया है। जैन ग्रंथ रायपसेनियसुत्र (ई. 400 से 600 ई.) में लगभग साठ वाद्यों का उल्लेख तूरीय अथवा तूर्य संज्ञा के अन्तर्गत तूम्बी वीणा का प्रमाण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे यह जान पड़ता है कि यह कोई ऐसी वीणा थी जिसमें तूम्बा लगा हुआ था परन्तु तूम्बी शब्द का प्रयोग उसके छोटे आकार होने का आभास भी देता है। अर्थात् यह वाद्य आज के छोटे आकार की तानपुरी या तम्बुरी के समान जान पड़ता है।

बौद्ध काल में जिन तंत्री वाद्यों का उल्लेख मिलता है उनमें तुम्बी वीणा का वर्णन भी अत्यंत महत्व रखता है। तुम्ब वीणा की तुम्बी के लिए बीलीफल का उपयोग किया जाता था। इससे यह तथ्य सामने आता है, कि तूम्बा बीलीफल से प्राप्त किया जाता था, जो कि लौकी ही था।

इस काल में 'तुम्ब' वीणा के वर्णन आने से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिसमे तूम्बे का प्रयोग होता था।

बौद्ध धर्म के समानातंर जैन धर्म भी विकसित हो रहा था। जैन साहित्य में प्रचूर मात्रा में संगीत संबंधी सामग्री मिलती है। जिसमें यह कहा गया है कि ऐसे कई व्यवसायिक वर्ग है जो कि तरह-तरह के वाद्य बजाने में निपुण हैं। इनमें एक वर्ग का नाम तुणैल मिलता है। जिसका अर्थ होता है तूण-वादक। तूण वादक वह व्यवसायी वर्ग था जो कि 'तुम्बवीणिय' अर्थात् तुम्बी वीणा बजाया करते थे। यह एक ऐसा तंत्रीवाद्य था जिसमें तूम्बा लगा हुआ था। जैन ग्रंथ रामायरोणीय ग्रंथ में लगभग 60 वाद्यों का उल्लेख आया है। वाद्यों के लिए तूर्य संज्ञा दी गई है। इन्हीं वाद्यों में तूम्ब-वीणा वाद्य का उल्लेख भी आया है।

नाट्यशास्त्र में कई वाद्यों का उल्लेख आया है उनमें कच्छपी ऐसा वाद्य प्रतीत होता है जिसमें तूम्बा लगा हुआ था। नाट्य शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों की संख्या अधिक है। फिर भी कच्छपी ऐसा वाद्य है जिसमें तंत्री लगी हैं तथा उसमें तूम्बा लगा हुआ है। पाणिनीय शिक्षा (ई. पू. 500) में अवश्य अलाबू वीणा का उल्लेख मिलता है। और अपनी उपस्थिति का बोध

कराता है। तूम्बे की वाद्यों में उपस्थिति सूत्र काल से प्रारम्भ होकर तेरहवीं शताब्दी के ग्रंथ संगीत मकरंद, संगीत समयसार में भी मिलती है। इसी काल में संगीत रत्नाकर में वर्णित किन्नरी बृहतीवीणा के उल्लेख से उस काल में तूम्बे की उपस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

लगभग 200 ई. पू. से लेकर 1200 ई. तक के समय में पाये जाने वाली मूर्तियों में उकेरे गए तंत्री वाद्यों को देखने से यह समझ में आता है कि इनमें सबसे पहले एक तूम्बा तथा बाद में डांड के पीछे दाईं और बाईं छोर पर दो तूम्बों के लगे होने का प्रचलन शुरू हो गया था। इस चरण में एकतंत्री महत्वपूर्ण वाद्य है, जिसमें एक तरफ तूम्बा लगा हुआ है। इसका आकार छोटा है तथा आधा कटा हुआ है। एकतंत्री वीणा को भरत, मतंग और नारद के समय घोषक, घोषवती या ब्राह्मी वीणा कहा जाता रहा तथा नान्यदेव, सुधाकलश तथा शारंगदेव ने इसी को एकतंत्री कहा है। एकतंत्री में आधे तूम्बे के पश्चात् छोटा तूम्बा परन्तु पूरे तूम्बे का वर्णन 7वीं से 13वीं शताब्दी के बीच मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इतना ही नहीं, डांड के दोनों तरफ तूम्बे के जुड़े होने का चलन प्रारम्भ हो गया था। जो कि उसकी उपयोगिता एवं प्रचलन को दर्शाता है। उपर्युक्त दोनों प्रकार के तूम्बों का वर्णन प्रायः सीकर (7वीं से 8वीं शती), नालंदा (6 छठी शताब्दी), प्रतिहार (10 वीं शताब्दी) में वर्णित मटकोड़ा (13वीं शताब्दी), होइसालेश्वर मंदिर (12वीं शताब्दी) में वर्णित मूर्तियों में प्राप्त होता है। इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि एक एवं दो तूम्बों वाली वीणा का चलन प्रारम्भ हो गया था एवं स्वरमण्डल जैसी वीणा का प्रचलन समाप्त हो रहा था।

इसके पश्चात् (13वीं शताब्दी) किन्नरी वीणा का आगमन हुआ, जो कि परदे युक्त वीणा थी और उसमें तीन तूम्बे संलग्न थे। दो तूम्बे डांड के बाँई और दाँई ओर तो थे ही और तीसरा तूम्बा डांड के बीच में लगा दिया गया। इस वीणा का आविष्कार मतंग (800 ई.) ने किया था। इसका सर्वप्रथम विस्तृत वर्णन मानसोल्लास (12वीं शताब्दी) में मिलता है। कुछ अधिक न कम, इस जैसा वर्णन संगीत सार एवं संगीत रत्नाकर (तेरहवीं शताब्दी) में भी मिलता है। सर्वप्रथम संगीत रत्नाकर के रचयिता शारंगदेव ने किन्नरी वीणा के दो रूप बतलाए हैं। जिसे उन्होंने बृहत्ती एवं लघ्वी वीणा संज्ञा प्रदान की है। बृहती वीणा में उन्होंने तीन तूम्बों का उल्लेख किया है। इस प्रकार की वीणा को कुम्भ कोणम (17वीं शताब्दी) के रामेश्वरम मन्दिर में उकेरी गई प्रतिमा में देख सकते हैं। जिसमें उस प्रतिमा के हाथ में किन्नरी वीणा के डांड के पीछे तीन तूम्बे लगे हुए हैं। यह तीनों आधे-आधे तुम्बे हैं इन्हें उसने अपने वक्ष एवं उदर पर रखा हुआ है। इन वीणाओं को देखने से पता चलता है कि उस समय वीणा का निर्माण शरीर की बनावट के अनुसार होता होगा अतः वीणा का आकार छोटा था तथा वादिकायें खड़ी मुद्रा में वीणा बजा रही है। इन वीणाओं का डांड अत्यंत पतला होने के कारण इनके तूम्बे का आकार भी छोटा है। इस प्रकार की वीणा को ध्यान से देखने पर यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि इसमें परदे लगे हुए हैं। जिससे स्वरों का निकास बाँये हाथ की ऊंगली द्वारा पर्दे के विभिन्न स्वर अंतरालों पर रखकर किया जा सकता है। इस वीणा में तीन तूम्बे लगाने का अभिप्राय यह हो सकता है कि किस प्रकार स्वरों की तीव्रता (वाल्यूम) में वृद्धि हो सके।

तूम्बे की विकास यात्रा में त्रितंत्री वीणा का आगमन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका वर्णन संगीत रत्नाकर (13वीं शताब्दी) में पाया जाता है जिसके डांड के दोनों तरफ (बाँये एवं दायें छोर पर) दो आधे-आधे तूम्बे लगे हुए हैं। त्रितंत्री परदे युक्त वीणा थी। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि इससे पूर्व एकतंत्री एवं किन्नरी वीणा प्रचलित थी जिसमें एक, दो तथा तीन तूम्बे जुड़े हुए थे, परन्तु उनका आकार छोटा था। समय के साथ-साथ इनके स्वरूप में परिवर्तन तूम्बे के आकार का बड़ा होना स्वभाविक ही था। कई हिस्सों से जुड़कर बना वाद्य एक दूसरे के हिस्सों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन का आभास राधा गोविन्द संगीत सार (प्रताप सिंह देव: 18वीं शताब्दी) में मिलता है। जिसमें दो प्रकार के तम्बूरों का वर्णन है: निबद्ध एवं अनिबद्ध अर्थात् तानपूरे का अस्तित्व सामने आ चुका था। जिसके डांड का आकार बड़ा था। यह गुलू युक्त वाद्य था, जो कि तूम्बे और डांड के बीच को जोड़ने का कार्य करता है। तम्बूरे से ही गुलू युक्त वाद्यों की एक ऐसी श्रेणी प्रारम्भ होती है, जिससे सितार एवं सुरबहार जैसे वाद्यों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। परदे विहीन तम्बूरा को अनिबद्ध तथा परदे लगे तम्बूरे को निबद्ध की संज्ञा प्रदान की गई है। पहले का विकास तानपूरे के रूप में तथा दूसरे का सितार के रूप में विकास हुआ। निबद्ध एवं अनिबद्ध तानपूरे का दिग्दर्शन हमें इसी काल की राग चित्र माला (17वीं शताब्दी) में होते हैं।

राग माला चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि लम्बी डांड के साथ गुलू भी जुड़ गया था और उसके साथ ही तूम्बा भी। जिसका प्रचलन 17वीं शताब्दी तक अधिक प्रचार में आ गया था। जिसे तम्बूरा नाम से जाना गया। इस वाद्य में तूम्बे का आकार भी बड़ा हो गया था। तूम्बे के आकार ने ही सितार के ढाँचे को प्रभावित किया है। (18) तानपूरे एवं सितार दोनों ही वाद्यों में गुलू और उसके साथ तूम्बा जुड़ा हुआ है।

उपर्युक्त वाद्यों में तूम्बा लगाने की प्रक्रिया एक जैसी ही है। सितार में लगा हुआ तूम्बा तानपूरे के तूम्बे की अपेक्षा थोड़ा छोटा होता है। जिसका प्रयोजन नाद की तीव्रता में वृद्धि करना होता है। यह एक प्रकार से एम्पलीफायर का काम करता है। गुलू के साथ तूम्बे वाले वाद्यों की श्रेणी में सुरबहार को भी सम्मिलित किया जाता है। इसमें तूम्बे का आकार बड़ा और अर्द्ध वृत्ताकार होता है परन्तु वह सितार एवं तानपूरे की अपेक्षा समतल होता है।

परम्परागत रूप से वर्तमान समय में तंत्री वाद्यों की श्रेणी के दो वाद्य रूद्र वीणा तथा विचित्र वीणा में ही समान आकार के दो तूम्बे पाये जाते हैं। जो कि डांड के बाँए तथा दाँए दोनों ओर लगा रहते हैं। इनकी गोलाई का आकार

लगभग 50 से 60 ईंच रहता है। रूद्र वीणा में यह वृत्त 55 से 60 ईंच तथा विचित्र वीणा में 50 से 55 ईंच रहता है।

**तूम्बे की उपलब्धता:**

लौकी परिवार के फलों का वैज्ञानिक नाम क्यूकूरबिटा है। जिसमें स्कैश और पम्पकिन भी आते हैं, इसके फूल पीले रंग के होते हैं। नर और मादा एक ही बेल पर स्फुटित होते हैं। नर फूल मादा फूल से एक सप्ताह पहले बेल पर लग जाता है। इसकी बेल बहुत तेजी से फैलती है। बेल की डंठल जमीन पर या पेड़ पर भी फैलती हैं।

भारत में तूम्बे की खेती दो जगह होती है। महाराष्ट्र के जिला मिरज के गाँव पंढ़रपुर में तथा पश्चिम बंगाल के कलकत्ता शहर से कुछ दूरी पर हुगली नदी के पास बसे एक गाँव पोशपुर में। पंढ़रपुर में पाये जाने वाले तूम्बों की विशेषता यह है कि इनकी मोटाई आधा सूत होती है। पश्चिमी बंगाल में पाये जाने वाले तूम्बे की मोटाई आधे सूत से भी कम होती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बंगाल में पाये जाने वाले तूम्बे पंढ़रपुर की अपेक्षा थोड़े पतले होते हैं।

तूम्बे की खेती अंगूर की खेती के समान ही होती है। इसकी बेल को जमीन से लगभग चार फुट की ऊँचाई पर लकड़ी के एक जाल पर चढ़ा दिया जाता है। जब फल आते हैं तो जाल के अंतरालों से जमीन की ओर लटका दिया जाता है। जैसे ही यह बड़ा आकार लेना आरम्भ करते हैं, वैसे ही जमीन पर आकर टिक जाते हैं। इनके सूख जाने के पश्चात् किसान इन्हें वाद्य निर्माताओं को बेच देते हैं । वे इन्हें ढंठल से काटकर इसका गूदा (सूखने के पश्चात्) बड़ी सावधानी से खुरचकर निकालते हैं। तूम्बे को भीतर से साफ करने के पश्चात् इन्हें पूरी तरह से सुखाने के लिए धूप में रख दिया जाता है। पूर्व निर्धारित समय के पश्चात् इन्हें एक बार फिर छोटे तालाब में डाल दिया जाता है। इसका कारण यह है कि यदि इनके अंदर कुछ भी गूदा बचा रह गया हो तो वह पानी के साथ घुलकर बाहर निकल आये। बाहर निकालने के पश्चात् इन्हें फिर धूप में सूखने के लिए रख दिया जाता है। इनके पूरी तरह से सूखने के पश्चात् वाद्य बनाने वाले कारीगरों के पास पहुँचा दिया जाता है, जिससे इन्हें तूम्बे वाले वाद्यों (तानपुरा, रुद्र वीणा, विचित्र वीणा, सुरबहार, सितार) में इनका प्रयोग किया जा सके। तूम्बा चुनते समय वाद्य निर्माता इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि उसमें किसी प्रकार का दाग न हो, कहीं से दबा हुआ न हो और न ही कहीं से टूटा हुआ हो।

**निष्कर्ष:**

ऐसे तत वाद्य जिनमें तूम्बा संलग्न रहता है, उनका ध्वनि-माधुर्य अपनी आकृति के अनुसार बदलाव ग्रहण करता है। यदि उसका आकार बड़ा है तो गंभीर या मंद्र ध्वनि तथा छोटा आकार होने पर तूम्बा मध्य एवं तार सप्तक स्वर के घनत्व की ओर इंगित करता है। अर्थात् ध्वनि तारता तूम्बे के व्यास पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त ध्वनि का तारता तार की लम्बाई पर भी निर्भर करती है।

तत वाद्य, जिनमें तूम्बा संलग्न रहता है, उनका ध्वनि-माधुर्य तारों से निकले अनुवादों की संख्या पर भी निर्भर करता है; परन्तु इनको दिशा प्रदान करने के लिए तूम्बे का आकार, आयाम, मोटाई तथा वाद्यानुसार तबली के किनारों के साथ उसका व्यवस्थित रूप से जुड़ा हुआ होना अत्यंत आवश्यक होता है। थोड़ी सी भी असावधानी वाद्य की नादोत्पत्ति के माधुर्य में बाधा डाल सकती है। लौकी से बने तूम्बे कई तंत्री वाद्यों में लगे होते हैं, उनके विभिन्न पहलुओं को देखने के बाद उनके नाद की तीव्रता सम्बंधी के तथ्य को जानने का प्रयास किया। बहुत बड़े तुम्बे लगाने के बावजूद उसके नाद का वाल्यूम अधिक नहीं है। विचित्र वीणा के लिए भी यही कहा जा सकता है। परन्तु सितार, सरोद, तानपुरा एवं सुरबहार के लिए यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि तूम्बे के अत्यधिक व्यास पर तबली रखी जाती है। अतः नाद की तीव्रता बढ़ जाती है।

लेखक: पूर्व डीन एवं अध्यक्ष, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
सम्पर्क : 28, भारती आर्टिस्ट कॉलोनी, विकास मार्ग, दिल्ली 110092
मोबाईल: 9873107335
ई मेल: profravisharma@gmail.com

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल ( म.प्र. )

गौरवशाली 13वाँ वर्ष

कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मानजनक मंच उपलब्ध कराने हेतु
कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'

0755-2562294, 9425678058 kalasamay1@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आलेख

# प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र और यूनान के तत वाद्य

डॉ. मल्लिका बनर्जी

प्राचीन संगीत वाद्ययंत्रों का अध्ययन संगीतशास्त्र में बहुआयामी महत्त्व रखता है। यह न केवल संगीत के ऐतिहासिक विकास की गहन समझ प्रदान करता है, अपितु सांस्कृतिक संदर्भों और प्रदर्शन पद्धतियों के क्रमिक परिवर्तन को भी उजागर करता है। इन वाद्ययंत्रों के माध्यम से विद्वान और कलाकार अनुमान लगा सकते हैं कि सहस्राब्दियों पूर्व का संगीत कैसा रहा होगा, और किस प्रकार उसकी संरचना, प्रस्तुति तथा सौंदर्यबोध में समय के साथ परिवर्तन और परिष्कार हुआ।

स्थापत्य कला में उत्कीर्ण संगीत सभाओं की अनुकृतियाँ तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में संगीत की भूमिका को समझने में सहायक सिद्ध होती हैं। चूँकि कंठ संगीत अमूर्त होता है और दो शताब्दियों पूर्व तक ध्वनि रिकॉर्डिंग की कोई तकनीक उपलब्ध नहीं थी, अतः उस युग के संगीत के स्वरूप को समझने के लिए वाद्ययंत्रों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है।

विभिन्न सभ्यताओं के स्थापत्य में अंकित वाद्ययंत्रों की छवियाँ, प्राचीन वाद्यों के भौतिक अवशेष, तथा संगीत और अन्य विषयों पर लिखित ग्रंथों में प्राप्त संगीत-संदर्भ, उस युग के संगीत की संरचना, प्रयोग और सामाजिक महत्त्व के प्रमाणस्वरूप माने जाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों और राजकीय समारोहों में प्रयुक्त वाद्ययंत्रों के उल्लेख तत्कालीन समाज में संगीत की प्रतिष्ठा और तकनीकी-कलात्मक प्रगति का संकेत देते हैं।

वाद्ययंत्रों की निर्माण विधियों, प्रयुक्त सामग्रियों, ट्यूनिंग प्रणालियों, ध्वनिकी और शिल्प कौशल के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वाद्ययंत्रों का विकास एक सतत शोधपरक प्रक्रिया रही है। संगीतज्ञों और वाद्यनिर्माताओं द्वारा ध्वनि के प्रति सौंदर्यपरक दृष्टिकोण और तकनीकी नवाचारों ने संगीत को एक समृद्ध कलारूप में परिवर्तित किया।

प्रस्तुत आलेख में प्रमुख प्राचीन सभ्यताओं के पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर तत्कालीन वाद्ययंत्रों का तथ्यपरक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे संगीत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को अधिक स्पष्टता और गहराई से समझा जा सके।

प्राचीन सभ्यताओं में भारत के समकालीन उन्नत चार और सभ्यताएं थी, ये थीं चीन, मेसोपोटामिया, मिस्र और यूनान। इनमें से तीन प्राचीन सभ्यता मेसोपोटामिया, मिस्र तथा यूनान का संगीत एक दूसरे से जुड़े हुए हैं; अतः इन तीन संस्कृति के तत वाद्यों कि चर्चा इस आलेख का विषय रहेगा।

**मेसोपोटामिया के तत वाद्य**

मेसोपोटामिया में तत वाद्य हार्प अपने प्रारंभिक चरण में आकार में बड़ी दिखाई देती है। यह वाद्य यंत्र पहली बार लगभग 3200 ईसा पूर्व के सुमेरियन कलाकृतियों के साथ प्राप्त हुआ। जमीन पर रखे हुए इसकी ऊंचाई, बैठे हुए व्यक्ति से भी ऊँचा दिखाई देता है। ब्रिटिश संग्रहालय, पेनिसिलवेनिया विश्वविद्यालय और बगदाद के संग्रहालयों में रखे गए तीन बहुमूल्य वाद्य यंत्र, अर्थात 3 लायर, सभी 'उर' के शाही कब्रिस्तान के खुदाई से प्राप्त हुए हैं। इनका माप क्रमशः 106 सेमी, 116 सेमी और 120 सेमी है। इन्हें ऊर्ध्वाधर स्थिति में बजाया जाता है। इनमें दोनों में से छोटी भुजा वादक के बगल में और लंबी भुजा वादक से दूर रखी जाती थी।

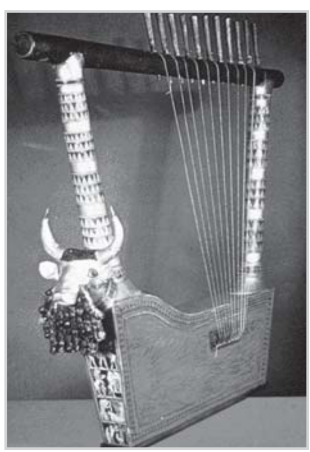

यह बैल वीणा (Bull Lyre), उर के शाही कब्रिस्तान से खुदाई में प्राप्त तीन वीणाओं (Lyre) में से एक है। तीनों लायरों में से प्रत्येक के ध्वनि बॉक्स के सामने से एक अलग जानवर का सिर निकला हुआ था जो उसकी ध्वनि को दर्शाता था: बैल वीणा बास थी अर्थात मंद्र स्थान के लिए, बछिया वीणा टेनर थी अर्थात मध्य सप्तक और गाय वीणा अल्टो थी अर्थात तार स्थान का द्योतक। तीनों लकड़ी के बने थे। बैल की वीणा या बुल लायर लगभग 1.2 मीटर ऊँची थी। बैल का मुख और सींग लकड़ी के बने थे और सींगों पर सोने की पन्नी लिपटी हुई थी। ध्वनि-पेटी को सीप, लापीस लाजुली और लाख की लाल लेप से बनी पच्चीकारी की एक चौड़ी किनारी से सजाया गया था और यह किनारी आयताकार सीधी भुजाओं तक

फैली हुई थी। तारों को "क्रॉसबार" से बाँधा गया था और पुल के ऊपर से नीचे की ओर लटकाकर ध्वनि-पेटी के आधार से जोड़ा गया था। शोधकर्ताओं का मानना है कि इसके स्वर रानी पु-आबी की लायर के समान ही थे और इस में स्वर तारों की लंबाई के बजाय उनके तनाव से बांधे जाते थे। कब्र के दीवारों पर उकेरी हुई रंगीन चित्रों के आधार पर इसे पुनर्निर्मित कर ब्रिटिश संग्रहालय में एक बहुमूल्य प्रदर्शनी के रूप में रखा गया है। इसका इतिहास 2600 ईसा पूर्व बताया गया है। (© ब्रिटिश संग्रहालय के न्यासी)। पार्श्व में उसी कब्रिस्तान में मिली चाँदी की वीणा है जिस का मुख गाय का है और यह तार सप्तक के लिए प्रयुक्त होता होगा ऐसा माना जाता है। तीसरा लायर पहले के समान बना है केवल उसका मुख बछड़े की प्रतिकृति है तथा सोने का बना हुआ है।

रानी पु-आबी की एक और लायर, जो एक और उच्च कोटी कि कलाकृति है और त्रिकोणीय वीणा का सबसे पुराना ज्ञात उदाहरण है। उस प्रारंभिक काल में मेसोपोटामिया वासियों को वीणा बजाने के लिए कोण या जवा का उपयोग ज्ञात था या नहीं, यह किसी प्रमाण के अभाव में ज्ञात नहीं है।

सबसे प्राचीन सभ्यता के रूप में स्वीकृत मेसोपोटामिया कि संस्कृति ने इतनी गहरी छाप छोड़ी है कि इसके निशान मिस्र और ग्रीस की सभ्यताओं में देखे जा सकते हैं।

**प्राचीन मिस्र के तत वाद्य**

मिस्र में की प्रकार के तत वाद्यों का प्रचालन रहा है अर्थात हार्प, लायर और ल्यूट तीनों प्रकार के तत वाद्यों का प्रचुर मात्रा में प्रचलन दिखता है। मिस्र की संस्कृति में धनुष रूपी वीणाओं को काफी लोकप्रियता हासिल थी। छोटे बड़े हर प्रकार के धनुष वीणा का यहाँ प्रचालन रहा है। बल्कि आज भी यह वाद्य कई आकार में उपयोग में लाए जाते हैं। आज इस वाद्य को उडूंगु या अइँगु के नाम से जाना जाता है। मिस्र में धनुष हार्प की कुछ शुरुआती तस्वीरें, फैरो के मकबरे से हैं, जो करीब 5000 साल पुरानी हैं। हियरोग्लिफ (चित्रलिपि) हमें बताते हैं कि प्राचीन मिस्र में अनेक हार्प थे। मिस्र के फैरो रेमसिस तृतीय (1198-1166 ई.पू.) ने अपने मकबरे के ऊपर कई धनुष रूपी हार्प के चित्र बनवाए थे।

अगला चित्र गीज़ा शहर के सक्कारा कब्रिस्तान में नेक्रोपोलीस की एक रिलीफ़ की है। इसमें दो गायक एक विशाल 'बो हार्प' की संगत में गा रहे हैं।

लगभग 3000 से अधिक वर्षों तक मिस्र की कलाकृतियों में हार्प दर्शाए गए हैं। खुदाई में प्राप्त कुछ हार्प, मिस्र की बेशकीमती धरोहर हैं। इनकी वही हैसियत है जो भारतीय वीणा और चीनी 'चिन' की है।

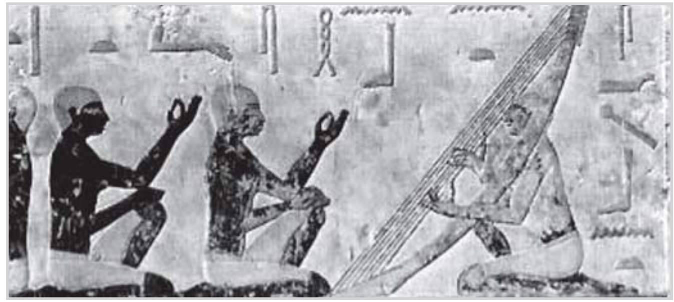

हालांकि, यह काफ़ी कुछ सुमेरियाई हार्प से मिलता-जुलता है, लेकिन यह पता नहीं कि हार्प सुमेर से आए या सुमेर के लोग इसे मिस्र से लाए। मिस्र में प्राचीन साम्राज्य के दौरान एक प्रकार के छोटे 'बो हार्प' का इस्तेमाल किया जाता था, जिसका आकार बहुत छोटा था और जिसका साउंड बोर्ड खाल के एक टुकड़े से बना था।

बाद में मिस्र में लम्बवत खड़े हार्प भी मिले, जिनके तार बाहर की तरफ़ थे और डंडी वादक के शरीर के पास थी। इन हार्प को अधिकतर ज़मीन पर टिका कर रखा जाता था और वादक झुककर इन्हें बजाते थे। नए साम्राज्य के आते-आते हार्प 19 तारों के साथ और अधिक बड़े हो गए और वादक को खड़े होकर इन्हें बजाना होता था।

रेमसिस तृतीय (1200 ई.पू.) के मकबरे की एक रिलीफ़ में दो विशाल हार्प देखे जा सकते हैं, जिनकी ऊंचाई करीब सात फीट है। इन हार्प को चित्रकारी और विभिन्न रंगों के मोज़ेक से सजाया गया था। इन सीधे खड़े हार्प के अलावा, नए साम्राज्य में मिस्र के निवासियों के पास छोटे हार्प भी थे। इन्हें बैठे हुए वादक के घुटनों और टेढ़े पाँव के सहारे टिकाया जाता था। मध्यकालीन साम्राज्य और नए साम्राज्य में एक और छोटा शोल्डर हार्प भी पाया जाता था, जो एक खोखली आर्च के आकार का था। इसमें तीन से पाँच तार थे और इसे बाएँ कंधे पर रखा जाता था। इसे दायें हाथ से बजाया जाता था। पुराने साम्राज्य तक हार्प को सिर्फ़ पुरुष बजाते थे। बाद के समय में महिला हार्प वादकों को भी कलाकृतियों में अक्सर चित्रित देखा गया। मिस्र में हार्प को 'बेट' नाम से जाना जाता था। कोणीय हार्प का भी यह नाम था। कर्ट सैक्स के अनुसार, कोणीय हार्प एशिया से आया था, क्योंकि सबसे पहले इसे एशिया के संगीतकारों का प्रतिनिधित्व करती कलाकृतियों पर देखा गया था।

मिस्र का लायर पहली बार करीब 2000 ई.पू. में सामने आया था। जिसमें विभिन्न लंबाई की मुड़ी हुई या सीधी भुजाएँ थीं। दायें हाथ में एक लंबा प्लेक्ट्रम पकड़कर इसे बजाया जाता था, जिससे सारे तार एक ही बार में छेड़े जा सकें। बाएँ हाथ की ऊंगलिया बाहर की तरफ फैली रहती थीं, ताकि अनचाही आवाज़ों को दबाया जा सके। नियमानुसार इसे आड़ा पकड़ा जाता था

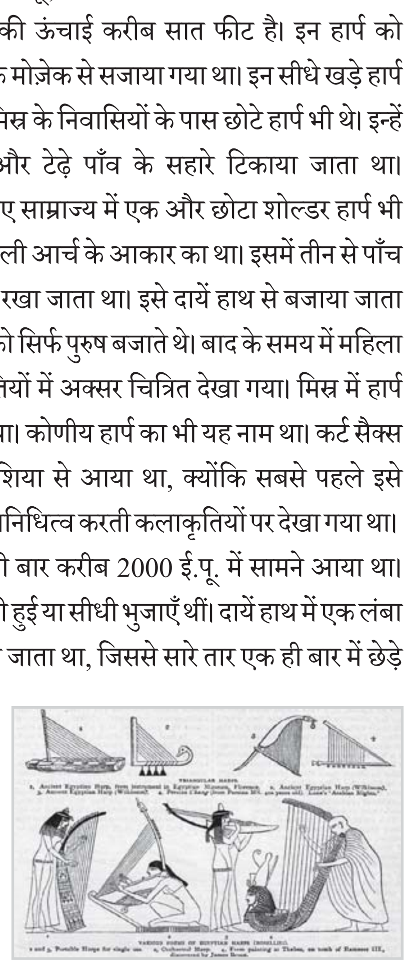

और इसका क्रॉसबार वादक के शरीर से दूर बाहर की तरफ़ होता था। नए साम्राज्य के समय के लायर में एक उथला, चौकोर साउंड बॉक्स, विपरीत दिशाओं में जाती हुई दो असमान भुजाएँ और एक तिरछा क्रॉसबार था।

नीचे दी गई तस्वीर में यूनानी भगवान बेस को नाचते और हार्प बजाते दिखाया गया है। यह तस्वीर ग्रीस का मिश्र पर शासन काल के समय में बनी कलाकृति का है जो आसवान शहर में बने हाथोर मंदिर के एक खंभे पर बनी है। यूनानी मेसिडोनियन शासन के अंतर्गत टॉलमैइक वंश ई.पू. 332-30 की इस कलाकृति में यूनानी और मिस्र के लोगों के सांस्कृतिक तालमेल को दिखाया गया है।

मिस्र में छोटे फ्रेम वाले ड्रम के साथ ही ल्यूट भी अवतरित हुए थे। इसे अधिकतर महिलाएं बजाती थीं, जैसा कि इस अध्याय के अंत में तस्वीर में दिखाया गया है (चित्र 1)। वाद्य का अंडाकार शरीर लकड़ी से बना होता था और उसपर खाल मढ़ी जाती थी। इसके अंदर का खोखला हिस्सा साउंड बॉक्स का काम करता था। इसके साथ जुड़ा हैंडल, पूरे शरीर में लंबाई में धँसा हुआ था, जिन्हें एक या दो बार खाल में अंदर डाला जाता या बाहर निकाला जाता था, ताकि इसे मजबूती से पकड़ा जा सके। एक गोल या तिकोना छेद खाल पर बनाया गया था, जिससे तार इसके आर-पार हो सके और फिर तारों

को हैंडल के अंत में कस दिया जाता था। तारों के दूसरे सिरे, हैंडल के ऊपरी हिस्से में बांधे जाते थे। इन वाद्यों में दो से चार तार होते थे और इन्हें एक प्लेक्ट्रम से दायें हाथ से छेड़ा जाता था। मनचाहे सुर उत्पन्न करने के लिए, बायें हाथ को, हैंडल पर बंधे तारों के समूह पर दबाना होता था।

मंदिर के संगीत के अलावा, प्राचीन मिस्र में एक और तरह का संगीत पनपा जो उत्सवों में मनोरंजन के लिए किया जाता था। एक और बात ध्यान देने योग्य है, वह ये कि सामाजिक जीवन की तस्वीरों में देखा जा सकता है कि पुराने साम्राज्य काल में वाद्य संगीत, सिर्फ़ पुरुषों द्वारा बजाया जाता था और वो गायन में संगत की तरह उपयोग किया जाता था। इसके विपरीत नए साम्राज्य काल में महिला वादकों को लायर, ल्यूट, बांसुरी और दोहरे पाइप के साथ दर्शाया गया है।

**प्राचीन ग्रीस के वाद्ययंत्रों**

प्राचीन ग्रीस के वाद्ययंत्रों के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। सामान्य तौर पर, ग्रीक संगीत के बारे में हमारा ज्ञान संगीत स्कोर या स्वरलिपि के अवशेष, वाद्ययंत्रों के कुछ अवशेष, शिलालेख, और ग्रीक मूर्तिकला और फूलदान चित्रों में चित्रण से आता है।

उपलब्ध स्रोतों के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानी संगीत भी निश्चित रूप से वाद्ययंत्रों के ऋणी हैं, जिन्होंने उनकी संगीत प्रणाली के सिद्धांत के अध्ययन को सुविधाजनक बनाया। वाद्ययंत्रों ने ही उन्हें स्केल और स्वरलिपि के साथ एक सुव्यवस्थित संगीत प्रणाली विकसित करने में मदद की। यूनान में किसी स्वर के उत्पन्न करने के लिए तार को तर्जनी से छेड़े जाने की प्रक्रिया को 'लाइरा' और इस प्रकार के वाद्य जिसमें तर्जनी से तार को छेड़ कर बजाया जाता है उसे 'लायर' कहा जाता था।

प्राचीन ग्रीसी संगीत में 'लायर' सबसे महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र था। अपोलो 'लायर' के देवता थे। लायर का पहला संदर्भ 9वीं शताब्दी ईसा पूर्व में लिखा गया महाकाव्य 'इलियड' में मिलता है। 'होमर' द्वारा लिखे गए इस महाकाव्य में 'लायर' को कभी-कभी फोर्मिक्स और कभी-कभी किथारिस के नाम से उल्लेख किया गया है। अधिकतर इसकी व्याख्या उसी के रूप में की जाती है जिसे बाद में लायर के नाम से जाना गया। लेकिन कर्ट सैक्स के अनुसार किथारा और लायर दो अलग-अलग वाद्य थे, हालांकि एक-दूसरे से काफी मिलते-जुलते थे।

लायर को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है: पहला वे जिनमें ध्वनि के अनुरणन के लिए कछुए का सूखे खाल से बना साउंड बॉक्स होता था, जैसे लायर, और दूसरे वे जिनमें साउंड बॉक्स लकड़ी से बने होते थे जैसे किथारा।

**किथारा** जिसमें समान लंबाई के सात तार होते थे और एक ठोस रूप से निर्मित, भारी लकड़ी का शरीर होता था, आमतौर पर इसका आधार सपाट और मजबूत भुजाएं होती थीं। इसमें तार के लिए जानवरों की आंत या नस का इस्तेमाल किया जाता था और नीचे तार धारक से एक छोटे से ब्रिज के ऊपर से पर होते हुए वाद्य के ऊपरी हिस्से में लगी 'क्रॉसबार' तक खींचा जाता था जो दो साइड-पीस से बैल की खाल के चिकने रोल द्वारा मजबूती से जुड़ा होता था। प्रदर्शन के दौरान, वाद्ययंत्र संगीतकार के कंधे पर टिका होता था, और बाई कलाई के चारों ओर लपेटे गए एक स्लिंग द्वारा समर्थित होता था। संगीतकार तारों के तनाव और संभवतः मोटाई के आधार पर 'पिच' को नियंत्रित कर सकता था। सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंत तक, किथारा को ग्रीक सार्वजनिक प्रदर्शनों में एक प्रमुख स्थान मिला और अपने बड़े ध्वनि बॉक्स के साथ यह कलाप्रवीण प्रदर्शन के लिए अधिक उपयुक्त था। इसका उपयोग संगीतकारों द्वारा गाए जाने वाले, महाकाव्यों के सहायक वाद्य के रूप में किया जाता था। यह वर्षों तक पेशेवर गायकों का वाद्य बना रहा। हालाँकि

पहले प्राचीन और शास्त्रीय काल में इसमें सात तार होते थे, पर रोमन युग तक आते आते इस में 11 या 12 तार लगने लगे; यह प्रथा संभवतः ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में शुरू हुई थी। कलाकार इसे बाएँ हाथ में पकड़ कर दाएँ हाथ से बजाते थे। बाएँ हाथ का उपयोग संभवतः उन तारों को रोकने या खींचने के लिए किया जाता होगा। दाहिना हाथ से गाने के अंतराल में तेज तारों को छेड़ने के लिए प्लेक्ट्रम या कोण पकड़ा जाता था जिसे किथारा के साथ ही लटकन से सजाया जाता था।

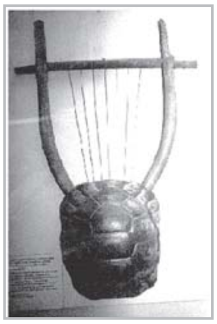

**लायर** की उत्पत्ति एक मिथक से जुड़ी हुई है। हर्मीस को लाइस का आविष्कारक माना जाता है। एक दिन की उम्र में, वह अपने पालने से बाहर निकला और दुनिया की खोज में उसे एक कछुए की खाल मिली। उसने उसके चारों ओर एक गाय की खाल खींची, उन छेदों में दो सींग लगा दिए जहाँ पहले जानवर के पंजे थे। फिर उसने भुजाओं के बीच तार बाँध दिए। एक दिन हर्मीस ने अपोलो के अस्तबल से कुछ भेड़ें चुरा लीं, पर उस समय वो अपना लायरा बजा रहा था, तो इस वाद्य की संगीत से अपोलो को इतनी शांति मिली कि उन्होंने हर्मीस को कोई सजा नहीं दी और तब से इस वाद्य को दैवीय दर्जा प्राप्त हो गया।

लायरा कि संरचना किथारा से अधिक प्राचीन थी। यह एक ढीला-ढाला यंत्र था, जिसका शरीर कछुए के खोल से बना होता था, कभी-कभी उसके जगह पर एक उथला लकड़ी का कटोरा इस्तेमाल किया जाता था और ध्वनि में गूंज के लिए त्वचा के एक टुकड़े से कटोरे को ढका जाता था। किसी जानवर के दो सींग या दो लंबे लकड़ी के टुकड़े कटोरे से प्रक्षेपित होते हैं और ऊपर की ओर एक क्रॉसबार होता था। बजाते समय इसे तिरछा या कभी-कभी आड़ा रखा जाता था। लगाए गए तारों की संख्या किथारा के समान ही थी। ई. पू. 9 वीं शताब्दी में सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाले तारों की संख्या तीन या चार थी। ई. पू. आठवीं शताब्दी के आसपास, तारों की संख्या बढ़कर पांच हो गई और धीरे-धीरे संख्या में वृद्धि होती रही जब तक कि पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में यह बारह नहीं हुए। कर्ट सैक्स के अनुसार तारों को शुरू में पेंटाटोनिक स्केल पर बाँधा जाता था। अलग-अलग सप्तक में स्वर उत्पन्न करने के लिए अतिरिक्त तारों का उपयोग किया गया था।

लायर का एक और बड़ा प्रकार बार्बिटोस' है। इसकी भुजाएँ लंबी होती थी हैं और डोरियाँ भी। परिणाम इस प्रकार के लायर को वादक तीन अलग-अलग 'जीनस' या ग्रामों में बजा सकता था। तार अधिकतर भेड़ों की आंत से बनाये जाते थे। सबसे निचली डोरी वादक की छाती के पास स्थित होती थी। वादक इसे सीधा खड़ा होकर बजाता था।

ग्रीस में तत वाद्यों में हार्प का प्रचलन भी बहुत अधिक था हालांकि इसे अक्सर किसी पूरब देश से आयातित वाद्य ही समझा जाता था। परंतु प्राचीन ग्रीस में एक सबसे अद्भुत हार्प था 'एओलियन' जो हवा द्वारा बजायी जाती थी। इस हार्प का आकार बहुत बड़ा होता था और इस की तारों को मिलाने के बाद किसी खुली जगह रख दिया जाता था जहां हवा के अच्छे झोंके आते हों। हवा के झोंके इस के तार को छेड़ जाते ही इस से सुरीली ध्वनि पैदा होती थी। ये ग्रीस का अपना ही आविष्कार है। लंबवत बजाया जाने वाला कोणीय वीणा 450 ईसा पूर्व की एक पुरातन प्रतिमा में दिखाई देता है, हालांकि अन्यमन लगाया जाता है कि यह संभवतः उससे पहले भी प्रचालन में होगा। जैसे की पहले बताया गया ग्रीस में हार्प को हमेशा पूर्व से आने वाला एक विदेशी वाद्ययंत्र माना जाता था। प्लेटो को यह वाद्य अच्छा नहीं लगता था क्योंकि इसमें अधिक संख्या में तार थे जो मनुष्य में संवेदी आनंद पैदा करते थे और जिससे मानव की मोहग्रस्त होने की संभावना थी।

विभिन्न प्रकार की हार्प में सबसे प्राचीन लिडियन मूल की थी। यह लगभग सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व दिखाई देता है। इस में बीस तारों यानी सप्तक में बांधे गए दस दोहरे तार होते थे जिन्हें उंगलियों से छेड़ कर बजाया जाता था। 'पेक्टिस', 'साल्टेरियन' और 'ट्राइगोनॉन' ये तीन अन्य प्रकार की हार्प थी।

प्राचीन ग्रीस में ल्यूट या भारतीय वीणाओं की तरह लंबा गर्दन वाला तत वाद्य था जो अत्यंत दुर्लभ थे। पुरातात्विक अवशेषों में पाए गए एकमात्र ल्यूट कि इस कलाकृति को पांडुरा कहा जाता था, जिसका नाम संभवतः मिस्र के पान-तूर से लिया गया था। इस में खूंटियों के बिना एक लंबी गर्दन, एक छोटा शरीर, और तीन तार थे, इस वजह से इसे ट्राइकोर्डन (तीन तार) भी कहा जाता था। संलग्न चित्र ईसा पूर्व 450 वर्ष का संगमरमर का बना एक 'बास रीलीफ' है जिसमें एक संगीत की अप्सरा को पांडुरा बजाते हुए दर्शाया गया है।

**निष्कर्ष**

प्राचीन वाद्ययंत्रों का अध्ययन न केवल संगीतशास्त्र की ऐतिहासिक गहराइयों को उद्घाटित करता है, अपितु यह हमें उन सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी प्रवृत्तियों की भी झलक देता है जिन्होंने संगीत को एक जीवंत और बहुआयामी कला रूप में विकसित किया। मेसोपोटामिया, मिस्र और यूनान जैसी प्राचीन सभ्यताओं के वाद्ययंत्रों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं था, बल्कि वह धार्मिक अनुष्ठानों, राजकीय समारोहों और सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग था। इन वाद्ययंत्रों की संरचना, निर्माण विधियाँ, और ध्वनि सौंदर्य की दृष्टि से की गई परिष्कृत खोजें यह दर्शाती हैं कि संगीत का विकास एक सतत औरसुसंगत बौद्धिक प्रक्रिया रही है। प्राचीन वाद्ययंत्रों की यह यात्रा, वस्तुतः, मानव सभ्यता की सांस्कृतिक चेतना की यात्रा है।

संपर्क : सह प्राध्यापक मंच तथा कला विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली मो. 9868160805

■

आलेख

# गिटार की विकास यात्रा एवं भारतीय संगीत में समायोजन

**पाश्चात्य वाद्य गिटार का उद्गम एवं विकास**

डॉ. कमला शंकर

**क्रम**

गिटार एक पश्चिमी वाद्य है जिसकी उत्पत्ति 16वीं शताब्दी के अंतर्गत स्पेन में हुई स्पेन में उत्पत्ति के कारण स्पेनिश गिटार नाम पड़ा। मूल रूप से **"गिटार"** को स्पेनिश गिटार ही माना जाता है। गिटार एक लैटिन शब्द है जो कि **"गीटारा लैटिना"** से निकला है। गिटार ल्यूट परिवार का सदस्य है। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसमें तीन तार होते थे जिसमें एक मुख्य तार होता था और बाद में 16वीं शताब्दी के मध्य में तारों कि संख्या 5 हो गयी और क्रमशः इसमें तारों की संख्या व बनावट में परिवर्तन होते रहे और 18वीं शताब्दी के अंत तक इसमें तारों की कुल संख्या 6 हो गयी। ल्यूट शब्द आम तौर पर किसी भी स्ट्रिंग उपकरण को संदर्भित करता है जिसमें ध्वनि रंध्र के समानांतर चलने वाले तार होते हैं, तार पर्दा पटल के अंत में खूंटी से जुड़े होते हैं।

**मुख्यतः गिटार के दो प्रकार होते हैं.**

**1. स्पैनिश गिटार**

**2. हवाईयन गिटार**

हवाईयन गिटार की उत्पत्ति का श्रेय आम तौर पर मैक्सिकन और स्पेनिश काऊबॉयज को दिया जाता है। हवाईयन गिटार को बजाने के लिए एक थम्ब पिक्क जिसे अँगूठे में पहना जाता है तथा दो फिंगर पिक्क्स जिसे उँगलियों में पहना जाता है जिसमे तर्जनी और मध्यमा आते हैं। स्पेनिश गिटार को बजाने के लिए प्लेक्ट्रम का उपयोग होता है जो कि दाएँ हाथ द्वारा प्रयोग किया जाता है। स्पेनिश और हवाईयन गिटार की बनावट पर कोई विशेष अंतर नहीं है, दोनों की बनावट लगभग एक जैसी होती है। स्पेनिश गिटार में ब्रिज यानि घुड़च की ऊंचाई कम होती है जिससे तार पर्दा पटल से सटे होते है और स्वरों को निकालनेके लिए बाएँ हाथ की उँगलियों द्वारा दबाव देकर स्वरों को निकाला जाता है।

18वीं शताब्दी के अंतर्गत यूरोपियन नाविकों द्वारा गिटार का बहिर्गमन स्पेन से हवाई द्वीप की ओर हुआ सर्वप्रथम जो हवाईयन गिटार बने वे स्पेनिश गिटार को ही रूपांतरित करके बने यानि ब्रिज और हेडनट का उपयोग किया गया | ऐसा कहा जाता है कि 1889 के दशक के मध्य में, एक हवाई नागरिक जोसेफ केकुकु ने अपने पुर्तगाली गिटार को लेकर घूमते हुए रेलवे ट्रैक के साथ चलते समय ध्वनि की खोज की। उसने ट्रैक से नटबोल्ट उठाया और उसे अपने गिटार के तारों के साथ फिसलाया और इस प्रकार गिटार में स्लाइड तकनीक का प्रारंभ हुआ।

इस प्रकार पहला हवाईयन गिटार 1889 में श्री जोसेफ केकुकु ने बनाया। हवाईयन गिटार के प्रकारों में लैप स्टील गिटार, रेसॉनेटर गिटार, इलेक्ट्रिक स्टील गिटार, टेबल स्टील गिटार, पेडल स्टील गिटार इत्यादि आते हैं।

गिटार को दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा गया है। एक श्रेणी में ध्वनिक गिटार (Acoustic Guitar) तो दूसरी श्रेणी में इलेक्ट्रानिक गिटार अविष्कार के बाद से ध्वनिक गिटारों का चलन काफी रहा है। यह बात और है कि इनके आकार और बजाने में काफी बदलाव हुए है। ध्वनिक गिटारों में सभी वह गिटार आते हैं, जो हाथों से तैयार कर बनाए जाते हैं। ध्वनिक गिटारों में एक बात यह खास थी कि संगीतकार अपनी मर्जी के अनुरुप गिटार में स्ट्रिंग यानि तार डालकर उसे बजा सकता है। जब तक माइक का अविष्कार नहीं हुआ था, तब तक ध्वनिक गिटार की आवाज़ सीमित लोगों तक ही पहुंच पाती थी इस कारण से मंच पर किसी आयोजन के दौरान ध्वनिक गिटार की आवाज दूर बैठे लोगों तक नहीं पहुंच पाती थी, इसका असर यह रहा कि कुछ समय बाद लोगों ने आवाज न आने के कारण गिटार बजने वाले आयोजन में जाना कम कर दिया जिसके बाद फिर गिटार को नया रूप देने की शुरुआत हुई।

इलेक्ट्रिक गिटार की सबसे बड़ी खास बात यह है कि इसमें एक ही समय में कई सारी धुनों को बजाया जा सकता है। इसके साथ ही इस गिटार में नायलॉन के तारों का इस्तेमाल होता है, जिससे इसकी धुनों की आवाज ध्वनिक गिटारों के मुकाबले काफी तेज होती है। इलेक्ट्रिक गिटार के आने के बाद पॉप संगीत को एक नई पहचान मिली पश्चिमी देशों में इलेक्ट्रिक गिटार का चलन काफी तेज़ी से बढ़ने लगा, इतना ही नहीं फिल्मों में संगीत के अलावा इसका प्रयोग लाइव कंसर्ट में होने लगा नतीजा यह रहा कि इलेक्ट्रिक गिटार की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि हर संगीत के आयोजन में इसका काफी प्रयोग हुआ इलेक्ट्रिक गिटार के आने के बाद बॉलीवुड और हॉलीवुड सिनेमा में भी जितने गाने फिल्माए जाने लगे, उनमें अधिकांश गानों में इलेक्ट्रिक गिटार से धुन तैयार की जाने लगी प्रसिद्ध फिल्म संगीत निर्देशक श्री आर. डी. बर्मन ने अपने निर्देशन में लगभग सभी फिल्मो में गिटार का उपयोग किया है। उसके बाद के संगीतकारों में श्री ए.आर. रहमान ने भी गिटार से कई धुनें बनाई हैं।

## गिटार का भारतीय संगीत में प्रवेश

भारत में गिटार का प्रवेश तटवर्ती इलाको जैसे पश्चिम बंगाल, गोवा और मुंबई द्वारा हुआ और धीरे धीरे पूरे देश में प्रचारित हो गया गिटार के क्रमिक परिवर्तन का इतिहास देखा जाए तो भारतीय स्लाइड का भी इतिहास दिलचस्प है। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम 1920 के उत्तरार्ध में श्री ताऊमोय द्वारा भारत में हवाईयन गिटार की प्रस्तुति से हुई। इसके बाद वे कोलकाता में बस गए और लोगों को हवाईयन गिटार की शिक्षा देने लगे धीरे धीरे भारतीय श्रोता और संगीत सीखने वालोंका रुझान इस वाद्य की ओर आकर्षित हुआ और 1960 के आसपास ये भारत का लोकप्रिय वाद्य हो गया।

भारतीय फिल्म के पार्श्व संगीत में इसका सफल प्रयोग किया गया पश्चिम बंगाल में हवाईयन गिटार की उपयोगिता विशेषतः रविन्द्र संगीत एवं हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के माध्यम से हुई और गोवा में गिटार को प्रमुख वाद्य के रूप में देखा जाता रहा है. गिटार के दोनों प्रकार यानी स्पेनिश और हवाईयन गिटार संगत वाद्य के रूप में अहम् भूमिका निभाते हैं। फिल्मों में हवाईयन गिटार और स्पेनिश गिटार का पार्श्व संगीत के लिए सफल प्रयोग किया गया है।

प्रसिद्द फिल्म संगीत निर्देशक श्री आर. डी. बर्मन ने अपने निर्देशन में लगभग सभी फिल्मो में गिटार का उपयोग किया है। भारतीय फिल्म संगीत में श्री वैन शिप्ले एक सुप्रसिद्ध गिटार वादक थे। वैन शिप्ले को "The man with the Golden Guitar" भी कहा जाता है। बॉलीवुड के अन्य प्रसिद्द गिटार वादकों में सरदार हज़ारा सिंह, श्री भूपिंदर सिंह के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

जिस प्रकार फिल्म संगीत में स्पेनिश और हवाईयन गिटार दोनों का उपयोग होने लगा उसी प्रकार शास्त्रीय संगीत में भी इस पाश्चात्य वाद्य को लोगों ने अपनाना प्रारंभ कर दिया। बंगाल को हवाईयन गिटार का एक तरह से उद्गम क्षेत्र बोल सकते हैं। जिस प्रकार से ताऊ मोए ने हवाइयन गिटार का प्रचार प्रसार कोलकाता से आरंभ किया उसी से प्रेरित हो कर कई लोगों ने नजरुल गीति, रबिन्द्र संगीत और फिल्म संगीत को इस वाद्य में बजाना प्रारंभ किया पश्चिम बंगाल में गिटार पर लोक संगीत, रवीन्द्र संगीत, नजरूल गीत इत्यादि का सुन्दरतम उपयोग करने के लिए श्री सुजीत नाथ, श्री रजत नंदी, श्री सुनील गांगुली, श्री बटुक नंदी, श्री काजी अनिरुद्ध, श्री कनाई रायचौधुरी, इत्यादि का नाम आता है जिन्होंने हवाईयन गिटार को अलग पहचान दी।

## हवाईयन गिटार का भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रवेश

गिटार पर शास्त्रीय संगीत की शुरुआत भी बंगाल से ही प्रारंभ हुई कुछ गुणीजनों के मतानुसार (सबसे पहले ज्ञात जानकारी) 1876 में एक भारतीय मूल के पुर्तगाली नाविक गेब्रियल डेबियन द्वारा सबसे पहले स्लाइड गिटार बजाने की सूचना मिलती है। बेशक विचित्र वीणा जैसे वाद्य पहले से ही स्लाइड का उपयोग करने वाले भारतीय वाद्य हैं। हालांकि सामान्य पश्चिमी हवाईयन गिटार को पहली बार 1929 में श्री ताऊ मोए द्वारा भारत में प्रचारित

किया गया था। इसी काल में पंडित रविशंकर जी और उस्ताद अली अकबर खान साहब ने देखा कि इस वाद्य में भी अन्य वाद्यों के जैसी संभावनाएं हैं जैसे अलाप, जोड़, झाला, गत निकासी इत्यादि बहुत खूबसूरत तरीके से इसमें निकाला जा सकता है।

गिटार अभी भी शोधकर्ताओं और उसके कलाकारों के लिए एक शोध का विषय है। हवाईयन स्टील गिटार की अधिकतर चीजें विचित्र वीणा से मिलती हैं। हमारे भारतीय वाद्य कहीं न कहीं से वीणा के ही रूप हैं। एक तरह से वीणा हमारे लिए आधार वाद्य है। विदेश में बसे गिटार वादक ठाकुर चक्रपाणी सिंह के अनुसार गिटार प्राचीन कच्छपी वीणा का एक संशोधित रूप है और शायद इस पर अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के रबाब और सरोद का कुछ प्रभाव है। हवाईयन गिटार ने बड़े पैमाने पर यात्राएँ की और प्रसिद्धि के नए आयामों का स्वाद चखा, पूरी दुनिया में चाहे यह भारतीय शास्त्रीय, फिल्मी या अंग्रेजी शास्त्रीय या पॉप, उनमे इसका उपयोग हुआ है।

जहां तक उत्तर भारत में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में हवाईयन गिटार को ग्रहण करने का सवाल है, यह श्रेय श्री नलिन मजुमदार जी को जाता है। 1920 के आसपास जब गिटार भारत में आया था और 1930 में कोलकाता में एक पत्रिका आती थी जिसमे गिटार वादन की पूरी जानकारी होती थी उसमे से देखकर नलिन मजूमदार जी ने प्रारंभिक प्रशिक्षण लिया 1939 के दौरान उन्होंने आचार्य अलाउद्दीन खान और उस्ताद अली अकबर खान के सानिध्य में भी अध्ययन किया। श्री नलिन मजूमदार ने पहली बार लगभग 86 साल पहले हवाईयन गिटार पर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत बजाया था। यह उनके लिए वास्तव में एक मुश्किल काम था। उन्हें दर्शकों के सामने बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा, जो हवाईयन गिटार पर शास्त्रीय संगीत सुनने के लिए बिल्कुल भी इच्छुक नहीं थे। उन्होंने हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए अपने स्तर पर सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया। नलिन मजूमदार के सबसे छोटे भाई स्वर्गीय श्री दुलाल मजूमदार भी जाने माने हवाईयन गिटार वादक थे।

उनके प्रयासों के माध्यम से भारतीय स्लाइड गिटार को अंततः प्रयाग संगीत समिति के पाठ्यक्रम में विषय के रूप में सम्मिलित किया गया था। श्री नलिन मजुमदार जी के मुख्य शिष्य वाराणसी के श्री आशीष दासगुप्ता थे। आशीष जी ने श्री सुनील गांगुली से भी गिटार सीखा 1963 में वाराणसी में सुगम संगीत और फिल्म संगीत शैली में गिटार सिखाने वाले श्री आशीष दासगुप्ता पहले व्यक्ति हुए और इस प्रकार इनका बहुत बड़ा योगदान रहा। मेरे प्रथम गुरु वाराणसी के डॉ शिवनाथ भट्टाचार्य एवं श्री गोपाल चन्द्र दास ने श्री आशीष दासगुप्ता से गिटार का प्रशिक्षण लिया। इस प्रकार डॉ शिवनाथ भट्टाचार्य और श्री गोपाल चन्द्र दास ने वाराणसी में गिटार का प्रचार एवं प्रसार किया।

1941 से 1946 के बीच ग्वालियर के पं गोपाल सिंह जी जो ध्रुपद घराने से थे, ने भी स्लाइड गिटार पर शास्त्रीय संगीत बजाना शुरू किया। उन्होंने उस्ताद हाफिज अली खान (उस्ताद अमजद अली खान साहब के पिता) से संगीत की शिक्षा ली और साथ ही तबले की भी शिक्षा ग्रहण किया। वह आकाशवाणी दिल्ली के एक स्वीकृत गिटार कलाकार थे। मुझे ज्ञात हुआ है कि वह एक रेडियो कलाकार के रूप में स्वीकृत होने वाले पहले गिटारवादक थे।

सार्वजनिक रूप से शास्त्रीय संगीत में स्लाइड गिटार को लोकप्रिय करने का श्रेय पंडित बृज भूषण काबरा जी को जाता है। सर्वप्रथम इन्होंने ही गिटार को भारतीय शास्त्रीय संगीत क्षेत्र में एक वाद्य के रूप में लोकप्रिय बनाया। पं. काबरा जी गिटार पर सार्वजानिक रूप से राग प्रदर्शित करने वाले पहले भारतीय बने पंडित काबरा जी ने प्रख्यात बांसुरी वादक पं हरिप्रसाद चौरसिया और प्रख्यात संतूर वादक पं शिवकुमार शर्मा के साथ "call of the valley" के सफल एल्बम (1967) को रिकॉर्ड किया। काबरा जी ने कई एकल एल्बम भी रिकॉर्ड किए। इन्हें राजस्थान संगीत नाटक अकादमी एवं राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है पद्मभूषण एवं पद्मश्री से विभूषित मोहन वीणा के निर्माता और ग्रैमी पुरस्कार विजेता, पंडित विश्व मोहन भट्ट जी ने सुमधुर संगीत से दुनिया को मंत्रमुग्ध किया है। इन्होंने गिटार को भारतीय शास्त्रीय संगीत परिदृश्य की मुख्यधारा में शीर्ष स्तर पर स्थापित किया है। इन्होंने विश्व प्रसिद्ध मोहन वीणा का सृजन किया है।

इसी क्रम में प्रतिष्ठित और वरिष्ठ गिटार कलाकारों में से एक महत्वपूर्ण नाम पंडित बरुण कुमार पाल जी का भी आता है। सितार से प्रेरित होकर बरुण पाल जी ने भी हवाईयन गिटार में चिकारी और तरब के तार जोड़े और अपने वाद्य का नाम हंस वीणा रखा।

इसके बाद की पीढ़ी के जो महत्वपूर्ण और शास्त्रीय गिटारवादक हुए उनमे पंडित कृष्ण कुमार, पंडित देबाशीष चक्रवर्ती, पंडित देबाशीष भट्टाचार्य, मैं कमला शंकर, पंडित सलिल भट्ट, पंडित दीपक क्षीरसागर, श्री मनीष पिंगले आदि हैं। पंडित काबरा जी के शिष्य पंडित देवाशीष भट्टाचार्य ने गिटार में कुछ बदलाव किए और गिटार पर सामने की ओर चिकारी का प्रयोग किया। इन्होंने चतुरंगी, गांधर्वी और पुष्प वीणा बनाया है। मैंने भी गिटार की टोनल क्वालिटी में परिवर्तन कर मैंने वर्ष 2001 में प्रख्यात वाद्य निर्माता श्री अजय शर्मा (रिखी राम एंड संस) के सहयोग से शंकर स्लाइड गिटार का निर्माण कियापंडित विश्वमोहन भट्ट जी के पुत्र पंडित सलिल भट्ट ने सात्विक वीणा बनाया है।

संपर्क : 2 ए, रविन्द्र पुरी, आई.पी. विजया मॉल के सामने भेलूपुर
वाराणसी (उ.प्र.) 221005
मोबा. 9818510451

## कला समयः बैंक खाता विवरण

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | **खाता का नाम** | : | कला समय |
| 2. | **खाता संख्या** | : | 09321011000775 (चालू खाता) |
| 3. | **बैंक शाखा** | : | पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016 |
| 4. | **आईएफएस कोड** | : | PUNB0093210 |

**प्रबंध संपादक**

**कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।**

### अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

**–सम्पादक**

# कंठ के निकट का वाद्य – सारंगी

वीणा पहाड़ी

शास्त्रीय गायन और सारंगी वादन एक दूसरे के पूरक है, एक संस्कृति है। सारंगी केवल वाद्य यंत्र नहीं, बल्कि आत्मा की पुकार है। इसका प्रत्येक स्वर और झंकार जीव की गहराई में छिपी भावनाओं को उभार देता है। यह अकेला एक ऐसा वाद्य है जिससे गायन की बारीकियों को प्रस्तुत किया जा सकता है, यही कारण है कि इस वाद्य को कंठ के निकट का वाद्य कहा गया है, ऐसा मेरे गुरु और ताया श्री प्रसिद्ध सारंगी वादक पंडित इंद्रलाल धांधरा का कहना था, इन शब्दों को मैं अपने बाल्यकाल से सुनती आ रही हूं।

**पंडित इंद्रलाल धांधरा** का जन्म 26 जनवरी सन 1930 में राजस्थान के उदयपुर शहर में हुआ। आपके पिता **पंडित बिहारी लाल** उदयपुर के महाराणा, भूपाल सिंह जी के दरबार में सारंगी वादक थे, लगभग 14 वर्ष की आयु से ही आपको पिता के साथ राज दरबार में सारंगी वादन का अवसर मिला। संगीत के स्वर ,रागों की पहचान, वादन की तकनीक, खयाल, ठुमरी दादरा, मांड जैसे गायन की शिक्षा आपको अपने पिता से मिली।

आपको दरबार में पिता के साथ गायक और गायिकाओं के साथ भी संगत करने का अवसर मिला जिससे आपके वादन में उपशास्त्रीय और लोक गायकी में पकड़ मजबूत हुई किंतु आपने **नृत्य** के साथ कभी संगत नहीं की। घरेलू कारणों और परिवार की जिम्मेदारियों के रहते आपको सन 1948 से सन 1959 तक उदयपुर छोड़, शिमला महाराज के यहां रहना पड़ा, वहां सारंगी वादन का अवसर मात्र ही मिलता था, आपका वादन राज दरबार में या कभी-कभी संगीत की महफिलों में हुआ करता था, जिसके कारण पंडित जी असंतुष्ट थे।

एक महफ़िल में पंडित इंद्रलाल धांधरा की मुलाकात सरोद वादक पंडित सुनील मुखर्जी से हुई और उन्होंने पंडित जी को शिमला छोड़ने की सलाह दी , कुछ ही समय बाद शिमला महाराज का निधन हो गया और पंडित जी को हमेशा के लिए शिमला छोड़ना पड़ा। अपनी प्रतिभा का भरपूर अवसर न मिलने के कारण उन्होंने सन 1960 में जालंधर रेडियो पर सारंगी वादक के पद पर अपनी सेवाएं देनी आरंभ कर दी। आर्थिक तंगी के कारण आपको शमशान भूमि के निकट निवास करना पड़ा और एक वर्ष नौकरी करने के पश्चात पंडित जी दिल्ली रेडियो पर सारंगी वादक के पद पर नियुक्त हो गए। उस समय दिल्ली आकाशवाणी पर उस्ताद साबरी खान, बड़े गुलाम साबिर खान, मुनीर खान, शकूर खान,और मोहम्मद अहमद बने जैसे वरिष्ठ सारंगी वादक मौजूद थे पंडित इंद्रलाल ने रेडियो और उसके बाहर की लगभग सभी प्रतिष्ठित संगीत सभाओं में अपने वादन से पहचान बनाई, उसी दौरान आपने लंदन, पेरिस, फ्रांस, मॉरीशस तथा अफगानिस्तान का दौरा भी किया। सन 1980 तक आते-आते दिल्ली की हर संगीत सभा में आपके सारंगी संगत की मांग बढ़ने लगी। आपको **पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर, पंडित कृष्ण राव शंकर पंडित ,पंडित भीमसेन जोशी, पंडित जितेंद्र अभिषेकी, विदुषी किशोरी अमनकर, विदुषी गंगूबाई हंगल** जैसे विद्वान कलाकारों के साथ संगत करने का अवसर प्राप्त हुआ। दिल्ली आने पर पंडित जी ने अपने संगीत की आगे की शिक्षा आगरा घराने के पंडित दिलीप चंद्र बेदी जी से भी प्राप्त की।

Inderlal Dhandra

आकाशवाणी के साथ-साथ आपको दूरदर्शन के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में विदुषी सिद्धेश्वरी देवी, **विदुषी गिरिजा देवी जी, विदुषी शोभा गुर्टू,** रामपुर सहसवान घराने के उस्ताद निसार हुसैन खान साहब, ग्वालियर के **पंडित कृष्ण राव शंकर पंडित,** आगरा घराने के **उस्ताद फैयाज खान साहब, उस्ताद यूनुस हुसैन खान साहब,** उस्ताद शराफत हुसैन खान साहब तथा ध्रुपद गायिका विदुषी सुमति मुटाटकर जी के साथ भी संगत करने का अवसर मिला।

गायक की शैली और गायन की विधाओं की जानकारी होना संगतकार की प्राथमिकता है, संगत के समय गायक को अपने व्यवहार और भाव से सहज करना उसकी प्रशंसा करना एक कुशल संगतकार का गुण होता है। हिंदुस्तानी पद्धति की टॉप ग्रेड गायिका विदुषी सुमित्रा गुहा का कहना है, पंडित इंद्रलाल के साथ गायन का अनुभव बहुत सहज रहा,

कर्नाटक पद्धति के राग जैसे चारुकेसी एवं किरवानी गाते समय उन्हें कभी परेशानी नहीं हुई बल्कि एक बार जब वे राग मलयमरुतम गाने लगी, तब पंडित जी ने विनम्रता से उनसे राग की जानकारी ली और गायन के दौरान उन्हें कोई डिस्टरबेंस नहीं हुई।

पंडित इंद्रलाल धांधरा ने एक कुशल संगतकार के रूप में संगीत जगत को अपनी सेवाएं दी,सन 1990 में सेवानिवृत्ति के बाद आकाशवाणी ने आपको सन 1991 में टॉप ग्रेड सम्मान से सम्मानित किया तथा भारत सरकार ने सन 1996 में **संगीत नाटक अकादमी** से सम्मानित किया !

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए उपशास्त्रीय गायिका **विदुषी रीता गांगुली** ने सारंगी को ह्यूमन वॉइस के बहुत करीब बताया, उनका कहना है कि क्लासिकल म्यूजिक कंटीन्यूअस इंप्रोवाइज होता है, जैसे आप अपने गुरु से सीखी किसी बंदिश को दोबारा गाते हैं तो वह अलग हो जाती है, सारंगी इसी उपज को बख़ूबी से प्रस्तुत करती हुई गायन को सपोर्ट करती है, उनका यह कहना है कि बड़े-बड़े गायकों को सारंगी की तालीम लेने के बाद ही शास्त्रीय गायन की तालीम मिली है, जिसमे **उस्ताद बड़े गुलाम अली खान,** इंदौर घराने के **उस्ताद अमीर खान** और किराना घराने के **उस्ताद अब्दुल करीम खान** के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं।

अपनी सारंगी की **टोनल क्वालिटी** को लेकर पंडित इंद्रलाल बहुत सजग थे, वह अपनी सारंगी की **जवारी** स्वयं किया करते थे और कभी-कभी पूरी सारंगी खोल दिया करते थे, जिसकी मैं प्रत्यक्षदर्शी हूं!

आपके पास **200 वर्ष** पुरानी सारंगी थी, जो आपके पिता बिहारी लाल धांधरा जी से विरासत में मिली, इस सारंगी को **मेरठ** के सारंगी मेकर मसीता द्वारा तैयार किया गया, जिसमें लगभग 35 से 3 9 तारें हैं जो स्टील की धातु की बनी है, बाज की तीन तारें **"स प स"** जो की षड्ज, पंचम और खरज की तारें हैं, इन तारों को बकरे की आंत को सुखाकर बनाया जाता है, इसमें सपोर्ट के लिए दो गुड़च (ब्रिज) होती है, जो की हाथी दांत की बनी है। मुख के ऊपर दो आंखें हैं जिन्हें चिकारी भी कहते हैं, यह मृग या सांभर के सींग से बनी है, जिनका कार्य तारों को सपोर्ट और तान के रखना होता है। इस सारंगी में तुन की लकड़ी का प्रयोग हुआ है। सारंगी के साउंड बॉक्स ( पेट ) को बकरे की खाल से मढ़ा गया है। पेट की खाल सूखने के बाद उसमें तीन छिद्र किए जाते हैं, दो छेद पेट के ऊपर और एक छेद दोनों छेद के बीच में नीचे किया जाता है, जो की **अनुनाद** उत्पन्न करने का काम करते है। तारों को सपोर्ट देने के लिए छोटी और बड़ी गुड़च को फिक्स किया जाता है, छोटी ब्रिज को सारंगी की गर्दन के निचले भाग पर चिपकाया जाता है तथा बड़ी ब्रिज को पेट के निचले हिस्से पर चमड़े का तस्मा लगाकर फिक्स किया जाता है, तत्पश्चात स्ट्रिंग होल्डर की मदद से तारों को मनको में पिरोकर, बड़ी ब्रिज के अंदर के छिद्रों से होते सारंगी के पेट, छाती और गले के ऊपर से छोटी ब्रिज और चिकारी से होते हुए खूंटियों की मदद से चढ़ाकर tune किया जाता ह। आमतौर पर गज का डंडा शीशम या आबनूस की लकड़ी का बना होता है और इसको घोड़े की पूंछ के बालों से बांधा जाता है, वादन से पहले गज के बालों को चिकनाई युक्त रखने के लिए उस पर बिरोज़ा का प्रयोग किया जाता है।

सारंगी वादक पंडित भारत भूषण का यह कहना है की वर्तमान में शास्त्रीय संगीत की सारंगी ही **संपूर्ण वाद्य** है, जिसका गायन की सभी विधाओं जैसे ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, दादरा, भजन, गीत, ग़ज़ल, सूफी एवं लोक संगीत में भरपूर प्रयोग किया जा रहा है। सारंगी को सम्मान और प्रतिष्ठा दिलवाने में फिल्म संगीत का भी विशेष योगदान रहा है जिसमें **पंडित राम नारायण, उस्ताद सुल्तान खान** का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, दोनो का जन्म राजस्थान में हुआ।

**पंडित राम नारायण** ने सोलो सारंगी वादन के लिए सारंगी पर **बाएं और दाएं हाथ** के प्रयोग पर बहुत काम किया, बाएं हाथ की तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठ तथा चट्टी उंगली से तान के अलग-अलग पैटर्न बनाकर, उनका राग में प्रयोग तथा **दाएं हाथ से सीधी तरफ से पूरे गज का प्रयोग** आपके वादन की विशेषता थी। आमतौर पर सारंगी वादक **ढाई सप्तक** तक ही जाते हैं, किंतु पंडित राम नारायण जी **साढ़े तीन से चार सप्तक तक** अपना वादन करते थे, विदेशो से लाये उच्च गुणवत्ता के तारों के प्रयोग ने उनकी सारंगी की टोनल क्वालिटी को एक अलग ही स्तर पर पहुंचा दिया, देश -विदेश में सारंगी को **सोलो वाद्य** के रूप में पहचान दिलाने में आपका विशेष योगदान रहा। आप अकेले सारंगी वादक है, जिन्हें भारत सरकार ने सन 2005 में **पद्म विभूषण** सम्मान से सम्मानित किया, इसी के चलते रेडियो और दूरदर्शन ने भी सारंगी वादकों को **सोलो वादन** के लिए अपने प्रतिष्ठित कार्यक्रमों जैसे नेशनल प्रोगाम ऑफ म्यूजिक, आकाशवाणी संगीत सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया।

संगीत प्रेमियों का यह मानना है कि सारंगी का भी **घराना** होता है, इसमें मेरा मानना यह है की सारंगी वादक का संगीत के जिस परिवार में जन्म हुआ या जिस गुरु से शिक्षा ली वह उसी घराने का कहलाने लगा। जबकि सारंगी आरंभ से ही संगत के साज़ के रूप में जानी जाती रही है, इस कारण से संगतकार को गायक की शैली, गायन की विधाओं पर पकड़ तथा चलन की जानकारी होना आवश्यक है। जिससे गायक जहाँ रुकता है वहां संगत से उस स्थान को भरता है और गायक को सपोर्ट करता है।

**20वीं** शताब्दी के मध्य तक सारंगी नर्तकियों, महफिलों तथा राज दरबारों में गायको के साथ संगत के लिए प्रयोग में लाई जाती रही है, वहां उन्हें मुख्य कलाकार के बराबर का दर्जा और सम्मान नहीं दिया जाता था, आज़ादी के बाद राज दरबारों की शान शौकत में कमी आने लगी, गायिको की मांग कम होने लगी, जिससे सारंगी वादकों की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह एक शहर से दूसरे शहर बिखरने लगे तभी आकाशवाणी,

संगीत संस्थाओं और उद्योगपतियों ने उनका हाथ थाम कर सहारा दिया।

**कला और कलाकारों** को जन जन तक उनकी पहचान दिलाने में आकाशवाणी का विशेष योगदान रहा है। आकाशवाणी ने स्वर परीक्षा के माध्यम से उनकी गुणवत्ता के आधार पर इनका मानक और मानदेय निर्धारित किया, कुछ को सारंगी वादक के पद पर भी नियुक्त किया, जिसमें **उस्ताद साबरी खान साहब** का नाम प्रमुख है, आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरपुर में हुआ, आप आकाशवाणी दिल्ली पर विभागीय कलाकार के रूप में नियुक्त थे, एक कुशल संगतकार होने के साथ-साथ आपने देश तथा विदेशों में एकल सारंगी वादक के रूप में अपने आप को स्थापित किया। आपने पंडित रविशंकर, उस्ताद अल्ला रखा तथा वायलिन वादक यहूदी मेनुहिन के साथ मिलकर सारंगी को विदेशों में पहचान दिलाई। सेवानिवृत्ति के बाद **यूनिवर्सिटी आफ वॉशिंगटन** द्वारा आप **विज़िटिंग प्रोफेसर** के रूप में बुलाए जाते रहे। 1947 में आप भारत की आजादी के जश्न समारोह मे भाग लेने वाले कलाकारों में से एक थे। संगीत जगत में योगदान के लिए भारत सरकार ने सन 2006 में आपको **पद्मभूषण** सम्मान से सम्मानित किया। आज सारंगी वादकों की स्थिति में पहले से बहुत सुधार हुआ है। सारंगी वादकों ने अपनी परंपरा को जीवित रखने के लिए सारंगी की अगली पीढ़ी को तैयार किया है।

पंडित रामनारायण की सुपुत्री अरुणा नारायण काले और उनके पौत्र हर्ष नारायण, उस्ताद साबरी खान के सुपुत्र कमाल सरवर साबरी, उस्ताद अब्दुल लतीफ खान के पुत्र फारूक लतीफ, पंडित इंद्र लाल धांधरा के पौत्र श्री विजय कुमार, तबला वादक पंडित किशोर बनर्जी की सुपुत्री गौरी बनर्जी, श्री ग़ुलाम साबिर खां के सुपुत्र मुराद अली, श्री ग़ुलाम साबिर कादरी के नाती गुलाम अली तथा पंडित भारत भूषण गोस्वामी के पुत्र कुलभूषण गोस्वामी इस वाद्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

इस वाद्य को प्रोत्साहित करने के लिये **आकाशवाणी, दूरदर्शन, ICCR,** संगीत संस्थाए, फ़िल्मसंगीत, संगीत नाटक अकैडमी, म्यूजिक कंपनी, उद्योगपतिओं और नेताओं को आगे आना होगा।

सारंगी वादकों को अपने सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य को भी दिल खोल कर सीखाना पड़ेगा। इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों के साथ -साथ सारंगी को भी अधिक से अधिक शामिल करना पड़ेगा।

शास्त्रीय गायको से अनुरोध है की संगत के लिए हारमोनियम, वायलिन के साथ -साथ सारंगी को भी शामिल करें।

वर्तमान में उभरते कलाकारों को अपनी मजबूत पहचान बनाने के लिए महत्वपूर्ण है **सोशल मीडिया** पर **सक्रिय रहना** और लाइव प्रदर्शन से **सीधे प्रशंसकों** से जुड़ना।

Address: B-214 Pocket 1, Kendriya Vihar II
Sector 82 Noida 201304
Mob.: 9999911817


# पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

## पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

**'कला समय'** के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

**'कला समय' की एजेंसी के नियम**- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

**स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें**- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

**लेखकों/कलाकारों से** ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

**प्राथमिकता के साथ :** Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : **वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।**

**-संपादक**

आलेख

# महाराष्ट्र के लोकसंगीत के तालवाद्य - संबल और दिमड़ी

केशव परांजपे

लोक संगीत और लोकसंगीत के साजों का- वाद्ययंत्रो के अभ्यास- अनुसंधान का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। जहां लोक- संगीत संस्कृति की खोज का साधन है वहां वाद्ययंत्र सभ्यता के बारे में बहुत कुछ बातातें हैं। समाज की वैज्ञानिक उपलब्धि, भौतिक संसाधन, कला-कुशलता आदि की संज्ञा वाद्ययंत्रो के अनुसंधान से प्राप्त की जा सकती है। ऐतिहासिक अनुसंधान की एक शाखा है मुद्राशास्त्र ! सिक्कों को देख, परख के तत्कालीन समाजस्थिति के बारेंमें अंदाज लगाएं जातें हैं। उसीतरह, वाद्ययंत्रों की जांच से सांस्कृतिक प्रक्रिया के बारे में अनुमान लगाएं जा सकतें हैं। वाद्य किस प्रदेश में बजता है, उस प्रदेश में उस की उत्पत्ति हुई है, या वह और कहीं से वहां आया है, वाद्य की संरचना में कब और कहां, कौन से परिवर्तन हुए हैं - इन बातों की छान-बीन से सभ्यता के संगम और विकास के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

जन्म से ले कर, मृत्यु के बाद की यात्रातक व्यक्ति के जीवन के हर मोडपर लोकसंगीत साथ देता है; व्यक्ति की भावना को, उम्मीदों को मुखरित करता है, जीवन के हर मोड को सुर-ताल में ढालकर समाज में जाहिर करता है। समाजजीवन में भी संगीत त्योहार- उत्सव के आनंदोल्लास को अभिव्यक्ति देता है, उत्सव में शामिल हर व्यक्ति को उत्सव के भाव में बहाकर समाज को एकदिल बना देता है। व्यक्ति और समाज जीवन में लोकसंगीत सिर्फ एक मनोरंजन नहीं बल्कि एक उपचार, एक विधि की अहमियत रखता है। जीवन के प्रसंगों से, सामाजिक उत्सवों से विशिष्ट संगीतविधा जुडी रहती है। संगीत और साजों के प्रयोग के संकेत बनें रहते हैं।

भौगोलिक प्रदेश, जनजाति- संप्रदाय और अवसर विशेष इन चीजें के साथ विशिष्ट संगीत और विशिष्ट वाद्ययंत्रों का समीकरण बना राहता है। स्थानिक और पौराणिक देव-देवताओं के साथ विशिष्ट संगीत और विशिष्ट वाद्ययंत्र जुडे रहतें हैं।

भारत देश के अन्य राज्यों की तरह महाराष्ट्र की लोकसंस्कृति भी अपनी एक अलग पहचान बनाती है। महाराष्ट्र की अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति की बदौलत महाराष्ट्र की अपनी अनूठी संस्कृति बनी है। अत्यंत संपन्न और विविधता से भरी शतकों से पली फुली उत्तर भारत की संस्कृति! कोई नदी विंध्याचल को लांघ के दक्षिण की तरफ, महाराष्ट्र में नहीं उतर आई हो, मगर संस्कृति की धारा उत्तर से महाराष्ट्र में जरूर बही आई है। परकीय आक्रमणों से बहुत हद तक बची रही दक्षिण की संस्कृति गंगा का बहलाव भी कर्नाटक, आंध्र, तेलंगणा से हो कर महाराष्ट्र में आया है। सागरी मार्ग से आए सांस्कृतिक प्रभाव अपराह्न भूमि, कोंकण में उतरकर महाराष्ट्र की संस्कृति में घुल मिल गये हैं। महाराष्ट्र की लोकसंस्कृति इन सभी प्रभावोंसे वैविध्यपूर्ण और संपन्न बनी है। संस्कृति की आवाज है- संगीत, संस्कृति का स्पंदन है- संगीत! लोकसंगीत का स्वरूप वाद्ययंत्रो की उपलब्धता पर निर्भर रहता है। महाराष्ट्र का लोकसंगीत विविधतासे और संपन्नता से परिपूरित है। महाराष्ट्र के गिरि कंदरों में, देहातों में, शतकों से खडे तीर्थक्षेत्र, मंदिरों के प्रांगणों में, सामूहिक तीर्थयात्रा में, त्योहार, उत्सव मनाते हुए लोकसंगीत गूंजता रहा है। सदियों पुराने गीत, वाद्ययंत्र काल की चुनौती पर टिकें रहें हैं, तो कहीं उन में तबदिली आई है, कहीं कुछ नामशेष भी हुआ है, मगर नया कुछ उभर भी रहा है।

इस पार्श्वभूमीपर महाराष्ट्र के कुछ वाद्ययंत्रों के बारे में संक्षेप में कुछ कहने का प्रयास यहां किया गया है।

पश्चिम महाराष्ट्र के जेजुरी गढ़ के खंडोबा महाराष्ट्र के एक प्रमुख लोक देवता है। खंडोबा के पूजाविधी तथा उत्सव का शतकोंसे, संगीत एक अविभाज्य अंग है जिसे "जागरण- गोंधळ" कहा जाता है। खंडोबा के चंपाषष्ठी उत्सव के सभी छे दिनों में खंडोबा के सामने गोंधळ प्रस्तुत किया जाता है जिस में खंडोबा की जीवन कहानी गायी जाती है, खंडोबा के स्तुति गीत गाए जातें हैं। मन की मुराद रखने पर या मुराद पूरी होने पर, घर में शादी, शिशुप्राप्ति जैसे मंगल अवसर पर भी गोंधळ का आयोजन किया जाता है। पेशेवर "गोंधळी" गोंधळ की प्रस्तुति करतें हैं। पिढियों से गोंधळी समाज खंडोबा की सेवा में गोंधळ करते आए हैं। मुख्य गोंधळी कमर में बांधे "संबल" नामक तालवाद्य यंत्र को बजा के कथा, गायन प्रस्तुत करता है।

यल्लम्मा, महालक्ष्मी जैसी देवी को पूरी तरह से समर्पित भक्त जोगता(पुरुष) , जोगतीण(स्त्री) देवी की करुणा गा कर, नृत्य कर के भिक्षा मांगते हैं जिसे "जोगवा" कहतें हैं। जोगवा की संगत में भी संबल बजती है।

बारहवी सदी में बने तुळजापुर के भवानी मंदिर में आरती के बाद संबल बजाने की परंपरा सदियोंसे चली आई है।

**महाराष्ट्र का लोकवाद्य यंत्र संबळ**

वेदों में जिसे 'स्तंबर' या 'सांबल' कहा गया है वही महाराष्ट्र का लोकवाद्य यंत्र 'संबळ' है ऐसा मानना है। ऐसा भी मानना है कि संबळ डमरू

का प्रगत रूप है। कालिका पुराण में बताया गया है कि देवी पार्वती को प्रमुदित करने के लिए शिवजीने इस वाद्य का निर्माण किया। एक कथा ऐसा भी कहती है कि संबळ के दो नगाड़े महिषासुर के दो शिष्य - चंड और मुंड - हैं जो माता कालिका की शरण में संबळ के रूप में आ बैठे हैं। पुराणों के मुताबिक यह देवी की उपासना से जुड़ा हुवा वाद्य है।

वैज्ञानिक वर्गीकरण के अनुसार संबळ एक 'अवनद्ध' वाद्य है क्योंकि इस का मुख खाल/चमड़े से 'ढका' रहता है। तान-खींच कर लगाए हुवे पटल पर आघात कर के इस वाद्य से नाद-निर्मित की जाती है, इसलिए इसे कंपितपटल वाद्य की श्रेणी में गिना जाता है। संबळ को 'जोड-समेळ' भी कहा जाता है क्योंकि यह वाद्य दो वाद्यों की 'जोडी' है। संबळ एक दूसरे से जुड़े दो नगाड़े या ढोल (ड्रम्स) की जोड़ी रहती है। इनमें से एक को,जो बड़ा रहता है उसे 'नर', 'धम' या 'बंब' कहते हैं तो दूसरे को, जो थोड़ा छोटा रहता है, 'मादी' या 'झील' कहते हैं। बड़े नगाड़े का व्यास 7-8 इंच तो छोटे का 6-7 इंच रहता है। दोनों नगाड़े आम, इमली जैसे बड़े पेड़ के तने के टुकड़े को अंदर से छील के बनाये जाते हैं। दोनों नगाड़े पीतल या तांबे के भी रह सकते हैं। कभी बड़ा नगाड़ा 'धम' तांबा या पीतल धातू का और 'झील' नगाड़ा पेड़ के तने से बनाया रहता है। धम और झील के मुख पर बकरे की खाल तान कर मढ़ी रहती है। संबळ की खासियत यह है कि संबळ के दोनों नगाड़े लोहे के कंकणाकृति आधारोंपर स्थिर किये जाते हैं। दो नगाड़े भी एक दूसरे से जुडे रहते हैं। संपूर्ण वाद्य एक स्टँड जैसा जुडा रहता है। मुख पर ताने हुवे चमड़े को बांधनेवाली रस्सी नगाड़ों को अवगुंठित नहीं करती। चमड़े के पटल लोहे के छल्लों द्वारा लगाए जाते हैं। वर्तुलाकार चमड़े के परिघ पर छेद रहतें हैं जिन में से रस्सी को खींच कर चमड़े को नगाड़ों केमुंह पर ताना जाता है। इन छेदों और तल पर के आधार कंकण से रस्सी गुजरती है जो चमड़े को खींचकर बांधकर रखती है। संबळ को गायन के सुर से सही सही मिलाने की गुंजाइश कम ही रहती है। संबल के दो नगाड़ों में से झील - उच्च स्वर का छोटे मुंहवाला जो नगाड़ा होता है उस पर 'स्याही' चढाना वैकल्पिक है, लेकिन बड़े नगाड़े के चमड़ेपर स्याही चढ़ाना अनिवार्य है। धम के चमड़े पर बीचोंबीच वर्तुलाकार में अंदर की तरफ से स्याही चढाई जाती है। (लोहे की महीन पावडर, चावल/गेहूं का आटा, शिरस, मेथीदाना जैसी चीजों का घुला-मिला मिश्रण चर्मतालवाद्य की 'स्याही' कहलाता है।) स्याही लगाने से चर्मपटल का कंपन नियंत्रित होता है और पटल से निकलनेवाली ध्वनि परिष्कृत की जाती है। संबल वाद्य का वजन दस किलो के आसपास रहता है। संबल को रस्सी और शेले के सहारे से वादक अपने कमर को बांध लेता है। वादक खड़ा रह कर ही संबल बजाता है। आजकल यह आम तौर पर देखा जाता है कि संबल को रस्सी से कंधों पर लटकाया जाता है, साथ साथ कभी कभी कमर में बांधा भी दिखाई देता है। संबल दाए और बाएं हाथों में एक एक छड़ी पकड़ के, छड़ी से बजाई जाती है। छड़ियों की लंबाई 12-15 इंच की रहती है। वादक झील-नगाड़े पर अपने बाएं हाथ से, बेत की सीधी छड़ी से आघात करता है। धम को बजाने की छडी असल में 'आराटी' नाम के वनस्पति की जड़ रहती है जो निसर्गतः धम को बजाने के अनुकूल आकार का रहता है। धम पर पड़ने वाले छड़ी का प्रहार का सिरा प्रश्नचिन्ह (?) या अंग्रेजी अक्षर 'एस' के आकार का रहता है। आराटी

की जड़ न मिले तो बेत की छड़ी को आवश्यक आकार दे कर काम में लाया जाता है। छड़ी के सिरे के इस विशिष्ट आकार की वजह से धम की ध्वनि गहरी हो जाती है। इस विशिष्ट आकार की वजह से छडी के आघात का जोर चमड़े पर रेषा में नहीं, बल्कि एक बिंदू में पड़ता है। छड़ी को धम पर घींसा भी जाता है जिससे ध्वनि की तारता 'मींड' जैसी चढ़ती सुनाई देती है। संबळ के ध्वनि की यह खासियत है; दाएं और बाएं की ध्वनि में सुस्पष्ट अंतर भी इस से सुनाई देता है। निपुण वादक कई बोलों को बजाने के लिए दोनों छड़ियों को एक ही नगाड़े पर मारते हैं। ऐसा करने से अति गतिमान बोल अच्छे बजते हैं। ऐसे भी संबलवादन गतिमान ही रहता है। धीमी गति में इस वाद्य को प्रायः नहीं बजाया जाता। परंपरा यह ही रही है कि 'गोंधळी' स्वयं संबल बजाकर गाता है। संबल वाद्य को पश्चिम महाराष्ट्र, गोवा, कोंकण, दादरा-नगर हवेली प्रांतों में पाया जानेवाला वाद्य कहा गया है, लेकिन खानदेश (उत्तर महाराष्ट्र), मराठवाडा (मध्य महाराष्ट्र) में भी आदिशक्ती के विविध अवतारों की उपासना-उत्सवों में संबल का प्रयोग विपुल मात्रा में दिखाई देता है। उत्तर और मध्य महाराष्ट्र से आए अनेक संबलवादकोंने यूट्यूब जैसे माध्यमोंपर अपने संबलवादन का प्रदर्शन किया है।

'पोवाडा' गायन की परंपरा महाराष्ट्र में चली आयी है। डफ-तुणतुणे ये वाद्य पोवाडा के पारंपरिक साथीदार हैं। किंतु आजकल पोवाडा गायक - 'शाहीर' - पोवाडा प्रस्तुती में ऊर्जा उन्नत करने के लिए, भाव की उत्कटता बढाने के लिए संबल की साथ-संगत लेते हैं।

संबलवादक परिवार ज्यादह तर पश्चिम महाराष्ट्र से ही है। शारदीय नवरात्रि में ये लोग कोंकण में आ के गांव गांव के गांवदेवी मंदिरों में नवरात्रि के

नऊ दिन (रात्रि) देवी-कथा, देवी-स्तुति गोंधळ के विधिनाट्य शैली में प्रस्तुत करते हैं। गोंधळी मंडळी - एक समूह, एक परिवार कोंकण के उसी गांव में दशकों से आते रहे हैं। नवरात्रि समाप्ति के बाद ये लोग कुछ और दिन उन्हीं गावों में रहकर घर घर जा के दान-दक्षिणा प्राप्त करते हैं। अपनी कमर में संबल बांध के, पारंपरिक वेशभूषा में, गले में कवड़ियों की माला पहन के ये लोग घर घर जाते हैं। नवरात्रि उत्सव का ये स्वरूप अब लुप्त होता जा रहा है।

संबळ वादन के तंत्र की शिक्षा गोंधळी परिवारों में नई पीढ़ी को विरासत में मिलती है। आजकल लोककला के प्रति समाज का, और खास कर के संगीत अभ्यासकों का रुख जो अधिक स्वागतशील बना है, कई कलाकार 'गोंधळी' घरानों में पैदा नहीं होते हुवे भी संबल बजाना सीखें हैं। लोक संस्कृति में रुचि रखनेवाली, इस विषय में अनुसंधान कर रही एक महिला - सुलभा सावंत, इस मामले में एक मिसाल बनी है। वे गोंधळी परिवार से नहीं है; और एक नारी है। इन कारणों की वजह से सुलभा जी को संबल वादन सीखने में कई दिक्कतें आई; लेकिन उन्हों ने संबल वादन सीखा और इस कला में प्राविण्य पाया। 1981 में टोकियो में एक आंतरराष्ट्रीय लोककला महोत्सव का आयोजन हुवा था। इस महोत्सव में पांडुरंग घोटकर नाम के महाराष्ट्र के एक लोक कलाकारने संबल, ढोलकी, दिमड़ी, डफ आदि लोक तालवाद्यों का वादन प्रस्तुत किया था। घोटकर का उस महोत्सव का संबल वादन टोकियो के संग्रहालय में संग्रहित है।

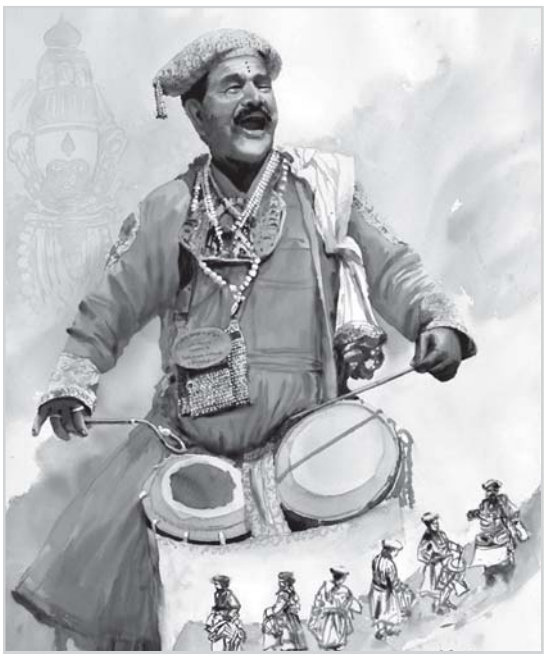

**दिमड़ी**

महाराष्ट्र के खंडोबा के गोंधळ-जागरण विधिनाट्य के साथ जुड़ा और एक अवनद्ध, कंपितपटल लोक ताल वाद्य है - दिमड़ी। महालक्ष्मी, तुळजाभवानी आदि आदिशक्ति देवियों के 'जोगवा' में भी दिमड़ी बजती है। महाराष्ट्र में गाणगापुर के इलाके में दत्तभक्तों का 'दत्तसंप्रदाय' है। दत्त सांप्रदायिक अपनी विशिष्ट शैली में दत्तभजन गाते हैं। दत्तभजन की साथ संगत में भी दिमड़ी बजती है।

दिमड़ी एक छोटा वाद्य है। 6-7 इंच व्यास के लकड़ी के ड्रम को एक सिरे से चमड़े से ढका जाता है। इस ड्रम की लंबाई (गहराई) देड-दो इंच तक ही रहती है। चमड़ेवाला सिरा खुले सिरे से, व्यास में आधे इंच तक कम, छोटा रहता है। दिमड़ी का ड्रम बबूल, इमली, शिसम या साग जैसे पेडों के तने से बनाया जाता है। दिमड़ी के मुखपर तान कर लगाया गया चमडा बकरे का रहता है। इस काम के लिए पुराने जमाने में गोधा की खाल का इस्तमाल हुवा करता था। दिमड़ी के ड्रम पर चमड़े को शिरस/डिंक से चिपकाया जाता है। आजकल चिपकाने की बजाय चमड़े के पटल को स्क्रू से भी लगाया जाता है। दिमड़ी को बाए हाथ में पकड़ के दाहिने हाथ की हथेली और उंगलियों से बजाया जाता है। उंगलियों से द्रुत बोल (लघु) तथा हथेली से 'गुरु' बोल बजाकर एक ही वाद्य पर दाया-बाया बजने का एहसास दिमड़ी वादन में दिया जाता है। दिमड़ी वादन में और भी एक परिमाण मौजूद है। बाए हाथ से दिमड़ी को पकड़े रख कर बाएं हाथ की बड़ी उंगली को दिमड़ी के चर्मपटल पर अंदर से दाब दिया जाता है, जिस से ध्वनि की तारता बढ़ती है। बोलों में तारता बदलाव का प्रयोग कर के बोलों में एक अनूठापन लाया जाता है और वादन की रंजकता बढ़ती है। बाई उंगली के प्रयोग से जो वादन में चमत्कृति लायी जाती है उसे दिमड़ी की 'गुबकी चाल' कहते हैं। गुबकी चाल द्रुत-अतिद्रुत लय में नहीं बजाई जाती। स्क्रूवाली दिमड़ी सुर में मिलाना आसान हो जाता है। जिस दिमड़ी में चर्मपटल चिपकाया गया हो उसे हलके गरम कर के उसकी तारता बढाई जाती है। बकरे के चमड़ेवाली दिमड़ी पर गुबकी चाल सहजता से बजाई जा सकती है, क्योंकि बकरे का चमड़ा पतला, चिकना और लचिला रहता है। मगर गोधा (गोह/ गोयरा/ मॉनिटर लिझार्ड) की खाल से तीव्र ध्वनि की निर्मिती होती है। गोधा की खाल खरदुरी रहने की वजह से ध्वनि में एक मजा आता है। यह गौर करने की बात है कि गोधा पश्चिमी महाराष्ट्र के सह्याद्रि पहाडों में पाया जानेवाला जानवर है। शिवाजी महाराज की युद्ध सामग्री में दुर्गम पहाडोंपर चढने के लिए गोधा साथ रखा जाता था। दिमड़ी के छोटे आकार और बड़े काम की विशेषता से यह वाद्य घुमंतू कलाकारों का पसंदीदा साज है। गोंधळी लोगों के साथ बैरागी, जंगम, गोसावी दिमड़ी बजाते फिरते हैं।

आदिवासी, देहाती लोगों का विश्वास है कि दिमड़ी की ध्वनि नकारात्मक ऊर्जा का निवारण करती है। दिमड़ी की ध्वनि में भगवान और पूर्वजों का आशीर्वाद ध्वनित होता है। आदमी में देवता का संचार लोक संस्कृति में आम बात है। इस संचार का रास्ता दिमड़ी की ध्वनि आसान करती है, ऐसा भी माना जाता है।

दिमड़ी अपनी संरचना और ध्वनि की विशेषताओं के बल पर लोकसंगीत के दायरे के बाहर भी गूंजित है। वाद्यवृंदों में, चित्रपट संगीत में दिमड़ी के रंग दिखाई देते हैं।

संपर्क : ए 34 विनीता सोसायटी,अंधेरी- घाटकोपर लिंक रोड,
चकाला, अंधेरी पूर्व, मुंबई 400093
भ्रमणध्वनी - 7738674321

■

संस्मरण

# महान सरोद वादक, पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ

## की पुण्यतिथि (सितंबर 6) पर 'राग-संगीत के महानायक की अंतिम यात्रा...'

डॉ. रमा दास

आज आधी सदी से अधिक वर्ष बीत गए जब आकाशवाणी पर हिंदुस्तानी संगीत के महानायक, पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के निधन की खबर आई थी।

उस उदास सुबह की स्मृतियाँ जैसे भूलती ही नहीं। मैं साक्षी रही थी उन क्षणो की, अपने सामने उन्हे अंतिम यात्रा पर जाते देखा और पीछे छूट गए सन्नाटे को भी महसूस किया था मैंने।

यह सन् 1972 की बात है। सितंबर का महीना जब हवा में ग्रीष्म काल की तपिश कम हो जाती है और सुबह का समय शरद ऋतु के आने का संकेत देने लगता है। सितंबर के छः तारीख को राग संगीत का यह ध्रुव तारा टूट गया था। महान सरोद वादक और तंत्र वादन में मैहर घराना के प्रणेता, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने इस संसार से विदा लिया था।

घटना मध्य प्रदेश के मैहर की थी। मदीना भवन, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब का निवास से लेकर पूरे मैहर तक सन्नाटा पसर गया था। बल्कि राग संगीत से जुडा हर वर्ग, हर समाज-समुदाय और हर क्षेत्र में जैसे दुख की छाया फैल गई थी। लेकिन इस घटना से उपजी जो गहरी पीडा और तडप की छटपटाहट मैनें अपने पिता, सरोद वादक और संगीत विद्वान, प्रो चंद्रकांत लाल दास की आँखों में देखी, उसे याद कर आज भी सिहरन हो आती है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के निधन से प्रो. दास ने न केवल अपना गुरु खोया था, बल्कि अपना अभिभावक और मार्गदर्शक खो दिया था। जिस दिन से पटना के एक कार्यक्रम में उनकी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब से भेंट हुई थी और उनका आशीर्वाद मिला था, उस दिन से प्रो. दास महसूस कर रहे थे जैसे उनके जीवन का एक नया अध्याय ही शुरू हुआ हो जिसकी कमान अलाउद्दीन खाँ साहब के हाथों में ही हो। और अब जब वह व्यक्तित्व ही किसी शून्य में विलीन हो गया हो तो प्रो. दास को लगा था जैसे राह चलते- चलते एक स्नेहिल मार्गदर्शक का हाथ अपने हाथ से छूट गया। वे आकाशवाणी पर प्रसारित यह समाचार सुनकर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के अंतिम दर्शन के लिए व्याकुल हो गये थे और मैहर जाने को तत्पर थे।

लेकिन उनकी मनोदशा देखकर उन्हे पटना, बिहार से मैहर, मध्य प्रदेश तक की लंबी यात्रा पर अकेले जाने देना घर में किसी को ठीक नहीं लगा था। ऐसे में पिताजी ने अपने कुछ कलाकार मित्रो से साथ चलने की बात छेड़ी थी, लेकिन कोई साथ नहीं दे सका था।

उन दिनों मैंने पिताजी से सरोद सीखना शुरू कर दिया था। मेरा कत्थक नृत्य सीखना तो चल ही रहा था और 1972 के अगस्त महीनें में ही मैने महान कलाकार पं विष्णु दिगंबर पलुस्कर की शताब्दी वर्ष पर पटना के श्रीकृष्ण मेमोरियल हॉल में आयोजित दो दिवसीय संगीत- नृत्य समारोह अपने जीवन का पहला मंचीय कार्यक्रम भी किया था। लेकिन इन्ही दिनों मैने सरोद पर सरगम पलटा का भी अभ्यास शुरू कर दिया था।

पटना के ग्रैंड होटल की छत पर पद्म विभूषण आचार्य अलाउद्दीन खाँ प्रो चँद्रकांत लाल दास, सरोद वादक तथा संगीत विद्वान के साथ ये तस्वीर श्रीमती सावित्री देवी ने ली थी

मुझे यकीन है कि कोई सरोद उठाए और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के व्यक्तित्व से अभिभूत न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। यही हाल मेरा भी था। अतः पिताजी ने मुझे साथ लिया और हम दोनो निकल पडे थे। राग संगीत के तीर्थ स्थल, मैहर की यात्रा पर।

उन दिनों पटना जंक्शन से रात के ग्यारह बजे खुलती थी बॉम्बे जनता एक्सप्रेस। पिताजी ने यात्रा की योजना के तय होते ही रेलवे टाइम टेबल खँगालना शुरू कर दिया था। उनकी कोशिश थी कि जल्द से जल्द मैहर पहुँचें ताकि उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की अंतिम यात्रा में शामिल हो सकें. अतः उसी रात हमने बौम्बे जनता से निकलने का निश्चय किया था।

जब ट्रेन खुली तो हमारी पूरी बोगी खाली थी हम दोनो को छोडकर। हालाँकि ट्रेन जब स्टेशन से सरक रही थी, एक बंदा कंपार्टमेंट में घुसा। बाद में जानकारी मिली कि वह रेलवे का स्टाफ ही था। वहाँ से निकलकर ट्रेन आगे बढी और दानापुर स्टेशन पहुँची तो इक्के दुग्गे लोग अगले कंपार्टमेंट में चढे। लेकिन उसके बाद किसी के कंपार्टमेंट में चढने की आहट नहीं आई।

पूरे सफर में बस रेल के पहिए की आवाज़ घर्राती रही थी। पिताजी पूरे रास्ते लगभग खामोश ही रहे थे। दुख का शोर इतना ज्यादा था कि जैसे कुछ कहने-सुनने की ताकत ही नहीं बची थी।

अगले दिन दोपहर के समय जब मैहर स्टेशन पर हम उतर रहे थे तो देखा उस्ताद अली अकबर खाँ की पत्नी और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की बहू, श्रीमती राज दुलारी जी अपने दोनो बेटों, राजेश अली खाँ और उनके छोटे भाई के साथ उसी ट्रेन से उतरी थीं और उनके सामान उतारे जा रहे थे।

श्री राजेश जी ने पिताजी को पहचान लिया और अभिवादन में सर हिलाया तो हम दोनों आगे बढे और राजदुलारी जी को प्रणाम किया। हल्की बातचीत हुई और हम सभी मदीना भवन की ओर चल दिए थे।

मैहर की ये मेरी पहली यात्रा थी। हालाँकि पिताजी और माँ, सावित्री देवी तो यहाँ अनेकों बार आ चुके थे। उनका मदीना भवन भी कई बार आनाजाना हो चुका था। लेकिन मेरी यह पहली मैहर यात्रा थी। मैंने देखा स्टेशन पर मौजूद कुली और सामने लगे रिक्शावाले और औटोवाले ट्रेन से उतरने वालों को देखते ही भाँप ले रहे थे कि उनका गंतव्य मदीना भवन ही है। सभी लोग उन्हे बाबा अलाउद्दीन कहकर ही संबोधित कर रहे थे।

हमारे साथ भी वैसा ही हुआ। वह रिक्शा वाला हमें भी सीधा मदीना भवन ही ले आया था। वहाँ तो एक अलग दृश्य था। दूर से ही फूल वालों और माला वालों की लंबी कतार दिख रही थी। जिस तरह मंदिर- देवालयों के आस पास फूलवालों की रेडियाँ सज जाती हैं, वैसा ही माहौल था यहाँ। हम गेट पर उतरे और रिक्शे पर ही अपना सामान छोड मदीना भवन परिसर में आए। कभी बाबा अलाउद्दीन ने अपने हाथों से इस परिसर को फूल पत्तियों पौधों पेड़ों से सजाया था। वे पौधे अब घने वृक्ष हो चले थे। कभी जिसकी टहनियों से लगे फूलों ने बाबा अलाउद्दीन के आस पास अपनी खुशबू बिखेरी थी, पत्तियों की सरसराहट ने उन्हें सहलाया था, वे अब खामोश थे। परिसर में सैकडों की संख्या में मैहरवासी मौजूद थे। मीडिया की भी भारी भीड थी। लेकिन कोई आवाज़ नहीं आ रही थी किसी ओर से। जैसे उनके निधन से सभी सकते में हों अभी भी। हम अंदर आँगन में गए। बाबा अलाउद्दीन का पार्थिव शरीर पडा था। उनके आस पास परिवार के लोग और सगे संबंधी तथा शिष्यगण बडी संख्या में मौजूद थे। उस्ताद आशीष खाँ और उस्ताद बहादुर खाँ से लेकर डेविड साहब, पंडित ज्योतिन भट्टाचार्या, पंडित निखिल बैनर्जी, पंडित इंद्रनील भट्टाचार्या, रौबिन घोष, विवेक रंजन जी इत्यादि की मौजूदगी तो याद हैं मुझे।

पटना के एक संगीत समारोह में प्रो चंद्रकांत लाल दास

यहाँ पहुँच कर पिताजी और भी तकलीफ में लगे। यह वही आँगन था जिसके बरामदे में बैठकर बाबा अलाउद्दीन उनसे घंटों बातें किया करते थे, परिवार की बातें, मैहर बैंड की चर्चा और म्यूजिक कौलेज के बनने सँवरने की बातें। आज फिर उन यादों का सैलाब उमड आया था। उन्होंने आगे बढकर बाबा को प्रणाम किया और उनके पीछे मैं बढी थी अंतिम प्रणाम कहने।

सभी की नजरें हमारी तरफ उठी थीं। हम प्रणाम कर पीछे आ गये थे। डेविड साहब ने हमें देखा तो उठकर हमारे पास आए और फिर हम सभी उनके घर की ओर चले थे। लेकिन डेविड साहब के घर पर सामान रखकर एकबार फिर हम मदीना भवन लौट आए थे। यहाँ अब हवा में दुख के साथ- साथ प्रतीक्षा की बेचैनी भी घुल मिल गई थी। सभी को इंतजार था उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के बेटे उस्ताद अली अकबर खाँ, बेटी अन्नपूर्णा देवी और जामाता पंडित रवि शंकर के आने का। बाहर परिसर में अब इन लोगों के बारे में फुसफुसाहट होने लगी थी। लोग संशय में थे कि परिवार के लोग पहुँचेंगे या नहीं। जानकारी मिली कि उस्ताद अली अकबर खाँ मैहर आए थे बीमार पिता को मिलने और हाल ही अमेरिका लौटे थे। लेकिन सभी को बेटी अन्नपूर्णा देवी का बेसब्री से इंतजार था। कहा जा रहा था कि वो वर्षों से मैहर नहीं आई थीं। बेटी का इंतजार करते पिता की आँखें थक गई थीं, लेकिन मदीना भवन के दरवाजे पर बेटी ने दस्तक नहीं दी थी। अतः पिता के अंतिम दर्शन को उनका आना हो सके, ऐसी उम्मीद थी लोगों को।

आँगन में भी धीमी आवाज़ में इसी बात की चर्चा हो रही थी। सभी सोच रहे थे क्या किया जाए और कैंसे हो सब कुछ। घंटों के विमर्श के बाद यह तय किया गया कि अगली सुबह तक प्रतीक्षा की जाए और फिर मैहर वासियों की इच्छा के अनुरुप पूरे शहर में यात्रा निकाली जाए ताकि सभी उनका अंतिम दर्शन कर सकें।

अगले दिन भी वे नहीं आए जिनके आने का इंतजार था सभी को। फिर यात्रा की तैयारी शुरू हुई। पार्थिव शरीर जैसे ही आँगन से निकाला गया, परिसर में जैसे लोगों का हुजूम उमड पडा अंतिम दर्शन करने को। सभी की इच्छा थी उस संत संगीतकार से अंतिम आशीर्वाद लेने की। जिनके सरोद की आवाज़ से संगीत का संसार गूँजरित रहा था, जिनके पुष्प वंदन से मैहर की शारदा माता मुस्कुराती रही थी, जिनके स्नेह भरे दुलार से मैहर का जन जन इतने वर्षों तक सराबोर रहा था, वो व्यक्तित्व आज स्वयं शांत, निश्चेत पडा था।

लोग उत्तेजित थे उनके अंतिम दर्शन को। उनकी अंतिम यात्रा परिसर से बाहर चली तो मैं पिताजी के साथ शामिल हुई थी, लेकिन मुझे वहीं रुकने को कहा गया। महिलाएँ नहीं होती वहाँ, ऐसा कहा गया। मैं निराश हुई और डेविड साहब के घर की तरफ बढी। वो मदीना भवन से थोडी ही दूरी पर सडक के किनारे ही था। वहाँ दरवाजे पर खडी हुई तो यात्रा इधर की ओर आते दिखा। मैंने पाया कि यह यात्रा जिस घर के पास से गुजर रही थी, उस घर से फूलों की माला की बरसात जैसी हो रही थी जनाजे पर और घर के पुरुष उस यात्रा में शामिल हो जा रहे थे। ऐसा तो कभी कहीं देखा ही नहीं था। आज जैसे मैहर हर घर अपना सगा खो देने जैसा दुखी दिखा। मुझे महसूस हुआ कि उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जितने महान संगीतकार थे, उससे कहीं अधिक बडा उनका व्यक्तित्व था। इसीलिए तो यूँ लग रहा था जैसे वे सबके थे और सब उनके। उनके बीच ना तो कोई धर्म की दीवार थी, ना मजहब की कोई दूरी। सात सुरों से उपजे संगीत और मानवीय भावनाएँ जैसे सभी को एक सूत्र में बाँध गई थी।

इस महान संगीतकार को खाके सुपुर्द कर पिताजी जब वापस लौटे तो शाम ढल चुकी थी। वे चुप थें। डेविड साहब भी खामोश ही रहे। अगले दिन जब हम पटना वापसी के लिए ट्रेन में बैठें तो हमारे साथ थे उस्ताद बहादुर खाँ। वे कोलकाता लौट रहे थे। बाबा अलाउद्दीन के अंतिम काल के सारे रस्म उन्होंने निभाए थे, अतः अवसाद का बोझ अभी तक उनपर छाया था। बड़ी देर तक सभी ट्रेन में चुप ही थे। फिर जैसे पिताजी को मदीना भवन में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संग बिताए क्षणों की बातें याद आने लगी। लगा जैसे विछोह का दुख पिघलकर बाहर आ रहा है। उस्ताद बहादुर खाँ भी उसमें शामिल हो लिए थे।

ये सारे क्षण अभी भी वैसे ही ताजा हैं स्मृतियों में। उनकी पुण्यतिथि हर बार उन स्मृतियों को कुरेद जाती है।

लेखिका : वरिष्ठ कत्थक कलाकार, निदेशक, कलात्रयी
सम्पर्क: आसावरी एन-9 प्रोफेसर कॉलोनी, मुन्ना चक कंकड बाग, पटना- 83020
मोबा. : 9523474337

■

# पक्कसारणि व सारणि मार्ग: आधुनिक कर्णाटक संगीत में इनकी प्रासंगिकता

आरती राव

**प्रस्तावना**

१७वीं सदी में वेङ्कटमखी द्वारा रचित 'चतुर्दण्डी-प्रकाशिका' (च.द.प्र. ) उस काल के दक्षिण भारतीय सङ्गीत की अवधारणाओं की चर्चा करनेवाला एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इस में संगीत के चार 'दण्डों' का विवरण किया गया है – आलाप, ठाय, प्रबन्ध और गीत। इन चार रचना-प्रकारों के विश्लेषण के अलावा इस ग्रंथ में कई अन्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है - जैसे वीणा, श्रुति, स्वर, मेल पद्धति और राग। वीणा-संबंधित अध्याय में वीणा की तन्त्रियों को स्वरबद्ध करने व उनमें सारिकाओं का स्थापन करने की प्रणालियों का विवरण दिया गया है। 'शुद्ध-मेल-वीणा' व 'मध्य-मेल-वीणा', तन्त्रियों को स्वरबद्ध करने की विधियाँ हैं। इनका वर्णन करने के पश्चात् तन्त्रियों पर सारकाओं के स्थापन की विधियाँ बताई गई हैं। उसके बाद वीणा-वादन से सम्बन्धित 'पक्कसारणि मार्ग' व 'सारणि मार्ग' का उल्लेख हुआ है। इस लेख में इन मार्गों का विवरण करने के अलावा आधुनिक कर्णाटक सङ्गीत मे इनकी प्रासङ्गिकता के विषय में चर्चा करने का प्रयत्न किया गया है।

**शब्द-कोश**

१७वीं सदे में लिखी 'च.द.प्र.' के उपर्युक्त इन स्वरों को हम मोटे तौर पर आधुनिक हिन्दुस्तानी सङ्गीत के निम्नलिखित इन स्वरों के समान मान सकते हैं:

| च.द.प्र. स्वर | आधुनिक स्वर |
|---|---|
| शुद्ध स | शुद्ध स |
| शुद्ध रि | कोमल रे |
| शुद्ध ग | शुद्ध रे |
| साधारण ग | कोमल ग |
| अन्तर ग | शुद्ध ग |
| शुद्ध म | शुद्ध म |
| वरालि म | तीव्र म |
| शुद्ध प | शुद्ध प |
| शुद्ध ध | कोमल ध |
| शुद्ध नि | शुद्ध ध |
| कैशिकि नि | कोमल नि |
| काकलि नि | शुद्ध नि |

*आरेख १*

**शुद्ध-मेल-वीणा**

वेङ्कटमखी के विवरण के अनुसार शुद्ध-मेल-वीणा में प्रमुख ४ तन्त्रियाँ (तार) हैं। इनके अलावा ३ पार्श्व तार हैं। इन तारों की स्वर-संयोजना इस प्रकार है (च.द.प्र. १, १५-१९):

| पार्श्व तार | | |
|---|---|---|
| १:मध्य स: 'झल्लिका' | २: मध्य प | ३: तार स : 'टीपि' |

| प्रमुख तार | | | |
|---|---|---|---|
| ४: मध्य म | ३: मध्य स | २: मन्द्र प | १: मन्द्र स |

*आरेख २*

प्रमुख तारों में सारिकाओं की स्थापना इस प्रकार है (च.द.प्र. १, २०-३९):

| मुक्त तार | सारिका प्रकार | ४: मध्य म | ३: मध्य स | २: मन्द्र प | १: मन्द्र स |
|---|---|---|---|---|---|
| सारिका १ | लम्बी | वरालि म | शुद्ध रि | शुद्ध ध | शुद्ध रि |
| सारिका २ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध नि | शुद्ध ग |
| सारिका ३ | लम्बी | शुद्ध ध | साधारण ग | कैशिकि नि | साधारण ग |
| सारिका ४ | लम्बी | शुद्ध नि | अन्तर ग | काकलि नि | अन्तर ग |
| सारिका ५ | लम्बी | कीशिकि नि | शुद्ध म | शुद्ध स | शुद्ध म |
| सारिका ६ | लम्बी | काकलि नि | वरालि म | शुद्ध रि | वरालि म |
| सारिका ७ | लम्बी | शुद्ध स | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प |
| सारिका ८ | लम्बी | शुद्ध रि | शुद्ध ध | साधारण ग | शुद्ध ध |
| सारिका ९ | लम्बी | शुद्ध ग | शुद्ध नि | अन्तर ग | शुद्ध नि |
| सारिका १० | छोटी | म | | | |
| सारिका ११ | छोटी | प | | | |
| सारिका १२ | छोटी | ध | | | |
| सारिका १३ | छोटी | नि | | | |
| सारिका १४ | छोटी | अतितार स | | | |

*आरेख ३*

हम आरेख ३ में देखते हैं कि सारिका ६ के बाद हर स्वर के लिये एक ही सारिका है, यानि किसी भी स्वर के शुद्ध/कोमल/तीव्र प्रकार के लिये अलग-अलग सारिकाएँ नहीं है। सारिकाओं की इस संयोजना को 'एक-राग-मेल' वीणा का नाम दिया गया है। एसा प्रतीत होता है कि एसी संयोजना तब होती थी जब वीणा में कुछ सारिकाएँ सरकाई जा सकती थीं। वेङ्कटमखी ने लिखा है कि कुछ सारिकाएं लम्बी व कुछ छोटी हैं। लम्बी सारिकाएं चारों तारों के नीचे होती हैं, जबकि छोटी सारिकाएं केवल चौथे तार के नीचे होती हैं। जो लम्बी सारिकाएँ हैं, वे स्थिर हैं और जो छोटी हैं, वे सरकाई जा सकती

हैं। एक और बात यह है को चौथा तार वह है जो वीणा की ऊर्ध्व स्थिति में सबसे दाहिनी तरफ होता है। इसके बाईं ओर तीसरा, फिर दूसरा व पहला तार लगे होते हैं। इस संयोजना में किसी राग में जो भी स्वर - शुद्ध/कोमल/तीव्र प्रयुक्त होता था, तदनुसार सारिका को सरका कर उपयुक्त स्वर-स्थान पर रखा जा ता था। इस व्यवस्था में एक समय पर एक ही राग का वादन सम्भव था।

इसके विपरीत 'सर्व-राग-मेल/अखिल-राग-मेल-वीणा' सारिकाओं की एसी संयोजना थी जिसमें सभी स्वरों के सभी प्रकारों के लिये अलग-अलग सारिकाएं होती थीं। कुल मिलाकर सारिकाओं की संख्या १९ थी, जबकि 'एक-राग-मेल-वीणा' में हमने देखा कि सारिकाओं की संख्या १४ थी। 'सर्व-राग-मेल/अखिल-राग-मेल-वीणा' के प्रमुख तारों की सारिकाओं की संयोजना इस प्रकार है (च.द.प्र. १, ३९-४३):

| मुक्त तार | सारिका प्रकार | ४: मध्य म | ३: मध्य स | २: मन्द्र प | १: मन्द्र स |
|---|---|---|---|---|---|
| सारिका १ | लम्बी | वरालि म | शुद्ध रि | शुद्ध ध | शुद्ध रि |
| सारिका २ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध नि | शुद्ध ग |
| सारिका ३ | लम्बी | शुद्ध ध | साधारण ग | कैशिकि नि | साधारण ग |
| सारिका ४ | लम्बी | शुद्ध नि | अन्तर ग | काकलि नि | अन्तर ग |
| सारिका ५ | लम्बी | कैशिकि नि | शुद्ध म | शुद्ध स | शुद्ध म |
| सारिका ६ | लम्बी | काकलि नि | वरालि म | शुद्ध रि | वरालि म |
| सारिका ७ | लम्बी | शुद्ध स | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प |
| सारिका ८ | लम्बी | शुद्ध रि | शुद्ध ध | साधारण ग | शुद्ध ध |
| सारिका ९ | लम्बी | शुद्ध ग | शुद्ध नि | अन्तर ग | शुद्ध नि |
| सारिका १० | छोटी | साधारण ग | | | |
| सारिका ११ | छोटी | अन्तर ग | | | |
| सारिका १२ | छोटी | शुद्ध म | | | |
| सारिका १३ | छोटी | वरालि म | | | |
| सारिका १४ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध नि | शुद्ध ग |
| सारिका १५ | छोटी | शुद्ध ध | | | |
| सारिका १६ | छोटी | शुद्ध नि | | | |
| सारिका १७ | छोटी | कैशिकि नि | | | |
| सारिका १८ | छोटी | काकलि नि | | | |
| सारिका १९ | लम्बी | शुद्ध स | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प |

आरेख ४

**मध्य-मेल-वीणा**

इस स्वर-संयोजना में प्रमुख ४ तन्त्रियाँ (तार) हैं। इनके अलावा ३ पार्श्व तार हैं इन तारों की स्वर-संयोजना इस प्रकार है (च.द.प्र. १, ६९-७४):

| पार्श्व तार | | |
|---|---|---|
| १:मध्य स: 'झल्लिका' | २: मध्य प | ३: तार स : 'टीपि' |

| प्रमुख तार | | | |
|---|---|---|---|
| ४: मध्य स | ३: मन्द्र प | २: मन्द्र स | १: अनुमन्द्र प |

आरेख ५

मध्य-मेल-वीणा में भी हम एक-राग-मेल-वीणा व सर्व-राग-मेल-वीणा की संयोजनाएँ देखते हैं। एक-राग-मेल-वीणा में प्रमुख तारों पर सारिकाओं की संयोजना इस प्रकार है (च.द.प्र.१, ७४-९३):

| मुक्त तार | सारिका प्रकार | ४: मध्य स | ३: मन्द्र प | २: मन्द्र स | १: अनुमन्द्र प |
|---|---|---|---|---|---|
| सारिका १ | लम्बी | शुद्ध रि | शुद्ध ध | शुद्ध रि | शुद्ध ध |
| सारिका २ | लम्बी | शुद्ध ग | शुद्ध नि | शुद्ध ग | शुद्ध नि |
| सारिका ३ | लम्बी | साधारण ग | कैशिकि नि | साधारण ग | कैशिकि नि |
| सारिका ४ | लम्बी | अन्तर ग | काकलि नि | अन्तर ग | काकलि नि |
| सारिका ५ | लम्बी | शुद्ध म | शुद्ध स | शुद्ध म | शुद्ध स |
| सारिका ६ | लम्बी | वरालि म | शुद्ध रि | वरालि म | शुद्ध रि |
| सारिका ७ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प | शुद्ध ग |
| सारिका ८ | छोटी | ध | | | |
| सारिका ९ | छोटी | नि | | | |
| सारिका १० | लम्बी | स | प | स | प |
| सारिका ११ | छोटी | रि | | | |
| सारिका १२ | छोटी | ग | | | |
| सारिका १३ | छोटी | म | | | |
| सारिका १४ | लम्बी | प | ग | प | ग |
| सारिका १५ | छोटी | ध | | | |
| सारिका १६ | छोटी | नि | | | |
| सारिका १७ | लम्बी | अतितार स | प | स | प |

आरेख ६

मध्य- मेल- वीणा में 'सर्व- राग- मेल / अखिल - राग - मेल - वीणा' सारिकाओं की एसी संयोजना थी जिसमें सभी स्वरों के सभी प्रकारों के लिये अलग-अलग सारिकाएं होती थीं। कुल मिलाकर सारिकाओं की संख्या २३ थी, जबकि 'एक-राग-मेल-वीणा' में हमने देखा कि सारिकाओं की संख्या १७ थी। 'सर्व-राग-मेल/अखिल-राग-मेल-वीणा के प्रमुख तारों की सारिकाओं की संयोजना इस प्रकार है (च.द.प्र. १, ९४-१००):

| मुक्त तार | सारिका प्रकार | ४: मध्य स | ३: मन्द्र प | २: मन्द्र स | १: अनुमन्द्र प |
|---|---|---|---|---|---|
| सारिका १ | लम्बी | शुद्ध रि | शुद्ध ध | शुद्ध रि | शुद्ध ध |
| सारिका २ | लम्बी | शुद्ध ग | शुद्ध नि | शुद्ध ग | शुद्ध नि |
| सारिका ३ | लम्बी | साधारण ग | कैशिकि नि | साधारण ग | कैशिकि नि |
| सारिका ४ | लम्बी | अन्तर ग | काकलि नि | अन्तर ग | काकलि नि |
| सारिका ५ | लम्बी | शुद्ध म | शुद्ध स | शुद्ध म | शुद्ध स |
| सारिका ६ | लम्बी | वरालि म | शुद्ध रि | वरालि म | शुद्ध रि |
| सारिका ७ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प | शुद्ध ग |
| सारिका ८ | लम्बी | शुद्ध ध | साधारण ग | शुद्ध ध | साधारण ग |
| सारिका ९ | लम्बी | शुद्ध नि | अन्तर ग | शुद्ध नि | अन्तर ग |
| सारिका १० | छोटी | कैशिकि नि | | | |
| सारिका ११ | छोटी | काकलि नि | | | |
| सारिका १२ | लम्बी | शुद्ध स | शुद्ध प | शुद्ध स | शुद्ध प |
| सारिका १३ | छोटी | शुद्ध रि | | | |
| सारिका १४ | छोटी | शुद्ध ग | | | |
| सारिका १५ | छोटी | साधारण ग | | | |
| सारिका १६ | छोटी | अन्तर ग | | | |
| सारिका १७ | छोटी | शुद्ध म | | | |
| सारिका १८ | छोटी | वरालि म | | | |
| सारिका १९ | लम्बी | शुद्ध प | शुद्ध ग | शुद्ध प | शुद्ध ग |
| सारिका २० | छोटी | शुद्ध ध | | | |
| सारिका २१ | छोटी | शुद्ध नि | | | |
| सारिका २२ | छोटी | कैशिकि नि/ काकलि नि | | | |
| सारिका २३ | लम्बी | अतितार स | शुद्ध प | शुद्ध स | शुद्ध प |

आरेख ७

शुद्ध-मेल-वीणा व मद्ध्य-मेल-वीणा के प्रकारों का वर्णन करने के बाद वेङ्कटमखी ने 'सारणि' और पक्कसारणि मार्ग का उल्लेख किया है। सारणि मार्ग का विवरण करते हुए वे लिखते हैं कि शुद्ध-मेल-वीणा में पहले तार पर पहली ५ सारिकाओं पर 'रि, ग, म' स्वरों का वादन होता है। इनके बाद 'प' इत्यादि स्वर की सारिकाएँ यद्यपि इस तार पर उपलब्ध हैं, तथापि इस तार में उनका वादन नहीं होना चाहिये। इनका वादन दूसरे तार की सारिकाओं पर होना चाहिए। इसके विपरीत पक्कसारणि मार्ग में 'प, ध, नि' स्वरों का पहले तार पर वादन अनुमत है। इसी प्रकार सारणि मार्ग में दूसरे तार पर केवल पहली 5 सारिकाओं पर मिलने वाली 'ध, नि, स' स्वर बजाए जाने चाहिए। 'रि, ग, म' स्वरों को इस तार पर न बजाकर उन्हें तीसरे तार पर बजाना चाहिए। लेकिन पक्कसारणि मार्ग में 'रि, ग, म' स्वरों का दूसरे तार पर वादन अनुमत है। ऐसे ही सारणि मार्ग में तीसरे तार पर 'प, ध, नि' स्वरों का वादन निषिद्ध है, किन्तु पक्कसारणि में अनुमत है (च.द.प्र. १, १३१-१४३)।

आश्चर्य की बात यह है कि वेङ्कटमखी ने मध्य-मेल-वीणा को लेकर भी 'सारणि' और पक्कसारणि मार्ग की चर्चा करते हुए फिर से पहले तार पर पहली सारिकाओं में 'रि, ग, म' स्वरों और दूसरे तार पर पहली सारिकाओं में 'प, ध, नि' स्वरों का वादन करने की बात की है (च.द.प्र. १, १४४-१४८)। जैसा ऊपर दिखाया गया है, यह असम्भव लगता है क्योंकि मध्य-मेल-वीणा के पहले तार की पहली सारिकाओं पर 'ध, नि, स' व दूसरे तार की पहली सारिकाओं पर 'रि, ग, म' बजाये जाते हैं। शायद यहाँ ग्रन्थ का पाठ दूषित है। मगर वेङ्कटमखी के पिछले विवरण को ध्यान में रखते हुए यह बात कही जा सकती है कि शुद्ध-मेल-वीणा व मद्ध्य-मेल-वीणा, दोनों में सारणि मार्ग में तार की पहली कुछ ही सारिकाओं का उपयोग बताया गया है जबकि पक्कसारणि में एक ही तार में अधिक स्वरों के वादन की बात कही गई है।

अब हम इस बात पर विचार करें कि सारणि व पक्कसारणि मार्गों का उद्देश्य क्या था। वेङ्कटमखी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि चतुर्दण्डी रचनाओं की प्रस्तुति में वीणा-वादक, मध्य सप्तक के ७ स्वर, तार सप्तक के ७ स्वर, अतितार षड्ज और मन्द्र सप्तक के 'ध' और 'नि' – इन स्वरों का उपयोग करते हैं (च.द.प्र. १, ११९-१२१)। जबकि चतुर्दण्डी रचनाओं की प्रस्तुति में गायक, मन्द्र सप्तक के ७ स्वर, मध्य सप्तक के ७ स्वर, तार षड्ज और अनुमन्द्र सप्तक के 'ध' और 'नि' – इन स्वरों का उपयोग करते हैं (च.द.प्र. १, १२३-१२६)। वीणा की प्रस्तुति में मन्द्र सप्तक का उपयोग नहीं है, इसलिये पक्कसारणि मार्ग का सुझाव दिया गया है। इस बात का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि पक्कसारणि मार्ग से शुद्ध-मेल-वीणा में अनुमन्द्र सप्तक के 'ध' और 'नि' से लेकर तार 'स' तक और मध्य-मेल-वीणा में मन्द्र सप्तक के 'स' से लेकर तार 'स' तक चतुर्दण्डी रचनाओं की सीमा थी। वीणा में मन्द्र सप्तक के न उपयोग होने का मतलब शुद्ध-मेल-वीणा में पहले व मध्य-मेल-वीणा में पहले व दूसरे तारों का उपयोग न होना प्रतीत होता है। पक्कसारणि मार्ग से वीणा के पहले और दूसरे तारों के सदुपयोग होने की बात कही गई है। दूसरी बात यह है कि गायन-वादन में सप्तकों का प्रयोग समान हो, ऐसी अवधारणा दिखती है।

आधुनिक दक्षिण भारतीय वीणा में तारों की स्वर-संयोजना मध्य-मेल-वीणा से मिलती-जुलती है। इस वीणा में भी पहले व दूसरे तारों का प्रयोग बहुत कम होता है। कभी-कभार 'तानम्' बजाते समय, राग-आलापना के समय, या फिर स्वर-कल्पना के समय, इनका प्रयोग होता है, मगर 'कृऋति', 'वर्णम्' जैसी रचनाओं का वादन करते हुए चौथे तार का प्रयोग कभी नहीं होता, और तीसरे तार का प्रयोग बहुत कम होता है। यदि हम इस वीणा के प्रसङ्ग में पक्कसारणि व सारणि मार्ग की अवधारणाओं पर विचार करें, तो कुछ बातें सामने आती हैं:

१) पक्कसारणि कि शैली में एक ही तार पर कई स्वरों को बजाने से उँगलियों का सारिकाओं पर सरकना आसान हो जाता है। इससे ध्वनि में अविच्छिन्नता लाना सम्भव है।

२) सारणि शैली में पहली कुछ सारिकाओं के वादन का औचित्य दिखाया गया है। पहली कुछ सारिकाओं में (जो 'मेरु' से निकट होती हैं) बाद की सारिकाओं की अपेक्षा नाद में अधिक उज्जवलता दिखती है, यह व्यावहारिक तथ्य है।

३) सारणि शैली में तारों को बदलकर स्वरों को बजाने से बिना हाथ को दूर सरकाए बिना, उँगलियों के कम चलन से द्रुत गति में कई स्वरों का बजाना सम्भव हो जाता है।

४) आधुनिक कर्णाटक सङंगीत के गायक मन्द्र पञ्चम के नीचे के स्वरों का उपयोग कम ही करते हैं। अधिकतर वैणिक गायन शैली का अनुकरण करते हैं। परन्तु यदि पहले-दूसरे तारों का अधिक उपयोग हो, तो वीणा में सप्तकों की सीमा को बढाया जा सकता है। यदि मन्द्र सप्तक में वादन करना प्रचलित हो, तो ऐसा करने की आवश्यकता महसूस हो सकती है। यह तभी हो सकता है जब वीणा-वादन को गायन शैली से निबद्ध न करके उसकी सभी सम्भावनाओं पर प्रयोग किए जाएँ।

**सारांश**

१७वीं सदी में वेङ्कटमखी द्वारा रचित 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' (च.द.प्र. ) में विवरित पक्कसारणि व सारणि मार्गों की अवधारणाओं का उपयोग आधुनिक कर्णाटक वीणा-वादन में भी हो सकता है। इन दोनों मार्गों के अपने-अपने लाभ हैं। यदि सन्दर्भोचित रूप से इनके कायदों का उपयोग हो तो वीणा के 'वाद्य-धर्म' के प्रति न्याय किया जा सकता है।

**आभार-निवेदन**

डा. क. श्रीलता के साथ पक्कसारणि-सारणि के विषय पर चर्चा करते हुए कई बातें लेखिका को स्पष्ट हुई। इसके लिए उन्हें लेखिका की हार्दिक कृतज्ञता समर्पित है।

Add. 399, 17th Main Road, 4th T Block, Jayanagar
Bengaluru 560 041, Mob.: +91 98452 87173

आलेख

# गुलज़ार की मीरा (1979) में पंडित रविशंकर का योगदान और वाद्यों का प्रयोग

सुकन्या सरकार

**परिचय**

एक प्रतिष्ठित ऐतिहासिक हस्ती मीरा बाई के जीवन पर आधारित फ़िल्म मीरा (1979) का निर्देशन कवि और गीतकार गुलज़ार ने किया था। इस फ़िल्म के दो संस्करण हैं, एक तमिल में और दूसरा हिंदी में। मीरा के इस हिंदी संस्करण में संगीत रविशंकर ने रचा और निर्देशित किया है। गुलज़ार के काव्यात्मक स्पर्श (हिंदी संस्करण में) को व्यापक रूप से सराहा गया। संगीतकार रविशंकर ने हिंदुस्तानी शास्त्रीय रागों पर आधारित भजनों के साथ-साथ कुछ पारंपरिक राजस्थानी लोक धुनों का भी प्रयोग किया। भारतीय शास्त्रीय वाद्यों और रावणहत्था तथा कमैचा जैसे राजस्थानी लोक वाद्यों का प्रयोग सराहनीय है।

इस संगीतमय फ़िल्म में एक हिंदू संत मीरा बाई ने अपना पूरा जीवन गिरिधर गोपाल की स्तुति में भक्ति गीतों में समर्पित कर दिया। भक्ति गीतों में वाद्य संगीत का रविशंकर द्वारा प्रयोग अत्यंत उत्तम था। अधिकांश गीतों को वाणी जयराम ने गाया। एक गीत दिनकर कैकिनी (तानसेन के रूप में) की आवाज़ में है।

उत्तर भारत में कृष्ण पंथ की आराधना मीरा बाई ने अपने दर्शन और भक्ति के माध्यम से सर्वोत्तम रूप से व्यक्त की है। वे मध्यकालीन भारत के भक्ति आंदोलन की एक आदर्श थीं।

वे अपने समय से बहुत आगे थीं और एक नारीवादी संत के रूप में वे महिला सशक्तिकरण की एक मिसाल थीं। भक्ति आंदोलन के कई अन्य प्रचारकों के साथ मीरा बाई ने स्थानीय भाषा को आगे बढ़ाया।

फिल्म मीरा में, मुख्य रूप से उनके संपूर्ण जीवन और उनके भक्ति संगीत के माध्यम से भक्ति आंदोलन में उनके योगदान पर ध्यान केंद्रित किया गया था। रेडिफ मूवीज़ के अनुसार, "उनकी काव्यात्मक कथा एक संत के निर्माण से संबंधित है"।

"भारत की सांस्कृतिक विरासत" खंड 4 में मीराबाई और उनके आध्यात्मिक गुरु रविदास (रैदास) का विशेष उल्लेख है।

फिल्म में हम देखते हैं कि रैदास ने उन्हें कृष्ण के भजन गाने के लिए एक एकतारा[1] भेंट किया था। एकतारा एक ऐसा वाद्य है जिसका उपयोग मुख्य रूप से लोक संगीत के लिए किया जाता है। बंगाल में बाउल गीतों के साथ अक्सर एकतारा बजाया जाता है। गुलज़ार ने फ़िल्म को बेहद कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने सिर्फ़ कहानी कहने के बजाय संगीत पर ज़्यादा ध्यान केंद्रित किया।

**मीरा के संगीत का विश्लेषण:-**

पंडित रविशंकर ने भावों को व्यक्त करने के लिए पूर्वी, यमन, खमाज, देश, भैरवी, ललित, मियाँ की तोड़ी और कुछ अन्य रागों के सुंदर वाक्यांशों का प्रयोग किया।

मीरा फ़िल्म के विशिष्ट गीत "मेरे तो गिरिधर गोपाल" में वाणी जयराम ने एक सुंदर प्रस्तुति दी है। पूरे गीत को सितार और संतूर जैसे भारतीय पारंपरिक वाद्यों के साथ अद्भुत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। तबला ठेका में गति की विविधता सराहनीय थी। यहाँ रविशंकर ने राग कलावती पर आधारित इंटरल्यूड संगीत में वाद्य संगत में कुछ वाक्यांशों का प्रयोग किया। मीरा का प्रतिष्ठित भजन "मेरे तो गिरिधर गोपाला" राग खमाज के साथ समाप्त हुआ।

"बाला मैं बैरागन हूँगी" रचना केहरवा ताल में विभिन्न प्रकार के लोक वाद्यों की संगत के साथ रची गई है।

ऑफ-बीट परकशन सपोर्ट सहित वाद्य संगत के माध्यम से इंटरल्यूड संगीत में सूक्ष्म लयबद्ध जटिलताएँ प्रशंसनीय हैं। संतूर और बाँसुरी पर विचारपूर्वक रचित रचनाएँ भी इंटरल्यूड में जोड़ी गई हैं। आठ मात्रों वाले लय चक्र का प्रत्येक पद ताल वाद्यों (नाल, ढोल, झाँझ आदि) की अद्भुत विविधताओं से परिपूर्ण है। इसमें रावणहत्था[2] और कमैचा[3] जैसे राजस्थानी लोक वाद्यों का सुंदर स्पर्श समाहित है। यह गीत लोक और पारंपरिक धुनों का एक समृद्ध मिश्रण है। संतूर और सितार के सौंदर्यपूर्ण स्पर्श ने इस गीत को उत्कृष्ट बना दिया है।

"करुणा शुनो श्याम मोरी" राग पूर्वी पर आधारित है और इसमें सितार और बाँसुरी पर दो छोटे इंटरल्यूड हैं। यह रचना रागों पर रविशंकर की गहरी पकड़ का प्रमाण है।

अगला भजन 'राणाजी मैं तो गोविंद के..', तालवाद्य रहित, राग मिश्र पीलू पर आधारित अदलिब शैली में है।

---

1.एकतारा: एकतारा भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान के पारंपरिक संगीत में प्रयुक्त होने वाला एक एक-तार वाला वाद्य है। एकतारा एक गूँजता हुआ वीणा है जिसमें चमड़े से ढका एक भू- अनुनादक होता है, जिसके माध्यम से एक बाँस की गर्दन डाली जाती है। इसका प्रयोग भारत और नेपाल के कुछ हिस्सों में योगी करते हैं। पश्चिम बंगाल में बाउल भी एकतारा का प्रयोग करते हैं। 2. रावणहत्था भारत और श्रीलंका में प्रयुक्त होने वाला एक प्राचीन धनुषाकार, तारयुक्त वाद्य है। इसे वायलिन का पूर्वज माना जाता है। यह राजस्थान और गुजरात के लोक संगीतकारों के बीच लोकप्रिय है।

श्याम मने चाकर, राग भैरवी पर आधारित, पारंपरिक बोल-बाँट शैली में, केहरवा ताल में बाँसुरी, सितार और वायलिन की सुंदर संगत के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में शहनाई और गज़ वाद्यों के साथ-साथ नाल, ढोलक, तबला और पखावज के साथ घंटियाँ और मंजीरा[4] की संगत सुनाई देती है। उपरोक्त सभी तालवाद्य पारंपरिक भजन प्रस्तुति में बहुत आम हैं।

राग देश पर आधारित रचना, 'मैं सांवरे के रंग रची', केहरवा ताल में निबद्ध है जहाँ रविशंकर ने मुख्य रूप से नाल, तबला और मंजीरा का प्रयोग किया है। तालवाद्य के संपूर्ण प्रयोग ने नृत्य और गायन प्रदर्शन का एक आदर्श मिश्रण प्रस्तुत किया। गीत की शुरुआत राग देश में वायलिन, बांसुरी, सितार और तालवाद्य के साथ एक शानदार प्रस्तावना से हुई, जिसने आनंदमयी भाव को अभिव्यक्त किया। सितार, बांसुरी और वायलिन के साथ पहला अंतराल अंतरा की शुरुआत करता है। रविशंकर ने विभिन्न बारीकियों को बुनने में एक संगीतकार के रूप में अपनी कुशलता का परिचय दिया।

राग ललित के महत्वपूर्ण पदों पर आधारित सुंदर रचना, "जागो बंसी वाले", तानपूरे की संगत से शुरू होती है। इसमें तालवाद्य का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्यारे दर्शन दीजो राग जयजयंती पर आधारित एक रचना है। इसे बिना किसी तालवाद्य के अदलिब शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना को स्वरमंडल[5] और बास बांसुरी के वाद्य की सहायता से प्रस्तुत किया गया है। तालवाद्य में पखावज पर बजायी गई परन और रेला शामिल हैं। इस गीत में रविशंकर ने भारी वर्षा को रेखांकित करने के लिए एक और दो-पंक्ति वाला गीत 'बादल देख डारे' शामिल किया है। इस गीत के बाद बादल देख डारे आता है।

बादल देख डारी की शुरुआत सितार के खरज और लरज तारों में मियाँ-की-मल्हार ओचार, जोड़ (अतालीय भाग) के एक सुंदर अंश से होती है। चूँकि पखावज की ध्वनि गरज के स्वर से बहुत मिलती-जुलती है, इसलिए उन्होंने तालवाद्य के रूप में केवल पखावज का ही प्रयोग किया। पृष्ठभूमि में सितार की ध्वनि को समृद्ध बनाने के लिए उसी स्वर पर अन्य वाद्य बजाए जा रहे हैं। पारंपरिक परन और रेला पखावज पर बजाए जाते हैं।

राग यमन पर आधारित सुंदर रचना "जो तुम तोड़ो पिया" में सितार ने प्रमुख भूमिका निभाई। पूरे गीत में सितार का कई बार वादन हुआ। प्रस्तावना में सितार की संगत कृत्तिन और लयकारी के सामान्य अलंकरण के साथ की गई है। यह रचना तीनताल पर आधारित है और इसमें नाल, ढोलक और तबले के साथ एक अत्यंत मनभावन मंजीरा प्रभाव जोड़ा गया है। दूसरी अष्टया बांसुरी पर तान के साथ शुरू होती है और सितार पर संगीतमय टुकड़ों में विलीन हो जाती है जहाँ एक से अधिक सितार एक जटिल लयबद्ध पैटर्न में एक साथ समाहित होते हैं।

रहस्यवादी दर्शन के संदेश के साथ "कर्ण फकीरी फिर क्या दिलगीरी" के बोल राग दुर्गा और भटियार की गति पर आधारित हैं। रविशंकर ने संगत के रूप में कई लोक वाद्यों का प्रयोग किया है। ताल वाद्यों और एकतारा के समावेश ने एक सुखद वातावरण निर्मित किया। ध्वनिक वाद्यों का अद्भुत प्रभाव सराहनीय है।

इस अनूठी रचना मेरे तो गिरिधर गोपाल को दो बार गाया गया है। दूसरे को पंडित रविशंकर द्वारा आर्केस्ट्रा और संगत के साथ खूबसूरती से प्रस्तुत किया गया था। बड़ी संख्या में भारतीय ध्वनिक वाद्ययंत्रों के साथ आर्केस्ट्रा अभूतपूर्व है। सितार, सरोद, संतूर, धनुष वाद्यों और बांसुरी की ध्वनि आर्केस्ट्रा में मुख्य वाद्य थे। तबला, नाल और घंटी की मजबूत संगत गीत के साथ प्रयोग की गई है। पं. रविशंकर ने तालवाद्य खंड में खोल (बंगाल का एक लोक वाद्य) का भी प्रयोग किया है। इस आर्केस्ट्रा में सभी वाद्यों का एक सुंदर संयोजन प्रदर्शित किया गया है। सितार इस भाग में अन्य सभी वाद्यों के साथ अंतराल का नेतृत्व करता है। इस प्रस्तुति की खासियत सितार पर एक उत्कृष्ट संगीत कृति है जो बांसुरी और संतूर के साथ पूरी तरह से विलीन हो जाती है।

"ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी" एक खूबसूरत गीत है जो मियाँ-की-तोड़ी के सुरों के एकदम सटीक वाइब्राफोन[6] प्रभाव से शुरू होता है और पृष्ठभूमि में सात ताल (रूपक ताल) के साथ एक तार वाद्य की एक स्टैकाटो गति चलती है। इसके बाद संतूर की एक संगीत रचना उभरती है जिसके बाद सारंगी की एक धुन सुनाई देती है। यह सितार की एक धुन के साथ विलीन हो जाती है जिसके बाद मध्य सप्तक में बाँसुरी और वाइब्राफोन की धुन सुनाई देती है। आलाप उच्च सप्तक के सुरों से शुरू होता है और उसके बाद संतूर, बाँसुरी और सितार की धुन सुनाई देती है। उपर्युक्त वाद्य-रचना पूरे प्रस्तावना भाग को पूरा करती है जो काफी लंबा है।

**मीरा में पंडित रविशंकर का योगदान**

मीरा में रविशंकर की उपलब्धि अभूतपूर्व थी। मीरा फिल्म अपने संगीत के लिए पंडित रविशंकर की एक उत्कृष्ट कृति थी। मीरा के बाद उन्होंने कुछ अन्य फिल्मों के लिए संगीत तैयार किया। चूँकि फिल्म मीरा के जीवन और उनके दर्शन पर केंद्रित थी, इसलिए यह स्वाभाविक है कि यह मीरा के संगीत के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसका उन्होंने जीवन भर भगवान कृष्ण के लिए अभ्यास किया। उन्होंने अपना पूरा जीवन भक्ति संगीत गायन में समर्पित कर दिया। मीरा बाई के साथ भक्ति संगीत का एक पूरा पंथ शुरू हुआ। वास्तव में मीरा का असली अस्तित्व उनके संगीत के माध्यम से है। पंडित रविशंकर ने एक संगीतकार के रूप में मीरा के विषय को अद्भुत ढंग से उचित ठहराया।

संपर्क : Flat no-2402 A Wing bldg. No-57, Galaxy Heights, Malad west, Mumbai

3. कमाइचा राजस्थान का एक लोकप्रिय प्राचीन वाद्य है। इसे राजस्थानी लोक संगीत का हृदय और आत्मा कहा जाता है। यह राजस्थान के जीवंत लोक संगीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 4. मंजीरा: मंजीरा एक पारंपरिक वाद्य है, जिसका प्रयोग लोक संगीत परंपरा में प्रमुखता से किया जाता है। इसका इतिहास सदियों पुराना है और इसका इतिहास समृद्ध और विविध है। इसका प्रयोग भारत के पारंपरिक तालवाद्य के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग अक्सर भजनों में किया जाता है। 5. स्वरमंडल या सुरमंडल भारत में उत्पन्न एक झंकृत बॉक्स ज़िथर है। इसका प्रयोग गायन संगत के लिए एक वाद्य के रूप में किया जाता है। इसे राग की संगत के रूप में प्रयोग किया जाता है। 6. वाइब्राफोन, मेटलोफोन परिवार का एक ताल वाद्य है। इसमें सुसंयोजित धातु की छड़ें होती हैं और इसे आमतौर पर छड़ों पर हथौड़ों से प्रहार करके बजाया जाता है।

आलेख

# गुरमत संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का विश्लेषण उपयोगिता और महत्त्व

डॉ. शुप्रीत सिंह

**सारांश**

गुरमत संगीत, जो मूलतः शब्द कीर्तन की गायन परम्परा है, में तन्त्री वाद्यों का प्रयोग आध्यात्मिक संदेश के संचार और वाणी के भाव चित्रण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह शोध पत्र गुरमत संगीत में प्रयुक्त प्रमुख तन्त्री वाद्यों जैसे रबाब, सरंदा, इसराज, ताऊस, दिलरूबा, तंबूरा और सितार के ऐतिहासिक विकास, उनकी संगीत वैज्ञानिक प्रकृति तथा गुरमत संगीत में उनकी उपयोगिता एवं महत्त्व का विस्तृत विश्लेषण करता है। विशेष रूप से, यह अध्ययन इन वाद्यों की ध्वनि की गम्भीरता, राग स्वरूप की शुद्धता बनाए रखने की क्षमता और सूक्ष्म स्वर-संयोजन की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है, जो इन्हें आध्यात्मिक कीर्तन के लिए अद्वितीय रूप से उपयुक्त बनाते हैं। गुरु साहिबानों द्वारा इन वाद्यों के चयन, अनुकूलन और प्रोत्साहन ने इन्हें गुरमत संगीत का एक अभिन्न अंग बना दिया है।

**कुंजी शब्द (Keywords)** गुरमत संगीत, तन्त्री वाद्य, रबाब, सरंदा, इसराज, ताऊस, दिलरूबा, तंबूरा, सितार, संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण, शब्द कीर्तन, राग स्वरूप, गुरु साहिबान।

**परिचय**

गुरमत संगीत सिक्ख धर्म की एक अद्वितीय संगीत परम्परा है, जिसका मूल आधार 'शब्द कीर्तन' है। यह केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि परमात्मा की स्तुति और गुरुबाणी के आध्यात्मिक संदेश को जनमानस तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है। इस परम्परा में वादन संगीत, गायन संगीत के सहायक के रूप में कार्य करता है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य वाणी के आध्यात्मिक भावों को संगीत के माध्यम से संचारित करना है। गुरमत संगीत में विविध प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता रहा है, जिनमें तन्त्री वाद्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन वाद्यों का चयन और विकास एक गहरी संगीत वैज्ञानिक सूझबूझ का परिणाम रहा है, जो गुरु साहिबानों द्वारा स्वयं प्रोत्साहित किया गया।

यह शोध पत्र गुरमत संगीत में प्रयुक्त प्रमुख तन्त्री वाद्यों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, उनकी ध्वनि-उत्पादन की वैज्ञानिक प्रकृति, राग स्वरूप की शुद्धता बनाए रखने की उनकी क्षमता तथा आध्यात्मिक कीर्तन में उनकी विशिष्ट उपयोगिता एवं महत्त्व का विश्लेषण करता है। भारतीय संगीत में प्रचलित तत, वितत्त,घन, सुषिर वर्गीकरणों में से गुरमत संगीत मुख्यतः 'तत' (तन्त्री) वाद्यों पर अधिक बल देता है। हम यहाँ इन तन्त्री वाद्यों के सूक्ष्म पहलुओं को समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे ये वाद्य गुरुबाणी के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए आदर्श सिद्ध हुए हैं।

**गुरमत संगीत में तन्त्री वाद्यों का ऐतिहासिक विकास**

गुरमत संगीत में तन्त्री वाद्यों का इतिहास गुरु साहिबानों के समय से जुड़ा हुआ है, जिन्होंने स्वयं इन वाद्यों का निर्माण एवं प्रचार किया। इनका वर्णन निम्न अनुसार हैः-

**रबाब (RABAB)**

गुरमत संगीत के प्रारम्भिक काल का सबसे महत्त्वपूर्ण वाद्य रबाब है। गुरु नानक देव जी की उदासियों के दौरान उनके परम शिष्य भाई मरदाना रबाब का वादन करते थे। श्री गुरु नानक देव जी ने उदासियों के प्रारम्भ में भाई मरदाना के लिये विशेष प्रकार का रबाब तैयार करवाया जिसे भाई फरंदा ने तैयार किया। "भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार फरंदा राग विद्या में पूर्ण पंडित थे जिन्होंने श्री गुरु नानक देव जी की आज्ञा से भाई मरदाने को राग विद्या सिखाई और रबाब वाद्य सतिगुरु गाँव भैरोंआणा (जहाँ गुरुद्वारा मंजी साहब बना हुआ है) में भेंट किया"।1

"यह रबाब दूसरे रबाबों से कुछ भिन्न था। पुरातन समय में दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व अरब के औल पफाराबी ने एक रबाब का वर्णन किया है जो गज से बजाया जाता था। परन्तु कश्मीर व अफगानिस्तान में बजने वाला रबाब जवा से ही बजता था और यही उत्तरी भारत में प्रचलित रहा"।

गुरु नानक देव जी द्वारा तैयार फिरंदिया रबाब जवा से ही बजाया जाता था लेकिन इसका तूम्बा चपटा न होकर गोल था। भाई मरदाना के कई पुरातन चित्रों में दर्शाई गई रबाब व हिमाचल प्रदेश के मंडी शहर में गुरु गोबिन्द सिंह जी के ऐतिहासिक रबाब की बनावट भी ऐसी ही है और यही रबाब गुरमत संगीत में प्रचार में रहा। भाई फिरंदिया रबाब में छहः तारों की बजाय चार तारों का ही प्रयोग किया जाता था। इस रबाब को बजाने के

लिये वादन मुद्रा भी भिन्न है, जैसा कि मरदाना के कुछ पुरातन चित्रों से पता चलता है।

हरिमंदर साहिब में प्राप्त पुरातन चित्रों में दर्शाया गया रबाब और आधुनिक रबाब, इन दोनों प्रकारों से मरदाना के रबाब का स्वरूप भिन्न है। जिसके तूम्बे का आकार चौड़ा और बड़ा दर्शाया गया है। इसके ऊपर चार तारें दिखाई देती हैं। रबाब बजाते हुए भाई मरदाने की बैठक और वादन विधि भी भिन्न है। जिसमें डाँड वाला भाग बाँयी ओर से ऊपर को उठाया हुआ है और दायीं टाँग और छाती से लगा कर इसकी तारों को छेड़ा जाता है। इस रबाब में परम्परागत तारों का प्रयोग ही किया जाता है। जैसे कि 'जील का तार'।

यह तार रबाब में आरम्भ से ही प्रयुक्त किया जाता था। "हिमाचल के मंडी शहर में गुरु गोबिन्द सिंह जी के इतिहासिक गुरुधाम में एक रबाब के दर्शन करवाये जाते हैं जिसे गुरु गोबिन्द सिंह जी का रबाब भी कहा जाता है। इसके तार तो चाहे टूट चुके हैं पर जील की तार अभी भी लगी हुई है।"4

**सरंदा (Saranda)**

रबाब के बाद गुरमत संगीत में प्रचार में आया दूसरा प्रमुख तन्त्री वाद्य सरंदा है। इसका आविष्कारक श्री गुरु अमरदास जी को माना जाता है, जिन्होंने इसे शब्द कीर्तन में प्रयुक्त कर लोकप्रिय बनाया। गुरु अर्जुन देव जी के काल तक यह वाद्य सिक्ख कीर्तनकारों में प्रिय हो चुका था, और स्वयं गुरु अर्जुन देव जी भी सरंदे के साथ कीर्तन करते थे। भाई काहन सिंह नाभा ने इसे "उत्तम स्वर देने वाला तारदार वाद्य" बताया है, जिसे गज के साथ बजाया जाता है। सरंदे की ध्वनि मधुर और गम्भीर होती है, जो सारंगी की तीखापन लिए ध्वनि से भिन्न है। इसकी विशिष्ट गम्भीरता इसे शब्द कीर्तन में सहायक वाद्य के रूप में अत्यधिक उपयुक्त बनाती है। यह गायन में संगति के लिए आदर्श है, यद्यपि इसका स्वतंत्र वादन बहुत विकसित नहीं हो पाया।

"अठारवीं उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में भाई करम सिंह, भाई लाभ सिंह, भाई संगत सिंह आदि के इलावा इस वाद्य के वादन ब्रह्म ज्ञानी बाबा शाम सिंह थे जिन्होंने सत्तर वर्षों तक इस वाद्य का वादन कीर्तन में किया। उनके द्वारा बजाया गया सरंदा सिक्ख अजायब घर श्री दरबार साहिब अमृतसर में सुरक्षित रखाहै"।

**इसराज (ISRAJ)**

इसराज वाद्य का प्रचार श्री गुरु अर्जुन देव जी के काल में हुआ। यह भी गज द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य है। इसकी ध्वनि सरंदे से बारीक लेकिन सारंगी से भारी होती है। इसराज को गायकी और तन्त्रकारी दोनों शैलियों में बजाया जा सकता है, जिससे गमक, मींड, मुर्की जैसी गायकी की विशेष बारीकियाँ इस पर बखूबी प्रदर्शित की जा सकती हैं। गुरमत संगीत में इसका प्रयोग गायकी के गुणों को समाहित करने की क्षमता के कारण होता रहा है। दायें हाथ से गज के परिचालन और बायें हाथ की अंगुलियों से तारों को दबाने से विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति होती है, जिससे वादन को मधुर और कलात्मक बनाया जाता है।

**ताऊस (Taus)**

ताऊस, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है (अरबी में 'म्यूर' अर्थात मोर), इसराज वाद्य के तबली वाले भाग को मोर की आकृति का बना दिया जाए तो उसे ताऊस कहा जाता है। इसकी बनावट और वादन विधि इसराज की भाँति ही है। श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब जी के दरबार में ताऊस का वादन शब्द कीर्तन में होता था। यह वाद्य अपनी विशिष्ट आकृति और गम्भीर ध्वनि के कारण गुरमत संगीत परम्परा में एक विशेष स्थान रखता है।

**दिलरूबा (Dilruba)**

सिक्ख कीर्तन में दिलरूबा का वादन अठारहवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ हुआ। यह भी इसराज की भाँति है, लेकिन इसकी डाँड इसराज से छोटी और तबली का आकार बड़ा होता है, जिसे खोखली लकड़ी से बनाकर चमड़े से मढ़ा जाता है। इसमें मुख्यतः चार तार लगाए जाते हैं (मन्द्र मध्यम, मन्द्र षडज, मन्द्र पंचम, मन्द्र षडज) और साथ ही पन्द्रह से सत्तरह तरब की तारें भी होती हैं, जिन्हें राग के स्वरों के अनुसार मिलाया जाता है। पुरातन दिलरूबा में पर्दे नहीं होते थे, जबकि आधुनिक में यह व्यवस्था उपलब्ध है। इसकी ध्वनि सारंगी से गम्भीर होती है, लेकिन घनत्व सारंगी से कम होता है। इसकी अनुकूलनशीलता के कारण इसका प्रयोग सारंगी से अधिक किया जाता था।

**तंबूरा (Tambura)**

तंबूरा वाद्य को गायन संगीत का मूल आधार माना जाता है। इसका सम्बन्ध तंबूर ऋषि से जोड़ा जाता है और तानपूरे का आधुनिक रूप ही तंबूरा है। गुरमत संगीत के अन्तर्गत श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के काल में इसका प्रचार दृष्टिगोचर होता है। वे स्वयं भी तंबूरे के साथ शब्द गायन किया करते थे। "तंबूरे का संगीतिक महत्त्व दसम ग्रंथ और सरबलोह ग्रंथ की संगीतिक महानता में स्पष्ट है"। वर्तमान काल में भी कई गुणी उस्ताद सिक्ख कीर्तनकारों द्वारा तंबूरे का प्रयोग निरंतर चला आ रहा है, क्योंकि यह स्वर और राग धुन की स्थापना के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

**सितार (Sitar)**

सितार सिक्ख कीर्तन में प्रयुक्त होने वाला पुरातन वाद्य नहीं है, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी से इसका प्रयोग स्पष्ट रूप में सामने आया और वर्तमान में यह काफी लोकप्रिय है। सितार के आविष्कारक के विषय में मतभेद हैं, लेकिन यह पुरातन वीणाओं से विकसित होकर नवीन स्वरूप को प्राप्त हुआ है। इस वाद्य की ध्वनि में रबाब व सरंदे जैसी गम्भीरता तो नहीं है, लेकिन इसमें शब्द गायन का अनुकरण करने की अद्भुत क्षमता है। कण, मींड, खटका आदि सौंदर्य उत्पादक तत्त्वों को इस पर आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। इसके पर्दे रागों के स्वरूप के अनुसार स्वरों के उचित स्थानों पर निर्धारित किए जा सकते हैं, जिससे यह गुरमत संगीत के अप्रचलित रागों के अनोखे स्वरूपों को समृर्त करने में विशेष तौर पर सार्थक है।

**तन्त्री वाद्यों की संगीत वैज्ञानिक प्रकृति**

गुरमत संगीत में तन्त्री वाद्यों का चुनाव केवल ऐतिहासिक या सांस्कृतिक आधार पर नहीं, बल्कि उनकी विशिष्ट संगीत वैज्ञानिक प्रकृति के कारण किया गया है, जो उन्हें आध्यात्मिक कीर्तन के लिए आदर्श बनाती है। तन्त्री वाद्यों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी ध्वनि की गम्भीरता और नाद का घनत्व है। जैसा कि रबाब, सरंदा और दिलरूबा के मामले में देखा गया, इनकी ध्वनि में एक गहराई होती है जो शांति और आध्यात्मिक चिंतन के भावों को अभिव्यक्त करती है। यह ध्वनि श्रृंगारिक या उत्तेजित भावों को उत्पन्न करने की बजाय, एक शांत और प्रभावशाली वातावरण बनाती है, जो शब्द कीर्तन के गूढ़ संदेश के संचार के लिए आवश्यक है। वाद्यों की यह प्रकृति गुरुबाणी के 'अनाहद नाद' (अनंत ध्वनि) के विचार के साथ भी सामंजस्य स्थापित करती है, जहाँ ध्वनि केवल मनोरंजन का साधन न होकर आध्यात्मिक जागृति का माध्यम बनती है।

तन्त्री वाद्य रागों के शुद्ध और मौलिक स्वरूप को कायम रखने में अद्वितीय क्षमता रखते हैं। गुरमत संगीत में रागों के विभिन्न रूप जैसे कोमल, अतिकोमल, आन्दोलित, चढ़े हुए या उतरे हुए स्वर रूपों की सूक्ष्मता को तन्त्री वाद्यों पर बखूबी प्रदर्शित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, भैरव और गौडी का ऋषभ स्वर, या कान्हड़ा में गन्धार की स्थिति, जो हार्मोनियम जैसे निश्चित स्वरों वाले वाद्यों पर सटीक रूप से प्रस्तुत करना कठिन हो सकता है, तन्त्री वाद्यों पर तार के तनाव और उंगली के दबाव के माध्यम से अधिक सटीकता से व्यक्त किया जा सकता है। ये वाद्य, जिनकी स्वर उत्पत्ति स्थान वर्तमान फिक्स हार्मोनियम स्केल की तरह नहीं होते, बल्कि स्वर की सूक्ष्म भिन्नताओं को भी पकड़ने की अनुमति देते हैं, राग की शुद्ध प्रकृति को भंग होने से बचाते हैं। यह क्षमता ही गुरमत संगीत में वाणी के भावों का सही संचार सुनिश्चित करती है।

शब्द कीर्तन में प्रयुक्त होने वाले आलाप, मींड, कण, खटका जैसे सौंदर्य उत्पादक तत्त्वों का हुबहु अनुकरण तन्त्री वाद्यों पर ही संभव है। मींड, कण, और खटका जैसे अलंकारों के माध्यम से रागों के भावनात्मक रंग को गहरा किया जाता है। तन्त्री वाद्यों की अनुकरणात्मक क्षमता और उनकी वादन विधि इन अलंकारों को जीवंत करती है, जिससे गुरुबाणी के भाव सीधे श्रोताओं के हृदय तक पहुँचते हैं। यह वाद्यों की उपयोगात्मक महत्ता को और अधिक सदृढ़ करता है।

**गुरमत संगीत में तन्त्री वाद्यों की उपयोगिता व महत्त्व**

गुरमत संगीत में तन्त्री वाद्यों की उपयोगिता और महत्त्व बहुआयामी है, जो ऐतिहासिक, आध्यात्मिक और संगीत वैज्ञानिक पहलुओं को समाहित करता है। इन वाद्यों का मूल उद्देश्य शब्द कीर्तन का अनुकरण करना और उसके माध्यम से वाणी के आध्यात्मिक संदेश को प्रभावी ढंग से संचारित करना है। गुरु साहिबानों ने इन वाद्यों को केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना के एक उपकरण के रूप में देखा और प्रचारित किया। रबाब की गम्भीर ध्वनि से लेकर सरंदे और इसराज की भावपूर्ण प्रस्तुति तक, प्रत्येक वाद्य गुरुबाणी के गहन अर्थों को अभिव्यक्त करने में सहायक होता है।

गुरमत संगीत में विविध रागों और उनके जटिल रूपों का प्रयोग किया गया है (जैसे गौडी गुयारेरी, दक्षणी, चेती, बैरागणि, पूर्वी दीपकी, माझ, मालवा, आसा, काफी, आसावरी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौड़, रामकली दखनी, मारू, मारू काफी, मारू दक्खनी, बसंत हिडोंल, कल्याण, गउड़ी पूर्वी दीपकी, गउड़ी पूर्वी,गउड़ी दीपकी,गउड़ी माझ,गउड़ी मालवा,गउड़ी माला आदि। इन रागों की प्रकृति और स्वरों की विचित्रता को वाणी के अनुरूप अंकित करने के लिए तन्त्री वाद्य ही सबसे उपयुक्त सिद्ध होते हैं। ये वाद्य रागों के सूक्ष्म पहलुओं को स्पष्टता से प्रस्तुत कर पाते हैं, जिससे वाणी के भाव चित्रण में सहायता मिलती है और राग परम्परा का संरक्षण होता है।

**निष्कर्ष**

तन्त्री वाद्य गुरमत संगीत के विकास का एक अभिन्न अंग रहे हैं। इनकी ध्वनि की गम्भीरता और नाद का घनत्व गायन के लिए उपयुक्त और सधा हुआ होता है। चाहे जवा से बजे या गज से, इनकी प्रकृति शब्द कीर्तन के लिए आदर्श है। हारमोनियम के आने के बावजूद, तंबूरा जैसे वाद्य की उपयोगिता गुरमत संगीत में आज भी बरकरार है, क्योंकि यह स्वर के 'आधार' को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण है, जो राग के शुद्ध स्वरूप के लिए अनिवार्य है।

गुरमत संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इनका चयन और विकास अत्यंत सोच-समझकर किया गया था। ये वाद्य केवल ध्वनि उत्पन्न करने के उपकरण मात्र नहीं हैं, बल्कि गुरुबाणी के आध्यात्मिक और भावनात्मक सार को व्यक्त करने के शक्तिशाली माध्यम हैं। रबाब, सरंदा, इसराज, ताऊस, दिलरूबा, तंबूरा और सितार जैसे वाद्यों ने अपनी विशिष्ट ध्वनि प्रकृति, राग स्वरूप की शुद्धता बनाए रखने की क्षमता और अलंकारों के सटीक अनुकरण के कारण गुरमत संगीत में एक केंद्रीय भूमिका निभाई है।

गुरु साहिबानों ने इन वाद्यों को न केवल लोकप्रिय बनाया, बल्कि उन्हें गुरमत संगीत की आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधित और विकसित भी किया। उनकी गम्भीर और शुद्ध नाद वाली ध्वनि ने शब्द कीर्तन के आध्यात्मिक भावों को गहरा किया और सूक्ष्म राग-अभिव्यक्ति को संभव बनाया। ये वाद्य, जो कभी किसी विशिष्ट सामाजिक श्रेणी तक सीमित नहीं थे, गुरु साहिबानों के प्रयासों से जनसाधारण तक पहुँचे और गुरमत संगीत परम्परा का एक अटूट हिस्सा बन गए।

आज भी, जब आधुनिक संगीत वाद्यों का प्रभाव बढ़ रहा है, तन्त्री वाद्यों का महत्त्व गुरमत संगीत में अद्वितीय बना हुआ है। वे गुरबानी के प्राचीन रागों को जीवंत रखने और कीर्तन के आध्यात्मिक सौंदर्य को अक्षुण्ण बनाए रखने में सहायक हैं। आज बड़ू साहिब (हिमाचल प्रदेश), गुरमत संगीत विभाग(पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला),जवाद्दी टकसाल लुधियाना, आदि जैसी संस्थाएं गुरमत संगीत के तंत्री वाद्यों के प्रचार प्रसार में अपना पूर्ण योगदान दे रहीं हैं। भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि इन तन्त्री वाद्यों के अध्ययन, संरक्षण और संवर्द्धन पर और अधिक ध्यान दिया जाए, ताकि गुरमत संगीत की यह समृद्ध परम्परा अपनी मौलिकता और आध्यात्मिक गहराई के साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रहे।

लेखक : सहायक प्रोफेसर,
विजुअल एंड परफोर्मिंग आर्ट्स विभाग
गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी,अमृतसर- 143005
मो: 9569101030

समवेत

## जवाहर कला केन्द्र, जयपुर में चल रहे कला महोत्सव में ध्रुवपद गायकी और चित्रकारी का अनूठा संगम

दिनांक 3 नवम्बर को शिल्पग्राम में एक नवम्बर से चल रहे पांच दिवसीय कला महोत्सव के तीसरे दिवस में आज सायं एक घंटे तक ध्रुवपद गायकी और चित्रकारी का अनूठा संगम देखने को मिला। जिसमें वरिष्ठ एवं राजस्थान की प्रथम ध्रुवपद गायिका विदुषी प्रोफेसर (डॉ) मधु भट्ट तैलंग ने अपना शास्त्रीय ध्रुवपद - गायन प्रस्तुत किया। इस गायकी के अदृश्य एवं निराकार विभिन्न भावों एवं संवेगों को गायकी द्वारा साकार किया गया, वहीं जुगलबन्दी के रूप में प्रसिद्ध चितेरे श्री तीर्थंकर बिस्वास ने अपने कैनवास पर उसे सजीव ( लाइव ) रूप में बख़ूबी चित्रित कर दर्शकों एवं श्रोताओं के समक्ष गायकी की गहन अनुभूति के विभिन्न स्वरों को विभिन्न आकृतियों और रंग संयोजन एवं शेड्स द्वारा साकार किया।

इस अवसर पर डॉ०मधु ने अपनी प्रस्तुति में अपने कॉन्सेप्ट 'कन्टेपरेरी ध्रुवपद आर्ट क्रियेशन ' के अन्तर्गत पारम्परिक और समसामयिक संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए सुकोमल भावों की राग मुलतानी के बहुरंगी स्वरूपों का प्रदर्शन किया। वैदिक देवस्तुति से प्रारम्भ करते हुए जिसमें आलाप के विविध विलम्बित सेअति द्रुत लय तक के चरणों में मानव के शान्त, माधुर्य, ललित, चंचल, वीर, उत्साह, मानव -जीवन के विभिन्न उतार -चढ़ावों आदि का अहसास कराया। इसके बाद यौवना नायिका रूप राधा के रूप- सौन्दर्य चित्रण एवं उसकी चाल को14 मात्रा की श्रृंगारपूर्ण ताल में निबद्ध धमार गायकी की एक रचना 'जोबन मद माती ' जो उनके गुरू पद्मश्री पं० लक्ष्मण भट्ट तैलंग द्वारा रचित है, प्रस्तुत किया। तत्पश्चात कार्यकम के अन्त तक स्वरचित कई रचनाओं को क्रमवार पेश किया,जिसमें क्रमशः इसी राग की 10 मात्रा की सूलताल में शिव के जोगी रूप 'जोगी महादेव 'को लयकारी की विभिन्न इकाइयों में प्रदर्शित किया। गुरुनानक के इस समय चल रहे प्रकाश पर्व के मद्देनज़र उनको समर्पित गुरू तेग बहादुर रचित एक पद ' साधो मन का मान त्यागो ' जो राजस्थानी मांड राग एवं अप्रचलित 15 मात्रा की ताला गजझंपा में प्रस्तुत कर श्रोताओं को जीवन के सार तक पहुंचाया। चित्रकला में विभिन्न रागों की रागमाला पेंटिंग बनी हैं। जयपुर राज्य में उन्हें संरक्षित भी किया गया है। आज 3 नवम्बर को जयपुर के संस्थापक महाराजा जयसिंह की 336 वीं जयन्ती पर उनकी आराध्या आमेर की शिलादेवी को समर्पित एक भैरवी रागमाला जिसमें देवी के नाम पर आधारित 14 रागों के नाम की शास्त्रीय रागों की मधु द्वारा परिकल्पित एक रागमाला की लड़ी के रूप में क्रमवार भैरवी, दुर्गा, नारायणी, सरस्वती, श्री,, बागेश्वरी, परमेश्वरी, रागेश्वरी, जयजयवंती, शंकरा, चक्रधर,हंसध्वनि, कलावती रागों के विभिन्न शुद्ध कोमल तीव्र स्वरों के लगातार बदलते हुए अद्भुत संयोजन को विभिन्न भाव - संवेगों के इन्द्रधनुषीय रंगों के शेड्स के साथ प्रस्तुत किया।गौरतलब है कि ध्रुवपद में प्रयुक्त नहीं की गई राजस्थानी माँड राग, गुरुनानक की रचनाओं एवं रागमाला को ध्रुवपद शैली में गाना प्रो. मधु की अपनी परिकल्पना है।

साक्षात्कार

**विख्यात संतूर वादक अभय रुस्तम सोपोरी से**
**प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास की हुई बातचीत....**

# ''मैं शास्त्र को कभी नहीं छोड़ता''

**पूर्व पीठिका:-** संतूर उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपेक्षाकृत एक नवीन नाम है। यह वाद्य लगभग साठ के दशक में संगीताकाश में प्रगट हुआ और तबसे अबतक लगभग 60 वर्षों में इसने लोकप्रियता के नए मापदण्ड स्थापित किए हैं। संतूर, जिसका प्राचीन नाम शततंत्री वीणा है और जिसका पारम्परिक प्रचलन कश्मीर की शैव परम्परा से रहा है उसे शास्त्रीय संगीत की धारा से जोड़ने में कश्मीर के सोपोरी परिवार ने अपना अमूल्य योगदान दिया है। इस परम्परा के ख्यातिलब्ध कलाकार पंडित भजन सोपोरी ने अपने संतूर में अनेकानेक बदलाव किए जिससे इस वाद्य को एक पूर्णता मिली। पंडित जी के पुत्र और उनके सुयोग्य शिष्य श्री अभय सोपोरी अपने पिता की इसी परम्परा को आगे ले जा रहे हैं। यहाँ प्रस्तुत है इस युवा कलाकार से सुनीरा कासलीवाल व्यास की हुई बातचीत के कुछ अंश:-

**सुनीरा – नमस्कार अभय जी आज हम आपके वाद्य, आपकी परम्परा और आप के बारे में बातें करने के लिए एक साथ जुड़े हैं। आपका बहुत-बहुत स्वागत है इस साक्षात्कार में।**

**अभय सोपोरी -** जी बहुत धन्यवाद।

**सुनीरा- अभय जी, सोपोरी जी अपनी परम्परा को एक विशेष नाम से सम्बोधित करते हैं। मैं जानना चाहूँगी कि आपकी परम्परा क्या है?और इसकी विशेषता क्या है?**

**अभय सोपोरी-** काश्मीर का जो ट्रैडिशनल म्यूजिक है, सूफियाना संगीत उसमें हमारा भी एक घराना था। पर हमारे घर की यह बात विशेष है कि मेरे पिताजी के परदादा ने काश्मीर में भारतीय शास्त्रीय संगीत को पुन: प्रचलित किया, जो कि काश्मीर में पिछले कई वर्षों के डिस्टर्बेंस के कारण छिन्न – भिन्न हो गया था। यह बात उन्नीसवीं शताब्दी की है जब मेरे पूर्वजों ने इसे पुनर्जीवित किया। पं शंकर पंडित उनका नाम था। उनके समय से काश्मीर में शास्त्रीय संगीत का नया दौर शुरू हो गया और हमारे घर में भी शास्त्रीय संगीत शुरू हो गया।

**सुनीरा- उसके पूर्व आपके यहाँ संगीत की कौनसी परागम्परा प्रचलित थी?**

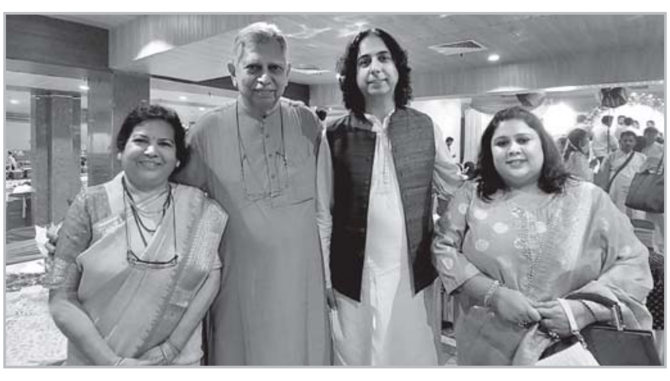

**अभय सोपोरी-** इसके पूर्व हमारे घर में शैव सूफी परम्परा ही प्रचलित थी। सूफियाना संगीत जिसे कहते हैं। हमारे परिवार में हमारे जो पूर्वज रहे हैं वो बेसिकली सभी 'सेन्ट्स'रहे हैं। उनके संगीत में इतनी ताकत थी, ईश्वर कृपा से कि संगीत से वो लोगों की बीमारियों का इलाज भी करते थे। सभी बहुत स्पीरीच्युअल थे। ये सभी यानि पं. शंकर पंडित उनके बेटे पं. संसार चन्द्र सोपोरी काश्मीरी सहतार पर ही अपनी प्रस्तुति देते थे। सूफियाना मौसिकी गायन करते थे। मेरे दादा जी पं. शंभुनाथ सोपोरी जब बहुत छोटे थे तो एक फकीर ने उन्हें शास्त्रीय सितार भेंट स्वरूप दिया और वहीं से हमारे घर में क्लासिकल इन्स्ट्रूमेन्टल म्यूजिक की शुरूआत हुई।

**सुनीरा - आपके यहाँ संतूर कब से था?**

**अभय सोपोरी -** संतूर तो शुरू से ही था। जब मेरे पापा आए तो उन्होंने कश्मीरी सितार भी सीखा, क्लासिकल सितार भी सीखा और संतूर तो खैर था ही। वो दौर ऐसा था कि भारत का पार्टीशन हो गया था। पाकिस्तान ने कश्मीर पर अटेक किया था... तो हमारी फैमिली भी डिस्प्लेस हो गयी थी सोपोर से फिर श्री नगर से भी शिफ्ट कर गई थी क्योंकि वहाँ पर भी बहुत हंगामा हो गया था।

**सुनीरा - आपका जो नेटिव प्लेस है सोपोर, वो क्या पी.ओ.के में है?**

**अभय सोपोरी** – नहीं, वो है तो इन्डिया में ही, परन्तु काबायली रेड में वहाँ से हमारी फैमिली को भागना पड़ा 1948 में। जैसे बाद में 1990 में श्री नगर से भी भागना पड़ा।

मेरे पिता जी का 1948 में जन्म हुआ और वो बचपन से ही संतूर बजाते थे। 1953 से तो उन्होंने संतूर पर बाकायदा छोटी-छोटी प्रस्तुतियाँ देनी शुरू की। पापा जब 11 साल के थे तब उनका एक बड़ा कार्यक्रम हुआ प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद में। वहाँ पर बहुत बड़े-बड़े कलाकार आए थे। और उन्होंने

पिताजी की तारीफ तो की, किन्तु साथ में ये भी कहा कि आपके साज़ में शास्त्र नहीं झलक रहा। तो यह बात पापा को सोचने के लिए मजबूर कर गई कि जब मैं इस साज़ पर शास्त्रीय संगीत बजा रहा हूँ तो इसमें शास्त्र क्यूँ नहीं झलक रहा?? 1959 के बाद का लगभग दस वर्ष का समय पापा इससाज़ पर रिसर्च करते रहे और उस समय वो शैली डेवेलप हुई जो हम आज बजा रहे हैं। उसमें मींड आया, उसमें गमक आया, उसमें ग्लाईड वर्क आया, कलमों का काम आया। तो यह सब टैक्निक इसी दस सालों में डेवेलप हुई। और इस तरह एक नई शैली का विकास हुआ। जिसे सूफियाना बाज तो कहा जाता था। उसमें अब मैंने इस के आगे अपने नेटिव प्लेस का नाम जोड़कर इसे 'सूफियाना घराना ऑफ सोपोर' यह नाम दिया है। और हमारी शैली को नाम दिया है 'सोपोरी बाज'

**सुनीरा-आपका यह सूफियाना घराना है और सोपोरी बाज है वह सन्तूर की अन्य शैलियों से कैसे फर्क है?**

**अभय सोपोरी** –हमारी संतूर की परम्परा थी उसमें प्राइमेरिली जो कंटेन्ट बजता था वो था शैवाइट पोयट्री। यानि संस्कृत, पर्शियन, अरैबिक, उर्दू, काश्मीरी और हिन्दी कम्पोज़िशन है। तो हमारे कम्पोज़िशन्स में बहुत वैराईटी है। उसके बाद जब हमारे घर में क्लासिकल संगीत शुरू हुआ तो हमारे घर में जो कम्पोजीशन गाए जाते थे तो उनके बोल सितार पर आने लगे। फिर 1959 से पापा ने जो संतूर शैली बनाने के लिए काम करना शुरू किया उसमें मुख्य काम यही है कि इसमें गायकी और तंत्रकारी का एक बहुत ही खूबसूरत ब्लैंड दिखाई देता है। यादि गाने की जितनी भी बारीकियाँ हैं उनका अंग संतूर में दिखता है। और सितार के बोलों का अंग जो पापा ने इस शैली में इन्ट्रोड्यूज़ किया तो आज हम जो गतें बजाते हैं तो उसमें वोही सितार के बोल दारा दिर दिर दा रदा दर दा बजाते हैं। वो ही दिखाई देतें हैं यानि तंत्र की चीजें दिखाई देती हैं। अब जैसे चिकारी है, तरबें है इनका बहुत महत्वपूर्व रोल है हमारे वाद्य की साउण्ड में। जब मींड का काम हम करते हैं तो तरबें रैसोंनेट करती हैं। साउण्ड में एक भरावट है, वो आती है । जब हम बजाते हैं तो 'जरब' का काम है, जमजमा का काम है, खटका है, मुरकी है तो सारी चीजें आज संतूर में बजती हैं।

आज संतूर एक ऐसे लेवल पर है कि साउण्ड का सस्टेनेंन्स इसमें बहुत बढ़ गया है। एक नोट को यदि में बढ़ाना चाहूँ तो उसे बीस या पच्चीस सैकिन्ड तक सस्टेन कर सकता हूँ। टैक्निक है इसकी। इसके अलावा गमक का काम है, तानों की बढ़त कैसे होगी। फिर छन्द का जो इतना सारा काम पापा ने इस शैली में डाला हुआ है। फिर गायकी है तो उसमें ख्याल का अंग भी है तो ध्रुपद का अंग भी है। तो आज मैं कह सकता हूँ कि शास्त्रीय संगीत की ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे हम संतूर पर 'रीक्रिएट' नहीं कर सकते।

**सुनीरा – हाँ मैंने जो सुना है उसमें छंद का काम आपका बहुत अच्छा है। छंद में आप क्या-क्या करते है?ऑफ बीट बजाते है, लयकारी करते है या कम्पोजीशन के बोलों को लेकर बढ़त करते है??किस को प्रेफरेंस देते है?**

**अभय सोपोरी** – सभी चीजें करते हैं। ऑफ बीट करते हैं, अलग-अलग जातियाँ जैसे तिस्त्र जाति, चतुस्त्र जाति के छंद लेते हैं। पापा ने बहुत से छन्द इन्ट्रोड्यूज़ किए हैं। जब हम लयकारी करते हैं तो एक ही नहीं करते उसमें अलग-अलग डिविजन्स होते हैं। उनको मिलाकर प्रस्तुति होती है।

**सुनीरा – अभय जी आप अपने साज़ की ट्यूनिंग कैसे करते हैं?क्योंकि मैंने जितने भी संतूर वादकों का इन्टरव्यू किया है उन सभी के ट्यूनिंग सिस्टम अलग-अलग हैं?आपका साज़ बहुत कॉम्प्लेक्स है। आप के पास तरबें हैं, चिकारी है, फिर आप मंद्र सप्तक में मींड का काम भी करते हैं। तो उसे किस तरह मिलाते हैं?**

**अभय सोपोरी** – देखिए संतूर मुख्य रूप से तीन तरह से मिलाया जाता है - पहला है राग पर आधारित जो मेन प्लेपिंग साईड है वो लैफ्ट हैंड साईड है। यदि भूपाली बजाएंगे तो भूपाली में ट्यून करेंगे परन्तु उसमें शुद्ध मध्यम भी रहेगा। जिसे हम बचाते हुए बजाएंगे। दूसरा है कि हम भैरवी के हिसाब से टयूनिंग करेंगे। उसमें ऐसा है कि हमें सारे स्वर मिलते हैं। मैं कोई भी स्वर बजा सकता हूँ यह ट्यूनिंग फ्यूजन करने के लिए उपयुक्त है इसमे स और प अचल रहते है। तीसरा फॉरमेट है पियानों टाईप का।

**सुनीरा – इसे क्रोमेटिक टयूनिंग कहते है न।**

**अभय सोपोरी** - जी जी। इसमें राईट साईड में यदि सी है तो लेफ्ट में डी नोट मिलेगा। यह ट्यूनिगं राग के वादन के लिए उपयुक्त नहीं है।

**सुनीरा – यह टयूनिंग किसने फिक्स की?**

**अभय सोपोरी** – यह पापा ने ही फिक्स की। हमारा संतूर डी शॉर्प में यानि दूसरी काली पर मिलता है और इसके हिसाब से ही सारी तारों की मोटाई और ट्यूनिंग पापा ने फिक्स की है।

**सुनीरा - संतूर की बनावट में भजन जी ने बहुत मॉडीफिकेशन्स किए हैं**

**अभय सोपोरी** - हॉ संतूर में पापा का इतना काम है। ट्रैडीशनल संतूर छोटा होता है, हल्का होता है उसमें हैण्डिल नहीं होता है, तुम्बा नहीं होता है। अब तुम्बें की बात करें तो तुम्बें में ही कितने एक्सपैरिमेन्ट्स किए गए। पहले पेपर माशी का तुम्बा लगाया था। वो एक प्रोग्राम में बहुत पसीना आया तो वो एक तरफ से टेढ़ा हो गया। धीरे-धीरे कई तुम्बों का प्रयोग करने के बाद अंत में सितार के तुम्बे को आधा कटवाकर इस्तेमाल करना शुरू किया क्योंकि ये हमारे पैर पर रहता है और तुम्बे पर संतूर का काफी वज़न होता है।

**सुनीरा – आप लोगों की बैठक भी अलग है।**

**अभय सोपोरी** - जी। यह बैठक भी पापा ने ही इन्ट्रोड्यूज किया है। यह आसन कोई साधारण आसन नहीं है। तो पापा ने इसे नाम दिया श्री आसन।

क्योंकि संतूर अपने आप में श्री यंत्र जैसा है और जब हम बजाते हैं तो हमारे शरीर के दो ट्राईन्गल बनते हैं एक हमारे पैरों का और दूसरा पैरों से उपर हमारे धड़ का। तो इस तरह इन दोनों त्रिकोणों को पापा ने शिव और शक्ति का योग बताया और आसन का नाम दिया श्री आसन।

**सुनीरा - आपके साज़ में तुम्बे का क्या रोल है?**

**अभय सोपोरी -** मुख्यत : यह हमारे मंद्र सप्तक के स्वरों को अधिक गूंज देता है और दूसरा यह हमारे संतूर को हमारे बैठने की स्थिति में सपोर्ट करता है।

**सुनीरा – आपके संतूर में कितने तार हैं और कितने ब्रिज हैं?**

**अभय सोपोरी –** ब्रिज 43 हैं और तार 120 है। तरब के तारों को मिलाकर इसमें मींड के काम का 2½ सप्तक और प्लेयिंग स्ट्रिंग्स 3 सप्तक। इस तरह कुल साढ़े पाँच साप्तक का साज़ है।

**सुनीरा – आपके संतूर में तार सप्तक के स्वरों की साडण्ड बहुत गोल और गूंज युक्त है उसका क्या कारण है?**

**अभय सोपोरी –** तार सप्तक के नोट्स के लिए ब्रिजिस की विशेष व्यवस्था की गई है। इसके लिए कई तरह की वुड्स पर बहुत से एक्सपौटिमेन्ट किए गए।

**सुनीरा – जो ट्रेडीशनल संतूर हैं उसमें कितने ब्रिज होते हैं?**

**अभय सोपोरी –** ट्रेडिशनली संतूर, साज़े कश्मीर और सहतार सभी 1½सप्तक के साज़ हैं। ट्रेडीशनल संतूर में 25 ब्रिज होते हैं लगभग 1930 में इसी ट्रेडीशनल संतूर में मेरे दादा जी ने तीन ब्रिज मंद्र सप्तक के स्वरों को जोड़ कर 28 ब्रिज का संतूर बनाया था ताकि इस पर हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत प्रस्तुत किया जा सके।

**सुनीरा – अभय जी आपको कब इस जिम्मेदारी का एहसास हुआ और आपने संतूर को सीरियसली लेनाशुरू किया?**

**अभय सोपोरी -** संतूर की साउण्ड के साथ तो मेरा जन्म ही हुआ है। मेरे घर में संगीत की परम्परा थी और मैं उसी के साथ बड़ा हुआ। संगीत तो सीखना ही था परन्तु हमारे यहाँ एक यह भी बड़ी खास बात है कि सभी एकेडेमिकली भी बहुत आगे रहे हैं। मेरे पापा तीन सब्जेक्ट में मास्टर्स थे इन्लिश, सितार और संतूर में और बाद में जब अमेरिका गए तो वहाँ उन्होंने वेस्टर्न कम्पोजिशन में डिग्री हासिल की।

**सुनीरा – वाह – वाह क्या बात है।**

**अभय सोपोरी –** जब मैं सेकिण्ड ईयर में था तो मैंने पापा से कहा कि मैं फुल टाईम म्यूजिक कैरियर लूँ, तो पापा ने कहा कि पहले ग्रैजुएशन खत्म कर लो। फिर बात करेंगे।

**सुनीरा – यह कब की बात है।**

**अभय सोपोरी -** यह 1999 की बात है- मेरा मेनेजमेंट सबजैक्ट था। मैं दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा था। तो फिर जब मेरा ग्रैजुएशन हो गया तो मैंने फिर से पापा से बात की। क्योंकि उसके बाद यदि मैं एम.बी.ए. में चला जाता तो मेरे दो साल चले जाने थे। और यदि लौट के मुझे म्युज़िक ही करना था तो एम.बी.ए करने का कोई सेन्स नहीं था। तो इस तरह मैंने पापा को कन्विन्स किया और फिर पापा ने इज़ाजत दे दी। और मैं फुल टाईम म्युजिक में आ गया।

**सुनीरा – तो इसके पहले भी आप बजाते थे?**

**अभय सोपोरी –** मेरी सबसे पहली तालीन गायन से हुई। मैं उस समय तीन साल का था दादाजी ने मुझे गाना सिखाया। और सितार भी सिखाया। और फिर मैं उन सभी कम्पोजीशन्स को संतूर पर बजाता था।

जब हम 1990 में दिल्ली आए तो मैं सितार ही बजाता था। 1995 से मैं पूरी तरह संतूर बजाने लगा और ग्रेजुएशन करने के बाद तो मैं पूरी तरह संगीत ही करने लगा।

**सुनीरा – आपने अपने संतूर में कुछ बदलाव किए है?**

**अभय सोपोरी -** ऐसे तो पापा ने संतूर में इतना काम किया है कि कुछ भी छोड़ा नहीं है परन्तु मैंने संतूर के लोअर ऑक्टेव में जवारी ब्रिजिस इन्ट्रोड्यूज़ किए हैं जिनके कारण मेरे मींड के काम में पापा के मींड के काम से बहुत चेंज आया है। इसके अलावा हाथ के बैलेंस से मैंने कुछ नई तकनीक ईज़ाद की हैं कि जिनके कारण स्ट्राईक करने के बाद साउण्ड का सस्टेनेन्स बहुत बढ़ जाता है।

**सुनीरा – जी यह बहुत ही अच्छी टैक्निक है क्योंकि मैंने देखा है कि इस के बाद ऑडिएन्स से आपको बहुत क्लैपिंग मिलती है।**

**अभय सोपोरी** – जी-जी। ईश्वर की कृपा है और बुजुर्गों का आशीर्वाद है।

**सुनीरा - आपने संतूर में और क्या बदलाव किए?**

**अभय सोपोरी -** संतूर ट्रैडीशनलीभैरव काष्ठ का बनता है जिसे शहतूत की लकड़ी कहते हैं। किन्तु शास्त्रीय संतूर की साउण्ड के लिए हमने न जाने कितने वुड्स के साथ, मेटल के साथ एक्सपेरिमेंट किए। इसी तरह ब्रिजिस के लिए कई लकड़ी और यहाँ तक सिंथेटिक मैटिरियल भी यूज किया। हड्डी भी कौन सी लें। फिर कलमों में भी बहुत एक्सपेरिमेंट किए गए। कितना मोटा होना चाहिए, कितना पतला होना चाहिए। तो संतूर की जैसी साउण्ड आप अभी सुन रहे हैं वो कोई दो तीन वर्षों में नहीं बन गई है। उसके पीछे पापा का पूरा जीवन है जिसके आधार पर मैं आज कुछ काम कर रहा हूँ।

**सुनीरा - आप के तार सप्तक की साउण्ड को बनाने के लिए आपने क्या किया है?**

**अभय सोपोरी -** हमने ब्रिजिस के डिस्टैन्स में अंतर किया है और स्ट्रिन्ग्स हमने मोटे वाले ही रखे है। बहुत ही साईन्टिफिक तरीके से तार सप्तक के उपर काम हुआ है ताकि तार सप्तक के स्वरों में थ्रिलनैस न आए और एक खनक कायम रहे।

**सुनीरा – तारें कौनसी लेते है।**

**अभय सोपोरी** – तारें हम स्टील की लेते हैं। एक से लेकर 6 गेज तक की। लोअर ऑक्टेव में जहाँ मींड का काम रहता है वहाँ हम गिटार की तारें लेते हैं जो कॉइल्ड हैं।

**सुनीरा- आप जो इतने चेंजेस करते है तो आप किस वाद्य निर्माता से ये सब काम करवाते हैं?**

**अभय सोपोरी -** हम बनारस के एक वाद्य निर्माता हैं उनसे यह करवाते हैं। उनका नाम है देवी जी। बड़े हैं। हमने हमारे संतूर में आगे की तरफ पापा का एक फोटो लगवाया हुआ है, उसके बाद सोपोरी बाज और फिर देवी संतूर ऐसा लिखा रहता है। तो वो सोपोरी बाज का एक लोगो मैंने क्रिएट किया है। हमने कलमों पर भी बहुत एक्सपेरिमेंट किए हैं। और अब हम बजाने के लिए छोटे कलम और आलाप के लिए बड़े कलम का इस्तेमाल करते हैं। बड़ा कलम ज्यादा हैवी है और यह पापा की ईजाद है। बड़ी कलम से वाल्यूम बहुत बढ़ जाता है और साउण्ड में वेट भी आता है। बड़ी कलम केवल हमारे ही घराने में इस्तेमाल किया जाता है।

**सुनीरा – अभय जी अभी हाल ही में आप कई ऐसी राग भी संतूर पर बजाने लगे हैं जो पहले कोई नहीं बजाता था। तो बजाते समय आपका मुख्य सोच क्या रहता है?**

**अभय सोपोरी** – जी। बजाते समय मैं कभी शास्त्र को नहीं छोड़ता और परम्परा के साथ छेड़खानी नहीं करता। ऑडिएन्स को देखकर अपने कॅन्टेट में चेंज करता हूँ परन्तु फॉरमेट मेरा हमेशा वही रहता है।

**सुनीरा - आप के पिताजी का एक और डाईमेन्शन था उन्होंने विभिन्न भाषाओं में हजारों गीतों की कम्पोजीशन की है। आप का भी इस तरफ कुछ रूझान है?**

**अभय सोपोरी** – हाँ मेरा भी इन्टरेस्ट है इस तरह वृन्दगान, औरकेस्ट्रेशन आदि में मैंने कुछ नई रागें भी बनाई हैं - 5 हैं। बस बन गई हैं – पहली 2009 में निर्मल कौंस फिर, राग महाकाली, राग शारदा, 2019 में और राग भजनीश्वरी और राग भगवति ये बाद की दो रागें 2024 में बनाई हैं।

**सुनीरा - भविष्य के लिए आपकी क्या योजनाएं है?**

**अभय सोपोरी** – अपनी रूट्स को बरकरार रखना चाहता हूँ। कलाकारों के बीच हेल्दी कम्पीटीशन हो ऐसा चाहता हूँ। अभी पिछले दो वर्षों में पापा की बरसी पर सभी संगीतकारों को जोड़ा था। सभी ने अपनी हाजिरी दी। एक बहुत ही सौहार्दपूर्ण वातावरण था।

**सुनीरा – नई पीढ़ी के कोई कलाकार जो आगे आ रहे हैं**

**अभय सोपोरी** – हाँ बहुत है जैसे दिव्यांश है, अनुष्का मजुमदार, इसके अलावा मैंने श्रुतिजी के बेटे निनाद को सुना बहुत अच्छा बजा रहा है। और भी बहुत से नए बच्चे बजा रहे हैं, एक्सपैरिमेंटल भी बजा रहे हैं, बौलीवुड स्टाईल में। तो संतूर की पॉप्युलेरिटी तो बढ़ती जा रही है। साउण्ड की खूबसूरती इसकी बढ़ती जा रही है।

**सुनीरा – अभय जी आप आपकी परम्परा के प्रति बहुत गंभीर हैं। और यह बात आपको आगे ले जाएगी। एक जो विस्तार और सहजता पंडित भजन सोपोरी जी के व्यक्तित्व में थी उसी की झलक मुझे आपमें दिखाई देती है। इस साक्षात्कार के अंत में आप क्या कहना चाहेंगे?**

**अभय सोपोरी** – मैं अपने आप को बहुत ही ब्लैस्ड फील करता हूँ कि ऐसी फैमिली में मेरा जन्म हुआ। जब मैं स्टेज पर बजाता हूँ और बड़े और वरिष्ट संगीतकारों के चेहरे पर स्माईल आ जाती है तो वही मेरा पुरस्कार होता है। आपके बड़े आपको प्यार करें और आपके काम को एप्रीशीएट करें इसके लिए मैं अपने आपको बहुत ही धन्य मानता हूँ।

■

आलेख

# अवनद्ध वाद्य परंपरा में स्त्री सहभागिता : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. कुमार ऋषितोष

'स्त्री' शब्द स्वयं में शक्ति का पर्याय है। इसके तीन प्रमुख पर्यायवाची शब्द हैं- नारी, अबला और महिला। यदि इन तीनों शब्दों के अर्थों पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाए, तो इनके अंतर्निहित भाव स्पष्ट रूप से नारी के सामर्थ्य, करुणा और सृजनशीलता की पुष्टि करते हैं। 'नारी' शब्द 'न' और 'अरी' से मिलकर बना है- अर्थात जिसका कोई शत्रु न हो, जो सभी के कल्याण और विकास में सहायक हो। 'अबला' शब्द का प्रचलित अर्थ प्रायः निर्बल माना जाता है, किंतु व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'बला' का अर्थ विपत्ति है, अतः 'अबला' का अर्थ जो विपत्ति नहीं लाती अथवा जो शुभ और मंगलमयी है, यह होना चाहिए - न कि शक्तिहीन। 'महिला' शब्द में निहित 'महि' तत्व पृथ्वी का द्योतक है, जो धैर्य, सहनशीलता और समग्रता का प्रतीक है। इस प्रकार 'महिला' वह है, जिसमें पृथ्वी को भी हिला देने की सामर्थ्य निहित हो।

इन तीनों शब्दों पर दृष्टिपात करने से यह सत्य उभरकर सामने आता है कि नारी शक्ति स्वरूपा है। सृजन, संरक्षण और परिवर्तन- किसी भी कार्य के पूर्णत्व में नारी का अस्तित्व अनिवार्य है। वास्तव में, नारी को नकार कर कोई भी सृष्टि या संस्कार पूर्ण नहीं हो सकता।

**"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"**

जहाँ नारीयों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है। शक्तियों के तीन रूपों में, जिन्हें त्रिगुणात्मक शक्ति कहा गया है - महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती- इनका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। अर्थात् स्त्रियों के प्रत्येक रूप की पूजा शक्ति स्वरूप में की जाती है। यहाँ तक कि शक्ति की अनुपस्थिति में शिव भी 'शव' में परिवर्तित हो जाते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में जितने भी देवी-देवता हैं, उनके नाम के साथ स्त्री शक्ति का समावेश सदैव देखा जाता है- सीताराम, राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर इत्यादि। यह इस बात का प्रतीक है कि नारी के बिना सृजन, संतुलन और शक्तित्व अधूरा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत के क्षेत्र में महिलाओं का बहुमुखी योगदान रहा है। गीत, वाद्य एवं नृत्य- तीनों ही क्षेत्रों में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शक्ति रूपा नारी की उपस्थिति से अवनद्ध वाद्यों में उनका योगदान न हो, यह विचार भी असंभव है। नारी-सुलभ सौंदर्य से जहाँ महिलाओं ने जन-जन को आकर्षित किया है, वहीं अपने मधुर कंठ से गीत-साधना द्वारा हृदयों को स्पंदित किया है। इतना ही नहीं, उनकी कोमल उँगलियों के स्पर्श से अवनद्ध वाद्यों पर नाद-माधुर्य की सृष्टि होती रही है।

वेदकाल और महाकाव्य काल में महिलाएँ पुरुषों के समान ही अवनद्धवादन में दक्ष थीं। इसके अनेक प्रमाण हमें मंदिरों और गुफाओं के प्रस्तर शिल्पों एवं मूर्तियों के रूप में प्राप्त होते हैं। ईसा पूर्व काल में तबले के सदृश पुष्कर वाद्य का प्रचलन भारत में था। यह वाद्य यद्यपि प्रायः पुरुषों के एकाधिकार वाला क्षेत्र माना जाता था, तथापि महिलाएँ भी इसे बजाने में निपुण थीं। आधुनिक तबला- जोड़ी की संरचना के साथ उस वाद्य का स्वाभाविक सामंजस्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उस समय संभवतः इसका उपयोग लोकवाद्य के रूप में किया जाता था।

"प्राचीन काल की अनेक गुफाएं जैसे भाजा गुफा, अजंता एलोरा, पवाया, अमरावती, बदामी इत्यादि में भुवनेश्वर, कोणार्क, बेलूर, हलेबिद, हम्पी एवं दक्षिण भारत के अनेक मन्दिरों में तथा हमारे पडोसी देश नेपाल, कम्बोडिया, इंडोनेशिया आदि के मन्दिरों में भी तालवाद्य बजाती हुई कलावती महिलाओं की अनेक मूर्तियां एवं प्रस्तर शिल्प हमें देखने को मिलते हैं, जिनका समय ईसा की दो सदी पूर्व से लेकर ईसा की 18 वीं सदी तक का रहा है। उस काल में भी महिलाएं त्रिपुष्कर वाद्य - आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्य, ढोल, ढोलक, मृदंग, मर्दल, खोल जैसे तालवाद्य बजाती होंगी तभी तो अनेक शिल्पकारों एव चित्रकारों ने उन्हें अपनी कलाकृतियों में संजोया है।"

कलाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अपने समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और कलात्मक अनुभूतियों को अपनी कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। प्राचीन काल में भी महिलाएँ अवनद्ध वाद्य- जैसे ढोल, ढोलक, मृदंग, मर्दल और खोल- के वादन में दक्ष रही होंगी, तभी तो उस युग के शिल्पकारों और चित्रकारों ने उन्हें अपनी कलाकृतियों में अंकित किया है। पुरातत्व विभाग की पत्रिका के अनुसार, महाराष्ट्र के लोनावला स्थित गिरिनगर से लगभग पाँच किलोमीटर दूर मुंबई–पूना मार्ग पर 'भाजा' नामक एक प्राचीन गुफा है। यह गुफा बौद्ध धर्म के हीनयान पंथ के

उत्कर्ष काल में श्रृंग राजाओं के शासनकाल में निर्मित हुई थी। यह गुफा लगभग बाईस सौ वर्ष पुरानी मानी जाती है। इस गुफा के चौदहवें कक्ष में लगभग बारह फीट ऊँचा 'इंद्रशिल्प' अंकित है, जिसमें अंबाडी पर विराजमान इंद्र के समक्ष एक नृत्य-गोष्ठी का चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है। इस दृश्य में एक नर्तकी नृत्यरत है, एक वीणावादक वीणा बजा रहा है, और उनके समीप एक स्त्री वादिका को सामने रखे दो चर्मबद्ध अवनद्ध वाद्यों को दोनों हाथों से बजाते हुए चित्रित किया गया है। इन वाद्यों में से एक वाद्य का रूप आधुनिक तबला से अत्यंत साम्य रखता है। उसकी वादिका के दोनों हाथ वादन मुद्रा में दर्शाए गए हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में तबला-सदृश वाद्य भारत में प्रचलित था, और उसे बजाने में महिलाएँ भी सक्रिय भूमिका निभाती थीं।

**शिल्पचित्र का साक्ष्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है-**

**भारतीय कला के सर्वोत्तम जीवंत उदाहरणों में से एक, महाराष्ट्र स्थित अजंता गुफाएँ** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनका निर्माण काल **ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी ईस्वी** तक माना जाता है। इन गुफाओं में अंकित भित्ति एवं शिल्प चित्र भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक और कलात्मक चेतना के उत्कृष्ट प्रमाण हैं।इन शिल्पचित्रों में **महिला वादिकाओं द्वारा प्राचीन त्रिपुष्कर वाद्यों का वादन करते हुए भव्य चित्रण** प्राप्त होता है। एक चित्र में **महिला वादिका** को **भारत-कालीन त्रिपुष्कर वाद्य** बजाते हुए दर्शाया गया है, जिसमें **तबला-वायाँ सदृश 'ऊर्ध्वक'** तथा **'आलिंग्य'** वाद्य का स्पष्ट एवं सजीव अंकन किया गया है। इसी शिल्पचित्र में एक नृत्यांगना **नृत्यरत मुद्रा** में है, जिसके साथ **महिला वादिका 'आंकिक' वाद्य का वादन** कर रही है। यह दृश्य इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि **प्राचीन भारत में नारी केवल नृत्य तक सीमित नहीं थी, बल्कि वाद्य-संगीत में भी समान रूप से पारंगत थी।** गत शताब्दी की महिला तबला कलाकारों में लखनऊ घराने के प्रवर्तक उस्ताद मोदू खाँ की पत्नी का नाम आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। कहा जाता है कि वे पंजाब घराने के किसी प्रसिद्ध उस्ताद की पुत्री थीं, जिन्हें अपने पिता से दीर्घकालीन संगीत शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे अनेक बंदिशों की ज्ञाता थीं और संगीत जगत में उनके संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। बनारस घराने के प्रवर्तक पंडित रामसहाय मिश्र, लखनऊ घराने के उस्ताद मोदू खाँ के शिष्य थे। लगभग बारह वर्षों तक वे अपने गुरु के परिवार के सदस्य की भाँति उनके घर में रहकर तबला की शिक्षा प्राप्त करते रहे। कहा जाता है कि इस अवधि में उन्हें अपने गुरु के साथ-साथ गुरु माता का भी अत्यधिक स्नेह मिला। जब उस्ताद मोदू खाँ लखनऊ से बाहर जाते थे, तब पंडित रामसहाय को शिक्षा देने का कार्य उनकी विदुषी गुरु माता स्वयं संभालती थीं। वे उन्हें अपने पंजाब घराने की बंदिशें, गतें और लाहौरी शैली सिखाया करती थीं। उल्लेखनीय है कि पंडित रामसहाय की परंपरा में आज भी पंजाबी गतें, जनानी गतें, मर्दानी गतें और लाहौरी गतें विशेष रूप से प्रचलित हैं, जो इस परंपरा में उस विदुषी गुरु माता के योगदान का सजीव प्रमाण हैं।

उदाहरणार्थ एक पंजाबी गत निम्नलिखित हैं-

**धिनधि नधिन धगिन धगिन। धगिन तकिट तकिट तकिट।**
**धाड़ागि नधाड़ा गिनधा ड़ागिन। तकधि नतक धिनत कधिन।**
**तकत कतक नड़न ड़नड़। तगिन तगिन तगिन धातिरकिट।**
**धगिन धातिरकिट धगिन धातिरकिट। घगिन घिनग घिनग घिनग।**
**तिनति नतिन तकिन तकिन। तकिन तकिट तकिट तकिट।**
**ताड़ाक्रि नताड़ा किनता ड़ाकिन। तकति नतक तिनत कतिन।**
**तकत कतक नड़न ड़नड़। तगिन तगिन तगिन धतिरकिट।**
**धगिन धातिरकिट धगिन धातिरकिट। घगिन घिनग घिनग घिनग। धा''**

लखनऊ घराने के प्रवर्तकों में उस्ताद मोदू खाँ के छोटे भाई उस्ताद बख्शू खाँ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी एक पुत्री को तबले की उच्च शिक्षा प्रदान की थी। तत्पश्चात् उन्होंने उसका विवाह अपने एक होनहार और प्रिय शिष्य से किया, जो आगे चलकर फर्रुखाबाद घराने के प्रवर्तक हाजी विलायत अली खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरुपुत्री होने के कारण हाजी साहब अपनी पत्नी का अत्यंत सम्मान करते थे। वे अपने शिष्यों का गंडाबंधन संस्कार भी उन्हीं के हाथों से संपन्न कराते थे। हाजी विलायत अली खाँ के प्रसिद्ध शिष्यों में चूड़ियावाले उस्ताद इमाम बख्श का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। कहा जाता है कि इमाम बख्श के गंडाबंधन संस्कार के अवसर पर हाजी साहब की पत्नी ने अपनी चूड़ियाँ उतारकर उनके हाथों में पहना दी थीं। गुरु माता के इस स्नेह और आशीर्वाद की स्मृति में उस्ताद इमाम बख्श ने जीवनपर्यंत वे चूड़ियाँ अपने हाथों में धारण किए रखीं। तभी से वे 'चूड़ियावाले इमाम बख्श' के नाम से विख्यात हुए। आज भी चूडिंया वाले इमाम बख्श के रचनाओं को तबला वादक आदर से प्रस्तुत करते हैं। यह खेद का विषय है कि उस्ताद मोदू खाँ तथा हाजी विलायत अली खाँ की विदुषी पत्नियों के नामों का उल्लेख कहीं भी स्पष्ट रूप से नहीं मिलता, जबकि उनके योगदान ने घरानों की परंपरा को दिशा देने में मौन भूमिका निभाई। उस्ताद बख्शू खाँ के पुत्र उस्ताद मम्मन खाँ की दो पुत्रियाँ- मोटी बीबी और छोटी बीबी- तबला वादन में अत्यंत पारंगत थीं। दोनों बहनों को लखनऊ घराने की अनेक बंदिशें कंठस्थ थीं। उस समय की परंपरा के अनुसार, दरबारों और नवाबी सभाओं में महिलाएँ खड़ी होकर या कमर पर

तबला बाँधकर वादन करती थीं। छोटी बीबी लखनऊ के नवाब के अन्तःपुर में बेगमों के समक्ष गायन, वादन और नृत्य की संगति किया करती थीं। छोटी बीबी ने अपने पुत्र बाबू खाँ को स्वयं तबला सिखाया। माँ और पुत्र दोनों बाद में कलकत्ता चले गए, जहाँ बाबू खाँ ने अपने घराने की वादन परंपरा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। परिणामस्वरूप, उस्ताद बाबू खाँ की दीर्घ शिष्य परंपरा आज भी कलकत्ता में जीवंत रूप में विद्यमान है।

20वीं सदी के तीन चार दशक तक शाही परिवारों के अंतपुर उत्सवों में तथा स्त्रियों की गोष्ठियों में पेशेवर तबला वादकों के घरों की महिलाएं तबला बजाने जाती थी। उन्हें मिरासिन कहा जाता था। अनुमान है कि ऐसी बहुत सी महिलाएं उन दिनों तबला बजाती रही होंगी, किन्तु उनके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नही है। "लगभग 1925 के आसपास की बात है। एक बार श्रीमती केसरबाई केलकर निजाम के आमंत्रण पर अपना गायन पेश करने हैदराबाद गईं थीं। वहाँ उन्हें पता चला कि निजाम के जनानखाने में एक अति वृद्धा किन्तु गुणी महिला पखावज-वादिका हैं जो बेगमों को पखावज सिखातीं हैं, सुनाती हैं तथा कलाकारों की साथ-संगत भी करती हैं। केसरबाई ने तुरन्त उस महिला से मिलने की इच्छा प्रकट की। मिलने से ज्ञात हुआ कि अति वृद्धा हो जाने के कारण उस महिला की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, अतः वे पखावज बजाने में असमर्थ थीं। वे केसरबाई के सामने बजा तो नहीं सकीं परन्तु इनका मन रखने के लिए उन्होंने पखावज की अनेक सुन्दर परनें उन्हें पढ़कर सुनाई जिन्हें सुनकर केसरबाई मंत्र मुग्ध हो गई। उनके अनुसार वह महिला पखावजी सुप्रसिद्ध मृदंगाचार्य नाना पानसे की सुपुत्री थीं। यद्यपि हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है, तथापि ऐसी उच्चश्रेणी की महिला ताल-वादिका हैदराबाद दरबार में मुलाजिम थी, यह हकीकत वहाँ के निजाम के कला प्रेम, उनकी गुणग्राही दृष्टि तथा भारत में महिलाएं भी सदियों से तबला-पखावज-ढोल-मार्दल जैसे ताल वाद्य बजाती आ रही हैं, जैसे तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।"

शक्ति आवश्यक रूप से अनिवार्य है। अतः यह आश्चर्य की बात नहीं कि अवनद्ध वाद्यों के वादन में महिलाओं का योगदान प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। वस्तुतः समाज की कुरीतियों और संकीर्ण परंपराओं ने ही महिलाओं को केवल गृहिणी और पर्दानशीं जीवन तक सीमित रखा, परिणामस्वरूप उनकी निहित शक्ति, प्रतिभा और सृजनशीलता को सदैव उपेक्षित किया गया। समाज ने लंबे समय तक यह मान्यता बनाई रखी कि स्त्रियाँ किसी भी शक्तिपूर्ण या पुरुषप्रधान कार्य को करने में असमर्थ हैं।

फिर भी, जब इतिहास के पन्ने उलटते हैं, तो ऐसी अनेक महान स्त्रियों के कार्य और उदाहरण सामने आते हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष से कम नहीं है। उदाहरण स्वरूप, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, जिन्होंने स्त्री होते हुए भी अद्भुत युद्ध-कौशल और नेतृत्व-क्षमता का परिचय दिया। उल्लेखनीय है कि उनकी महिला सेना में झुमकीबाई नामक एक स्त्री नक्कारा वादन में अत्यंत दक्ष थीं, जो इस बात का प्रतीक है कि नारी ने न केवल तलवार, बल्कि ताल और लय दोनों में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया।वास्तव में, नारी पुरुष के हृदय की ऊर्जा-शक्ति है, जिसकी प्रेरणा से पुरुष में पुरुषार्थ और सृजन शक्ति जागृत होती है। इस शोध प्रपत्र के माध्यम से यह कहना समीचीन होगा कि हर सफल पुरुष के पीछे किसी न किसी महिला का योगदान सर्वोपरि होता है — चाहे वह माँ, बहन, मित्र या पत्नी के रूप में ही क्यों न हो। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि यदि नारी स्वयं ठान ले, तो उसके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं।

**जयशंकर प्रसाद जी** ने नारी के विषय सही कहा है -

**नारी, तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।**
**पियूष-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।।**

लेखक: कलाकार, मार्गदर्शक, लेखक, शिक्षाविद, आयोजक
Add. 191-D, LIG DDA Flats, Motia Khan, Delhi-110055
Mob.: 09868476900, Email: rishitoshtabla6@gmail.com

समवेत

## प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित वरिष्ठ पत्रकार तथा कला लेखिका, रीना सोपम लिखित, 'हस्ताक्षर, कला इतिहास में बिहार की महिलाएँ ' का लोकार्पण...

पटना: वरिष्ठ पत्रकार तथा कला लेखिका, रीना सोपम की किताब, 'हस्ताक्षर कला इतिहास में बिहार की महिलाएँ ' पिछले दिनों पटना में हुए एक पुस्तक विमोचन समारोह में लोकार्पित की गई।प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह किताब प्रदर्श कला के इतिहास में बिहार की महिलाओं की भागीदारी पर आधारित है। इस विमोचन समारोह की शुरुआत वरिष्ठ शास्त्रीय गायिका, डॉ रेखा रत्नम के श्लोक गायन, 'शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजं ' जिसके बाद, सुश्री रिमझिम और हरिप्रिया ने सरस्वती वंदना गाया। अंत में स्वर्गीय शारदा सिन्हा की बेटी वंदना ने शारदा जी के एक गीत को गाया। किशोर सिन्हा, पूर्व केंद्र निदेशक, आकाशवाणी पटना ने बेहतरीन संचालन किया। धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पत्रकार, शाइर नीलांशु रंजन ने रीना सोपम से उनकी पत्रकारिता के आरंभिक दिनों पर बातें करते हुए कहा कि वे जानते थे कि रीना ऐसी किताब लिखेगी और आगे भी उनके किताब का इंतज़ार है।इस अवसर पर सभागार में बडी संख्या में कलाकार, साहित्यकार और संगीत प्रेमी उपस्थित थे।

आलेख

# भारतीय वाद्यों में तन्त्रियों का क्रमिक विकास

डॉ. लयोत्तमा उप्रेति

संगीत हृदयस्थ भावों को अभिव्यंजित करने का एक सरल व सशक्त माध्यम है। संगीत गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों की अन्विति है। वाद्य तथा नृत्य के संगम से ही गीत श्रेष्ठतर बन जाता है। अतः संगीत गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों के अभिन्न साहचर्य का द्योतक है।

सांगीतिक दृष्टि से देखा जाए तो मानव शरीर ईश्वर निर्मित एक वाद्य सदृश है जो नाद उत्पन्न करने का माध्यम बनता है और इसीलिए इसे शारीरि वीणा, गात्र वीणा या दैवी वीणा आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता है।

**वाद्य शब्द का अर्थ** वाद्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है- वादनीयच्या बजाने योग्य अंग विशेष। यह शब्द वद् धातु निष्पन्न होता है जो व्यक्तायांवाचि या स्पष्टोच्चारण करने के अर्थ में व्यवहृत होता है। वद धातु में णिच् प्रत्यय में कर्मणियत् प्रत्यय लगने से वाद्य शब्द व्युत्पन्न होता है। एक अन्य मतानुसार वाद्य शब्द वाक् शब्द से निर्मित है। वाक् का अर्थ वाणी होता है अर्थात जिसमें वाक् होता है या जिसे बोलाया जा सके अथवा जो बोलता है वही वस्तुतः वाद्य है। वदतीति वाद्यम्

हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में वाद्य के तीन पर्याय प्राप्त होते हैं। वाद्य, वादित्र तथा आतोद्य। वद् धातु में णित्रन प्रत्यय लगने से क्रमश वादित्र शब्द निष्पन्न होता है। संस्कृत भाषा में तुद् धातु में आ उपसर्ग लगाकर आतोद्य शब्द बना है अतएव आतोद्य वह उपकरण है जिस पर आघात करने से अर्थात चारों ओर से ताड़ित करने से स्वरोत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत शास्त्र में यह शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है।

1. **वाद्य यन्त्र-** ध्वनि उत्पन्न करने का साधन
2. **वादन क्रिया-** यन्त्र पर की जाने वाली वादन क्रिया जैसे-कला, पात
3. **अन्तर्वस्तु -** जो कुछ बजाया जा सके, वह वादन जिससे ताल की धारणा होती है इस प्रकार प्राचीन काल से ही वाद्य शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से तीन अर्थों में किया जाता था।

1. **वाद्य**
2. **वादन सामग्री**
3. **शैली अथवा बाज**

इस प्रकार वाद्य शब्द को भारतीय संगीत में संगीत यन्त्र, उसे बजाने की क्रिया तथा उस पर बजाई जाने वाली अन्तर्वस्तु के अर्थ में प्रयोग किया जाता है अर्थात वाद्य शब्द में यन्त्र, ध्वनि तथा वस्तु तीनों का समाहार है। सामान्य अर्थ के रूप में कहा जाए तो संगीतात्मक ध्वनि को उत्पन्न करने वाले उपकरण को वाद्य की संज्ञा दी गई है। जब ध्वनि कण्ठ से न निकलकर किसी अन्य उपकरण से निकलती है तथा मनुष्य द्वारा व्युत्पन्न की जाती है, तो उस उपकरण को वाद्य कहते हैं। इस प्रकार वाद्य संगीत कला का ऐसा घटक है जो संगीतात्मक ध्वनि अथवा गति को प्रकट करने के साथ-साथ कलात्मक तत्वों का सहारा लेकर उन्हीं के आधार पर अपने क्षेत्र में संगीत कला को महत्व एवं श्रेष्ठता प्रदान करता है,

भारतीय संगीत के सन्दर्भ में सांगीतिक दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो व्यवहारिक रूप से तन्त्र शब्द से अभिप्राय उस उपकरण से है जिसे तन्त्र वाद्य या तन्त्री वाद्य कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार तन्त्र को बोलों के निकास या अभिव्यक्ति देने वाला उपकरण कहा गया है अर्थात स्वर, लय और शब्दों से युक्त बोलों को निकालने का माध्यम तन्त्र कहा गया है।

**तन्त्री शब्द का अर्थ-** तन्त्री शब्द का साधारण अर्थ तार आदि से लगाया जाता है। तन्त्री शब्द के पर्यायवाची शब्द तन्तु, तार, ताँत, सूत्र इत्यादि है। 'तन्त्रयते इति तन्त्रः के मतानुसार तन्त्र शब्द तत् या तन्त्री शब्दों से सम्बन्धित है। तन्त्र धातु में इ' जोड़ने से तथा 'उष' प्रत्यय लगाने पर तन्त्री शब्द बनता है जिसका अभिप्राय है ताँत, वीणा के तार इत्यादि। ठाकुर जयदेव सिंह के शब्दों में तन्त्र की व्याख्या तत् के रूप में की गई है। साधारण बोलचाल की भाषा में तत् शब्द का अर्थ तन्त्र वाद्य है जिसकी व्युत्पत्ति तत् धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है 'तानना या फैलाना और जिस उपकरण पर तार या तन्त्रियाँ फैला कर रखी जाए तथा उन पर प्रहार करने से स्वरों की उत्पत्ति हो, उन्हें तत् कहा जाता है। इस प्रकार तन्त्री या तन्तु शब्द का अर्थ तना हुआ तार, रेशम का डोरा अथवा ताँत से निर्मित तन्त्री है तथा वह वाद्य जिनमें तन्त्रियों का प्रयोग किया जाता है, तन्त्री वाद्य कहलाते हैं। इस प्रकार संगीत के सन्दर्भ में तन्त्र एक ऐसा उपकरण है जिसमें स्वर तन्त्रियाँ होती हैं, जो धातु निर्मित होती हैं और उन पर वायु के स्पर्श, या नख मिजराब और जवा इत्यादि के प्रहार से स्वरों की उत्पत्ति होती है।

**तन्त्रियों का विकास -** डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार वैदिक युग से आधुनिक युग तक प्रयुक्त होने वाली तन्त्रियों के विकास का भी एक सुन्दर इतिहास है। उपलब्ध वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में मूँज, दूब या कुश को बटकर तन्त्रियाँ बनाई जाती थीं। इन तन्त्रियों को बजाने की

विधि का पता नहीं चलता है। 'आरण्यक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उस समय की तन्त्रियाँ पाली तन्त्रियाँ कहलाती थीं जो संख्या में तीन, पाँच या सात होती थी। सूत्रकाल में कर्म के लिए संभवतः प्राचीन ढंग की मूँज अथवा कुश की तन्त्रियाँ ही शुभ समझी जाती थी।

वाद्यों में तन्त्रियों के विकासक्रम के अन्तर्गत धीरे-धीरे तन्त्री निर्माण के लिए रेशम का धागा और जानवरों के बालों का भी प्रयोग होने लगा। जानवरों के बालों के अन्तर्गत घोड़े की पूँछ के बाल प्राचीन काल में सर्वोपरि समझे जाते थे क्योंकि जानवरों के बालों की बनी तन्त्रियों की ध्वनि रेशम से निर्मित तन्त्रियों की अपेक्षा अधिक मधुर तथा गूँज युक्त थी परन्तु यह गूँज वाद्यों में ही अधिक होती थी, तन्त्री के रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त जानवरों के बालों से कमान का निर्माण भी प्रारम्भ हुआ। इन दोनों रूपों को आधुनिक राजस्थानी लोकवाद्य रावणहत्था में देखा जा सकता है।

जानवरों के बालों के साथ ही जानवरों की आंतो से बनी तन्त्रियों का प्रयोग भी प्राचीन काल से ही मिलता है। इन तन्त्रियों को 'ताँत' कहा जाता था। शारंगदेव के अनुसार प्राचीन समय में तन्त्रियाँ मेष (भेड़) या बकरी की आँतों से बनाई जाती थीं जो पतली, चिकनी, समान आकार वाली तथा मजबूत होती थी। कुम्भा के अनुसार मेष की आँत की बनी, रेशम के धागे की बनी अथवा कपास के सूत्रों से बने हुए तार तन्त्री कहलाते थे। जानवरों की आँतों से निर्मित तन्त्रियों को ताँत कहा जाता था। तन्त्री के रूप में प्रयुक्त होने वाली आँत में बकरे की आँत सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। वर्तमान समय सारंगी, सारिन्दा आदि वाद्यों में ताँत की तन्त्री का प्रयोग देखा जा सकता है।

वीणाओं में अन्त्र या ताँत की तन्त्री के प्रयोग का उल्लेख संगीत रत्नाकर में मिलता है। जिसके अनुसार एकतन्त्री वीणा में स्नायुमयी, आलापिनी वीणा में मेष की अन्त्र से निर्मित, पट्टसूत्र अथवा कपास के सूत्र से बनी, मार्ग लघु किन्नरी में लौह तथा बृहती किन्नरी में स्नायुमयी तन्त्री का उल्लेख प्राप्त होता है। वस्तुतः वीणा में मुख्य रूप से स्नायुमयी तन्त्री का ही प्राधान्य बताया गया है।

इस प्रकार ताँत के प्रयोग के पश्चात् धातुओं से निर्मित तन्त्रियों का प्रयोग आरम्भ हुआ। अष्ट धातुओं में लौह, पीतल, ताँबे व चाँदी के तारों को अधिक महत्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार धातु के आविष्कार के पश्चात् लोहे और पीतल आदि धातुओं से निर्मित तन्त्रियों की व्यवस्था की जाने लगी। व्यंकटमुखी ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पीतल की तन्त्री की योजना की थी क्योंकि उनसे पूर्व तक सभी ने लौह निर्मित तन्त्री का ही उल्लेख व प्रयोग किया है।

भरत के समय में किस प्रकार की तन्त्रियाँ रही होंगी? क्या वे स्नायुमयी, रेशमी, ताँत अथवा लोहे या पीतल धातु की थीं? इसके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उस समय तक धातु के तारों का प्रचलन अच्छी तरह से हो चुका था। अतः तन्त्रियों के लिए धातुओं का प्रयोग होना आश्चर्यजनक नहीं है।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक समस्त संगीत विचारकों और शास्त्रवेत्ताओं ने स्वर को परखने, नापने, स्वरों के मान निकालने, स्वर और श्रुति के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने तथा स्वरों के नवीन स्वरूपों का चाक्षुष प्रत्यक्ष करने के लिए वीणा पर ही निर्भर किया है। इसी दृष्टि से वीणाओं के वर्गीकरण में सर्वप्रथम आधार यह होता है कि वादन मुख्य तन्त्री पर होता है अथवा तन्त्री को दबाकर, मुख्य तन्त्री वाले वाद्यों में यह देखा जाता हैं कि तन्त्रियाँ किसी डाँड पर बँधी हैं अथवा चौखटे में है। इस प्रकार सांगीतिक धारा को एक ओर से दूसरी ओर ले जाने में मुख्य रूप से तीन प्रकार की वीणाओं का योगदान रहता है।

1. प्रथम प्रकार की वीणाएँ वे हैं जिनमें प्रत्येक स्वर के लिए अलग-अलग तन्त्री होती थी। ऐसी वीणाओं की प्रमुखता भरत काल में थी। जैसे- चित्रा, विपंची, मत्तकोकिला।

2. द्वितीय प्रकार की वीणाओं में मुख्य तन्त्री की लम्बाई को घटा-बढ़ाकर स्वर प्राप्त करने की प्रथा है। जिसके अन्तर्गत षड्ज की मूर्च्छना पर षड्ज को निषाद मानकर निषाद की मूर्च्छना के स्वरान्तराल को प्राप्त किया जाता है जो कि शारंगदेव के अनुसार परमत है। ऐसी वीणाओं में घोषा, एकतन्त्री, नकुली आदि प्रमुख हैं। ये वीणाएँ सारिकाहीन थीं। यद्यपि इनमें षड्ज स्वर स्थिर नहीं हुआ था परन्तु षड्ज के स्थान का प्रभाव बढ़ा था।

3. तृतीय प्रकार की वीणाएँ वह थीं जिनमें तार की लम्बाई को घटा बढ़ाकर बजाया जाता था तथा इन वीणाओं में सारिकाएँ होती थीं।

भरत, शारंगदेव तथा अहोबल आदि विद्वानों ने वीणा के अलग-अलग प्रकार बताए हैं और इन समस्त भेदों को तन्त्रियों की संख्या के आधार पर प्रतिपादित किया गया है। जैसे- दो तार वाली वीणा नकुली, तीन तार वाली त्रितन्त्री, पाँच तार वाली विपंची, छः तार वाली सर्वरी तथा जिस वीणा में सात तार लगे हों उसे परिवादिनी वीणा कहते हैं। अन्य विद्वानों के अनुसार विपंची वीणा में नौ तार लगे होते थे जिन पर क्रमशः सा, रे, ग, म, प, ध, नि स्वरों की स्थापना की जाती थी।

तन्त्री वाद्यों की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक स्वर के लिए एक तार की व्यवस्था अर्थात प्रत्येक स्वर के लिए अलग-अलग तन्त्री का प्रयोग करने पर निश्चित स्वर स्थान तो स्पष्ट सुनाई पड़ते थे किन्तु दो स्वरों को बिना तोड़े उनका सम्बन्ध जोड़ने की प्रक्रिया सम्भव नहीं थी। अति प्राचीन काल में कहीं भी एक तार पर एक से अधिक स्वरों को निकालने की किसी व्यवस्था का पता नहीं चलता है। इसलिए वीणा के भिन्न-भिन्न नाम भी उनकी बाहय आकृति और तारों की संख्या पर निर्भर थे।

वीणा में मुख्य तन्त्री तथा उसमें स्वर स्थापन के पश्चात ही पार्श्व तन्त्रियों की आवश्यकता व उत्पत्ति पर विचार किया गया होगा, क्योंकि बिना मुख्य तन्त्रियों के पार्श्व तन्त्रियों का अस्तित्व स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

**पार्श्व तन्त्री का अर्थ-** पार्श्व तन्त्री शब्द दो शब्दों का समन्वय है 'पार्श्व' तथा 'तन्त्री, पार्श्व का अर्थ है पीछे' तथा तन्त्री का अर्थ है 'तार' इस प्रकार पार्श्व

तन्त्रियों का मूल अर्थ है पीछे की तन्त्रियाँ। तन्त्री वाद्यों में मुख्य तन्त्रियों के अतिरिक्त जो पीछे की ओर तन्त्रियाँ लगी होती हैं, उन्हें पार्श्व तन्त्रियाँ कहते हैं। इन्हें सहायक अथवा उपतन्त्रियाँ भी कहा जाता है। पार्श्व तन्त्रियों की संज्ञा सामान्य रूप से 'श्रुति' है। यद्यपि श्रुति का अर्थ है- स्वरों के सूक्ष्म अन्तराल परन्तु इन तन्त्रियों के लिए श्रुति शब्द प्रयुक्त किया जाता है। यह परम्परा वादकों में कब से आरम्भ हुई यह कहा नहीं जा सकता परन्तु इसका सर्वप्रथम लिखित प्रमाण रामामात्य कृत 'स्वरमेलकलानिधि के स्वर वीणा प्रकरण में प्राप्त होता है।

वीणा में मुख्य तन्त्रियों के अतिरिक्त पार्श्वतन्त्रियों का भी प्रयोग किया जाता है। जिन्हें चिकारियाँ, पपीहे, टीप, भ्रमरी आदि नामों से भी जाना जाता है। 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चिकारी के लिए 'पपैया' कहा जाता था। चिकारी का उल्लेख कल्लिनाथ के समसामयिक महाराणा कुम्भा ने 'किन्नरी प्रकरण' में किया है। आधुनिक समय में मुख्य तन्त्री को 'बाज का तार तथा पार्श्व तन्त्रियों को 'चिकारी का तार कहा जाता है। इन तन्त्रियों का उल्लेख कल्लिनाथ तथा कुम्भा से पूर्व किसी ने नहीं किया है। सोमेश्वर के कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जैसे आधुनिक काल में सितार एवं सरोद में थोड़े बहुत अंश से तन्त्रियाँ होती हैं उसी प्रकार रागानुकूल बनाने के लिए स्वेच्छा से वादक प्राचीन समय से कभी तीन, कभी चार तथा कभी पाँच तन्त्रियों की स्थापना करते होंगे अर्थात रूचि भेद, देश भेद के कारण ही पार्श्वतन्त्रियों की उत्पत्ति हुई ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु इन तन्त्रियों की उत्पत्ति का मुख्य प्रयोजन क्या था इस सम्बन्ध में पूर्णरूपेण नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम वीणा पर एक आधार स्वर निश्चित किया गया तदोपरान्त तन्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप पार्श्वतन्त्रियों या उपतन्त्रियों की उत्पत्ति तथा उनमें स्वरस्थापन की प्रक्रिया की गई।

संपर्क : फ्लैट नं- बी 1-03, ब्लॉक B1 ए.पी.एस.टॉवर
एल. आर. साह रोड, निकट जिला कारागार पूर्वी पोखरखाली,
अल्मोड़ा - 263601

समवेत

## पयोधि की कविताएं अपने मौन से संवाद करती हैं -विनोद कुमार जैन

### आध्यात्मिक चिंतन हमारी आंतरिक चेतना को जागृत कर जीवन में शुचिता का मार्ग प्रशस्त करता है - डॉ. विकास दवे

भोपाल। ' कविता लिखी नहीं जाती वह प्रकट होती है, जब तक संवाद है तब तक समस्या का समाधान है, आश्चर्य और जिज्ञासा का भाव नव सृजन का आधार होते हैं पयोधि की कविताएं अपने मौन से संवाद करती हैं जो जीवन को चिंतन की नई दिशा देती हैं।' यह उदगार हैं वरिष्ठ साहित्यकार विनोद कुमार जैन के जो पाठक मंच केंद्र अयोध्या नगर द्वारा मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के पुस्तकालय सभागार में वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि के नवीनतम प्रकाशित काव्य संग्रह 'आतम से संवाद 'में मुख्य वक्ता के रूप में बोल रहे थे। कार्यक्रम के आरम्भ में अतिथियों ने मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्वलन कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। आयोजन में स्वागत वक्तव्य डॉ. विकास दवे निदेशक साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल ने दिया उन्होंने पयोधि को उनके नव प्रकाशित काव्य संग्रह की बधाई देते हुए उनकी इस आध्यात्मिक सृजन यात्रा पर सतत् आगे बढ़ने की शुभकामनाएं दीं और कहा आध्यामिक चिंतन हमारी आंतरिक चेतना को जागृत कर हमारे जीवन में शुचिता का मार्ग प्रशस्त करता है। कार्यक्रम का संचालन पाठक मंच केंद्र के संयोजक घनश्याम मैथिल अमृत ने किया। इस अवसर पर इस कार्यक्रम के संयोजक वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीकांत जवणे इस कृति में मुख्य समीक्षक और वक्तव्य देते हुए इस संग्रह की विशेषताओं को रेखांकित किया। इस कविता संग्रह पर चर्चा करते हुए महेश सक्सेना, सुंदरलाल प्रजापति, दीपक पंडित, डॉ. आकांक्षा दुबे, प्रदीप श्रीवास्, कांता रॉय, दीपक पगारे, गोकुल सोनी, मनीष बादल, भँवरलाल श्रीवास ने अपनी महत्वपूर्ण समीक्षात्मक टिप्पणियां प्रस्तुत की। कार्यक्रम के अंत में कृति के रचनाकार लक्ष्मीनारायण पयोधि ने अपनी सृजन यात्रा पर अपने विचार श्रोताओं से साझा करते हुए सभी का आभार प्रकट किया।

-रपट: घनश्याम मैथिल 'अमृत'

आलेख

# तबला वाद्य की उत्पत्ति एवं विकास

डॉ. प्रिया तिवारी

दोनों हाथों से बजाया जाने वाला वाद्य 'तबला' वर्तमान समय का सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रतिष्ठित एवं श्रेष्ठ अवनद्ध वाद्य है, जिसका प्रयोग भारतीय संगीत में कलात्मक पूर्ण सहयोग प्रदान करने हेतु एवं स्वतंत्र वादन के रूप में किया जाता है। यह एक ऐसा वाद्य है, जिसकी अपनी विशेष समृद्ध भाषा है।

जब हम 'तबला' वाद्य की उत्पत्ति, विकास तथा समयकाल के विषय में अध्ययन करते हैं तो कह सकते हैं, कि बायें-दायें की जोड़ी के रूप में दो ऊर्ध्वमुखी अवनद्ध वाद्यों के वादन की परम्परा प्राचीन युग में भी थी, जिसका प्रमाण देश के अनेक प्राचीन गुफाओं व प्रस्तर-शिल्पों आदि में उत्कीर्ण साक्ष्यों के रूप में प्राप्त होता है। परन्तु वर्तमान तबला वाद्य का यह स्वरूप एवं नाम लगभग तीन-चार सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। तबला वाद्य की उत्पत्ति एवं जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत व किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, परन्तु सर्व सम्मत्ति से तार्किक एवं प्रमाणिक रूप से जो मत प्राप्त होता है वह नाट्य शास्त्र-आधारित स्वाति मुनि से सम्बन्धित मत है जो वर्तमान के लगभग सभी उच्चकोटि के पुस्तकों व शोध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस घटना में जुड़ी एक कथा भी है जो अति संक्षेप में कुछ इस प्रकार है-

भारतीय संगीत का आधार ग्रंथ 'नाट्य शास्त्र' को माना जाता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार सभी वाद्यों में 'त्रिपुष्कर' को सर्वाधिक समृद्ध अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में रखा गया है, जिसके अविष्कार की प्रेरणा सर्वप्रथम 'स्वाति' ऋषि को प्राप्त हुई थी।

एक दिन जब स्वाति मुनि वर्षा ऋतु में सरोवर के किनारे जल लेने गये थे और वहाँ उन्होंने वर्षा के दौरान हवा के झोकों से जल की बून्दों को कमल के पत्तों पर गिरती हुई 'टप-टप' की मनोरम ध्वनियों को सुना। ये ध्वनियाँ बडे, मझौले एवं छोटे प्रकार के पत्तों पर गिरते हुये अलग-अलग प्रकार की गम्भीर, मधुर एवं कर्णप्रिय प्रतीत हो रहीं थीं।

मुनि को इन मनोरम ध्वनियों ने इतना प्रेरित किया कि वे आश्रम आने के पश्चात् सरोवर (पुष्कर) पर सुनी हुई उन ध्वनियों का ध्यान कर विश्वकर्मा जी की सहायता से उन विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करने योग्य मृदंग अर्थात् 'पुष्कर' वाद्यों (पणव तथा दर्दुर सहित) का निर्माण किया। जो देवताओं की दुन्दुभि के समान मिट्टी द्वारा 'आलिंग्यक', 'ऊर्ध्वक' तथा 'आँकिक' तीन रूपों मे निर्मित हुआ। चूँकि इस पुष्कर वाद्य के निर्माण की प्रेरणा स्वाति मुनि को पुष्करिणी से प्राप्त हुई थी तथा इसके तीन भाग थे-आँकिक, ऊर्ध्वक एवं आलिंग्यक इसलिये उन्होंने इस नव निर्मित वाद्य का नाम त्रि-पुष्कर या 'पुष्करत्रय' रखा।

मुनि श्रेष्ठ स्वाति ने कमल पत्रों पर सुनी गई विभिन्न 'ध्वनियों' के अनुरूप त्रिपुष्कर वादन के लिये सोलह आधारभूत वर्णो (पाटाक्षरों) की रचना की ताकि यह वाद्य ऊँची से लेकर नीची तथा गम्भीर से लेकर मधुर नाद को ध्वनित करने में सक्षम हो सके। यद्यपि आचार्य भरत ने अवनद्ध वाद्यों की संख्या सौ बताई है, परन्तु त्रिपुष्कर के अतिरिक्त 'दुन्दुभि' सहित अन्य किसी अवनद्ध वाद्य में स्वर, प्रहार, अक्षर व मार्जना संयोजन की व्यवस्था नहीं थी। अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण आचार्य भरत ने त्रिपुष्कर (भरत कालीन मृदंग) को अवनद्ध अंग वाद्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाद्य बताया।

त्रिपुष्कर के तीनों भाग-आँकिक ऊर्ध्वक एवं आलिंग्यक का अर्थ इस प्रकार बताया गया है -

**आँकिक-** अंक-अर्थात् गोद में लिटाकर बजाया जाने वाला भाग आँकिक,

**ऊर्ध्वक-** ऊर्ध्व-अर्थात् ऊपर आकाश की ओर करके बजाया जाने वाला भाग ऊर्ध्वक,

**आलिंग्यक-** ऊर्ध्वक भाग के साथ आलिंगित करते हुए बजाया जाने वाला भाग आलिंग्यक कहलाया।

यदि हम साधारण शब्दों में कहें तो ऐसा कह सकते हैं कि आँकिक भाग में बाँया और दाहिना दो मुख होते थे, जो वर्तमान पखावज, मृदंगम व ढोलक इत्यादि के समान होता था, तथा ऊर्ध्वक एवं आलिंग्य में क्रमश: एक-एक मुख होता था, जिसकी झलक जोड़ी वाद्यों अथवा वर्तमान 'तबला' वाद्य में देख सकते हैं।

आँकिक, ऊर्ध्वक तथा आलिंग्यक प्रत्येक के अलग-अलग भाग होते हुये भी साथ-साथ बजाये जाते थे तथा इनके सम्मिलित रूप को 'मृदंग' नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

सम्भवत: त्रिपुष्कर वाद्य के चार मुखों का वादन किसी एक व्यक्ति के लिए एक समय में करना इतना सहज नहीं रहा होगा। क्योंकि एक व्यक्ति एक समय में सिर्फ अपने दो हाथों का ही प्रयोग कर सकता है। अत: आगे चलकर त्रिपुष्कर वाद्य के अलग-अलग भागों में विभक्त होने से आँकिक भाग एक स्वतंत्र वाद्य (वर्तमान पखावज/मृदंग/मृदंगम् ढ़ोलक इत्यादि के सदृश) के रूप में विकसित हुआ तथा साथ ही एक-एक मुख वाले ऊर्ध्वक एवं

आलिंग्यक, दोनों ऊर्ध्वमुखी भागों की जोड़ी अर्थात् 'द्विपुष्कर' वाद्य लोक जोड़ी वाद्यों एवं वर्तमान 'तबला' सदृश वाद्य के रूप में विकसित हुआ।

'जोड़ी' लोकभाषा का शब्द है, अत: जहाँ एक तरफ 'जोड़ी' नामकरण इस वाद्य का लोक से सम्बन्ध प्रकट करता है, वहीं दूसरी तरफ 'द्विपुष्कर' (आदि वाद्य त्रिपुष्कर का भाग) होने का भी संकेत देता है।

गुरुवर पं. छोटेलाल मिश्र जी की रचना 'ताल-प्रबन्ध में बहुत सुन्दर व तार्किक वर्णन किया गया है, कि द्विपुष्कर का मध्ययुग में जब नवीन रूप में आविर्भाव हुआ तो लोक में जोड़ी नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर मुगल प्रभावों के कारण देश के विभिन्न प्रान्तों व स्थानों में इस जोड़ी वाद्य को 'तबला' भी कहा जाने लगा। क्योंकि 'तबला' अरबी या फारसी 'तब्ल' से विकसित तब्ल: शब्द का अपभ्रंश रूप ही है। वास्तव में 'तब्ल' या 'तब्ल:' शुद्ध ऊर्ध्वमुखी अवनद्ध वाद्य वाले संस्कृत शब्द 'ऊर्ध्वक' का ठीक अरबी अथवा फारसीकरण है। क्योंकि 'तब्ल' का शाब्दिक अर्थ है। वे वाद्य जिनके ऊपर चमड़े का आवरण सपाट (Surface) हो।

इसी संदर्भ में डॉ. आबान मिस्त्री जी ने भी अपनी पुस्तक 'पखावज एवं तबले के घराने एवं परम्पराएँ' में इस बात का उल्लेख किया है कि हज़रत अमीर खुसरों ने अपनी फारसी कृति 'एजाज़े खुशरवी' में बादशाह के सम्मुख बजाये जाने वाले जिन वाद्यों का उल्लेख किया है, उसमें 'तब्ल' भी है। परन्तु फारसी भाषा में 'तब्ल' शब्द का प्रयोग प्रत्येक अवनद्ध वाद्य के लिये किया जाता था। अत: अमीर खुसरों ने अपने ग्रन्थ में 'तब्ल' शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया है यह स्पष्ट नहीं है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार तबला-वाद्य का अविष्कार हज़रत अमीर खुसरों ने किया। परन्तु विभिन्न ग्रन्थों एवं पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् ऐसे अनेक तथ्य व प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर यह स्पष्ट होता है, कि 'तबले का अविष्कार अमीर खुसरों ने किया' यह एक भ्रामक धारण मात्र है। क्योंकि अमीर खुसरों का समय काल तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से चौदहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध (जन्म सन् 1253 मृत्यु 1325) तक है जो दिल्ली दरबार में सन् 1275 से 1325 तक दरबारी कलाकार के रूप में थे। वे फारसी संगीत के पण्डित थे परन्तु भारतीय संगीत भी उन्हें बहुत प्रिय था। कुशाग्र बुद्धि एवं प्रतिभा सम्पन्न होने के नाते उन्होंने तत्कालीन जनमानस की बदलती हुई रूचि का अध्ययन किया तथा दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय करके भारतीय संगीत को भी एक नवीन दिशा देने का प्रयास किया तथा साथ ही अनेक तालों की रचना करके भारतीय ताल-शास्त्र को समृद्ध किया। इस आधार पर इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि हज़रत अमीर खुसरों का भारतीय संगीत के क्षेत्र में बहुत योगदान है। परन्तु 'तबला' वाद्य का अविष्कार अमीर खुसरों ने किया, इस बात का कोई भी ठोस प्रमाण किसी भी मध्यकालीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है। यहाँ तक कि हज़रत अमीर खुसरों ने भी अपने ग्रन्थों में तबले का कोई ज़िक्र नहीं किया है।

कुछ लोगों का वह भी मानना है कि तबले का अविष्कार सिधार खाँ ढाड़ी या सुधार खाँ ने किया है। प्राय: सभी घरानों के तबला वादक सुधार खाँ को 'तबला-वादन' का मूल-प्रर्वतक एवं उनके वंशजों व शिष्यों से तबला-वादन की विभिन्न शैलियों का विकास मानते हैं। परन्तु सुधार खाँ के पूर्व भी सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं अठारवीं सदी के पूर्वाद्ध में विभिन्न चित्रों आदि में तबला जोड़ी बजाये जाने का चित्रण प्राप्त होता है। अत: इन प्रमाणों को ध्यान में रखते हुए 'तबला' वाद्य के अविष्कार का श्रेय सिधार खाँ या सुधार खाँ को भी देना तर्कसंगत नहीं है। इसी संदर्भ में यह भी तर्क प्राप्त होता है कि सुधार खाँ का वास्तविक नाम 'सुधार खाँ' नहीं था, बल्कि वर्तमान तबला वाद्य को परिष्कृत करने व उसमें प्रायोगिक रूप से आपेक्षित सुधार करने के कारण इनका उपनाम 'सुधार खाँ' पड़ा होगा।

इसी संदर्भ में कुछ पुस्तकों में एक तथ्य यह भी प्राप्त होता है कि मोहम्मद शाहरंगीले (18वीं श0) के काल में एक अन्य प्रतिभा सम्पन्न कलाकार खुसरों खाँ थे, जो ख्याल गायन को प्रतिष्ठित करने वाले गुणी कालाकार नेमत खाँ (सदारंग) के छोटे भाई थे। खुसरों खाँ अनेक प्रकार के वाद्यों के वादन में निपुण थे। वह सितार-वादन एवं ख्याल गायकी जैसे नवीन विधाओं के प्रचार-प्रसार का युग था। अत: खुसरों खाँ जो कि पखावज-वादन में भी निपुण थे, उन्होंने कुछ नवीन प्रयोग करके पखावज के आधार पर ख्याल गायन-शैली तथा सितार की संगति हेतु उपयुक्त वाद्य 'तबला' का निर्माण किया, क्योंकि महफिलों तथा दरबारों में ख्याल-गायन व सितार इत्यादि के साथ तबला संगति की प्रथा प्राय: उस युग के बाद ही दिखाई देती है। अत: इस प्रकार यह अनुमान लगाया जाता है कि नाम साम्य होने के कारण लोग मोहम्मद शाह रंगीले के कालीन खुसरों खाँ को अलाउद्दीन खिल्जी-कालीन अमीर खुसरों समझ बैठे हों। परन्तु इस तथ्य से भी यह स्पष्ट नही होता की तबले की उत्पत्ति खुसरों खाँ ने किया क्योकि इसके बहुत पहले से ही तबला के समान वाद्य का द्विपुष्कर व जोड़ी वाद्य के रूप में प्रचलन में था। परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान 'तबला' जोड़ी का यह स्वरूप, आकार एवं सज्जा सदियों के निरन्तर परिवर्तनों का प्रतिफल है।

डॉ. आबान मिस्त्री जी ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा है कि, सर्वप्रथम सन 1745 में जयपुर के महाराज सवाई ईश्वरी सिंह के समय में 'जोड़ी' अवनद्ध वाद्य के लिये 'तबला' शब्द प्रयोग किये जाने का प्रमाण प्राप्त होता है, जिसमें उनके गुणिजनखाने के बहीखातों के खर्चे के ब्यौरे में 'तबलों तथा 'मृदंग' की मरम्मत करवाने का उल्लेख है। इसके बाद महाराज सवाई प्रताप सिंह के संरक्षण में लिखित ग्रन्थ 'श्री राधागोविन्द संगीत सार' में भी तबला जोड़ी का वर्णन (सन् 1779 एवं 1804 के बीच) किया गया है, जिसमें तबला व बायाँ के आकार-प्रकार काठ, मुखचर्म (पूड़ी) स्याही, गजरा, बद्धी इत्यादि का विस्तार से विवेचन किया गया है।

इस आधार पर कह सकते हैं कि उपर्युक्त ग्रन्थ में जिस 'तबला' वाद्य का उल्लेख किया गया है, वह तत्कालीन चित्रों में चित्रित 'जोड़ी' व ऊर्ध्वमुखी वाद्य आधुनिक 'तबला' ही है जो अठारवीं शताब्दी में 'तबला'

नाम से प्रचलित हो चुका था। इसके पूर्व 17वीं शताब्दी के चित्रों में तबला जोड़ी का चित्रण दिखाई देने से भी यह स्पष्ट होता है कि आज के इस अतिलोकप्रिय, प्रतिष्ठित एवं समृद्ध अवनद्ध वाद्य के लिये कम से कम सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी से 'जोड़ी' या 'तबला'नाम प्रचलित हो गया होगा। इन तथ्यों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य मत प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार तबले का जन्म मृदंग के आधार पर पंजाब में हुआ क्योंकि पंजाब में बायें पर मृदंग के समान आज भी आटा लगाया जाता है। कुछ लोग लोक वाद्य दुक्कड़ व सम्बल से भी तबले के अविष्कार का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी जनधारणा प्राप्त होती है कि मृदंग को बीच से दो भागों में विभाजित करने से दाहिने और बायें की उत्पत्ति हुई है। अत: हम निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते हैं कि, इस तर्क को पखावज रूपी मृदंग से न जोड़कर भरत कालीन मृदंग अर्थात् 'त्रिपुष्कर' से जोड़ते हुये देखा जाये तो प्रमाणों के आधार पर 'त्रिपुष्कर' के विघटिक होने के फलस्वरूप 'तबला' वाद्य की उत्पत्ति पूर्णत: प्रमाणित हो जाती है।

वर्तमान में कुछ प्रमुख तबला, पखावज व वाद्यों से सम्बन्धित पुस्तके व शोध-ग्रन्थ हैं जिनमें बहुत ही तथ्यपरक अध्ययन किया गया है, जैसे-डॉ0 आबान मिस्त्री जी की पुस्तक- 'पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराएँ, डॉ0 योगमाया शुक्ल जी की पुस्तक 'तबले का उद्गम, विकास एवं वादन शैलियाँ, डॉ0 लाल मणिमिश्र जी की -'भारतीय संगीत वाद्य', पं0 छोटेलाल मिश्र जी की-'ताल प्रबन्ध' तथा पं0 विजय शंकर मिश्र जी की 'तबला-पराण' इत्यादि, इन सभी में पुष्कर वाद्यों के लिये अनेक प्रमाण तथा प्रस्तर शिल्पों के चित्र आदि का उल्लेख है परन्तु अमीर खुसरों के द्वारा तबले के अविष्कार का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

अन्य विद्वानों के साथ-साथ पुज्य गुरुदेव पं. छोटेलाल मिश्र जी ने भी अपनी पुस्तक में निष्कर्ष के रूप में लिखा है, कि **''द्विपुष्कर से जोड़ी-वाद्य, जोड़ी से तब्ल, और अन्तत: तब्ल से वर्तमान ''तबला'' नामकरण हुआ है।**

जन्म शब्द पूर्णत: नव निर्मित होने से सम्बन्धित है। इसलिये जन्म तो 'द्विपुष्कर' के रूप में पहले ही हो चुका था तथा इसके जन्मदाता स्वाति मुनि जी थे यह आचार्य भरत के अनुसार भी प्रमाणित है।

वर्तमान में तबले के छ: घराने प्रतिष्ठित एवं प्रचलित हैं, जिनके नाम व उनके संस्थापकों के नाम इस प्रकार हैं-

| **घराना** | - | **संस्थापक** |
|---|---|---|
| 1. दिल्ली घराना | - | उ. सिधार खाँ ढाड़ी |
| 2. अजराड़ा | - | उ. कल्लू खाँ एवं उ. मीरू खाँ |
| 3. लखनऊ घराना | - | उ. मोदू खाँ व उ. बख्शू खाँ |
| 4.फर्रूखाबाद घराना | - | उ. हाज़ी विलायत अली खाँ |
| 5. बनारस घराना | - | पंडित राम सहाय जी |
| 6. पंजाब घराना | - | लाला भवानी दास जी |

**उपर्युक्त इन पांचों घरानों को दो बाजों (बाज) में बाँटा गयी है-**

| | | |
|---|---|---|
| 1. पश्चिम बाज | - | दिल्ली एवं अजराड़ा घराने की वादन शैली |
| 2. पूरब बाज | - | लखनऊ, फर्रूखाबाद तथा बनारस घराने की वादन शैली। |

पंजाब घराने की वादन शैली में पखावज के बोलों को तबले पर बन्द करके बजाने से एक नवीन वादन-शैली विकसित हुई जिसे 'बन्द' बाज कहा गया।

लेखिका: सहायक आचार्य तबला राजस्थान संगीत संस्थान जयपुर हैं।
Address - Assistant Professor-Tabla
Rajasthan Sangeet Sansthan Jaipur, block no. 10
RKS Shiksha Sankul. Pin-302015
Mobile no- 9810599072

## प्रतिक्रिया

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू '

कला समय का नवीन अंक लोक, जनजाति एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केंद्रित है। बड़ा सुन्दर और संदर्भ से भरा पूरा सचित्र विशेषांक। बड़े श्रम से सामग्री जुटाई गई है और विद्वानों ने नवीनतम पक्षों का तक स्पर्श करते हुए लिखा है। उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण भारतीय विषयों को सम्मिलित करते हुए सम्मान दिया गया है।

इसमें प्रकाशित एक - एक आलेख विस्तार से लिखने का बीज लिए है। संगीत, चित्रकला, समय की धरोहर जैसे नियमित कॉलम, साहित्यिक समाचार तथा प्रतिक्रियाएं आदि तो हैं ही, संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने अपने संपादकीय में भारतीय नृत्य थाती के प्रति अपने सुन्दर दृष्टिकोण का जो परिचय दिया, वह भी संग्रहणीय है। कुल 100 पन्ने कम नहीं हैं। यह कला समय के 29 वे वर्ष में प्रवेश का परिचायक भी है।

# ''शरन रानी वाद्य वीथिका'' देश को एक अमूल्य योगदान

डॉ. कुलविन्दर कौर

1968 में पद्म श्री व 2000 में पद्म भूषण प्राप्त करने वाली श्रीमती शरन रानी बाकलीवाल जिन्हें 'सरोद रानी' के नाम से भी जाना जाता है, का नाम कई क्षेत्रों में प्रथम आता है। वे पहली भारतीय महिला थीं जिन्होंने सरोद वादन सीखा, इससे पहले सरोद पे केवल पुरुषों का विशेषाधिकार था। वह अखिल भारतीय ऑर्केस्ट्रा स्थापित करने वाली प्रथम महिला थीं। वे पहली भारतीय संगीतकार थीं जिन्होंने आस्ट्रेलिया, फिजी द्वीप, ईरान, मंगोलिया आदि देशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत कें कार्यक्रम प्रस्तुत किए। 'पद्म श्री' जैसे राष्ट्रीय सम्मान या नागरिक सम्मान प्राप्त करने वाली भारत की प्रथम महिला वादक के रूप में उन्हें याद किया जाएगा।

श्रीमती शरन रानी बाकलीवाल का जन्म भारत की राजधानी दिल्ली में 9 अप्रैल 1929 को एक गैर संगीतज्ञ, रूढ़िवादी, प्रतिष्ठित माथुर-कायस्थ परिवार में हुआ। उनके दादा रायतुलसीधर एक जाने-माने वकील तथा उनके पिता लाला पन्नूलाल जी का बहुत बड़ा व्यापार था। उनकी माता नन्दरानी इलाहाबाद के विद्वानों और शिक्षाविदों के प्रतिष्ठित परिवार से थीं, उनके मामा डॉ. ताराचन्द प्रख्यात विद्वान और इतिहासकार रहे हैं।

इनका परिवार कई पीढिय़ों से दिल्ली निवासी था। शरन रानी के जन्म के समय संगीत और नृत्य सीखने की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। उन दिनों कला के अन्य रूपों की तरह शास्त्रीय संगीत को भी अच्छी नजर से नहीं देखा जाता था।

उनका नृत्य प्रशिक्षण 'कथक' के लखनऊ और जयपुर घराने में हुआ। उनके नृत्य गुरु महान नर्तक स्वर्गीय अच्छन महाराज थे। उन्होंने मणिपुरी नृत्य की शिक्षा मणिपुर के गुरु नवकुमार सिन्हा से ग्रहण की जो कि शांति निकेतन में रविन्द्रनाथ टैगोर से संबद्ध थे। उन्हें बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न होने का सौभाग्य प्राप्त था। आठ साल की अल्पायु में ही उन्होंने एक पारांगत शास्त्रीय नर्तकी के रूप मे अपना पहला सार्वजनिक प्रदर्शन अच्छन महाराज की मशहूर टोली के सदस्य के रूप में किया।

नर्तकी होने के नाते स्वभावत: ताल और वाद्यों के प्रति उनका विशेष लगाव था। उनमें अन्य भारतीय वाद्यों का इस्तेमाल करने का सामर्थ्य था, परंतु वह सरोद जैसे कठिन वाद्य को पसंद करती थीं, क्योंकि अब तक इसे केवल पुरुषों द्वारा बजाया जाने वाला साज़ माना जाता था। सरोद के चुनाव का कारण था इसकी ध्वनि के प्रति उनका सहज आकर्षण और इसके द्वारा उत्पन्न संगीत बिलकुल उस 'अज्ञात' ध्वनि की तरह था जिसने बचपन से ही उन्हें सम्मोहित किया था।

शरन रानी ने अपना पहला एकल सरोद वादन नौ वर्ष की उम्र में किया। शरन रानी ने स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के दिनों में संगीत और नृत्य के कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभाई तथा रेडियों और रंगमंच में भी भाग लिया।

उन्होंने नृत्य-नाटिकाओं के लिए संगीत बनाने के साथ-साथ कई बार उनमें मुख्य नर्तकी की भूमिका भी निभाई। उन्होंने अखिल भारतीय महिला 'ऑरकेस्ट्रा' की नींव भी रखी। उन्होंने लोक संगीत का भी अध्ययन किया। उनकी अन्तरात्मा बचपन से ही राष्ट्र प्रेमी रही और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में एक छात्रनेत्री के रूप में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई।

सरोद शिक्षा-संगीत सीखने की तीव्र इच्छा के कारण जीवन के आरंभिक दिनों में अपने आस-पास संगीत गुरु की खोज शुरू कर दी। इसी समय वे महान गुरुओं उ. अलाउद्दीन खाँ और उ. अलीअकबर खाँ के संगीत के संपर्क में आई। उन्होंने अपनी संगीत शिक्षा महान संगीतकार मैहर के उ. अलाउद्दीन खाँ से प्राप्त की जो कि रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ के शिष्य थे, जिनका संबंध संगीत के सेनिया घराने से था। शरन रानी ने सरोद वादन की शिक्षा पर जीवन के कई वर्ष समर्पित किए। उन्होंने अलीअकबर खाँ से भी संगीत सीखा। उन्होंने परम्परिक रूप से घराने की विशेष शैली सीखी पर धीरे-धीरे उन्होंने अपनी व्यक्तिगत शैली भी विकसित की उन्होंने संगीत को एक साधक, भक्त या योगिनी की तरह सीखा और रियाज किया। संगीत में उनकी नैसर्गिक प्रतिभा और प्रतिदिन आठ से दस घंटे तक सरोद पर लगाकर और

कठोर अभ्यास ने तथा संगीत के प्रति समर्पण ने ही उन्हें सरोद वादन और संगीत के शिखर पर पहुँचाया।

उन्होंने मैहर में रहकर महान संगीतज्ञों जैसे उ. अलाउद्दीन खाँ, उ. अलीअकबर खाँ, पं. रविशंकर, पन्नालाल घोष, तिमिर बरन के प्रत्यक्ष निरीक्षण और परिलक्षण में संगीत सीखा। उन्होंने सरोद सीखने के लिए दिल्ली के सुख-सुविधापूर्ण शहरी जीवन को छोडक़र मैहर के ग्रामीण परिवेश का चुनाव किया जो कि शास्त्रीय संगीत का मक्का माना जाता था, वहाँ उन्होंने उ. अलाउद्दीन खाँ की देखरेख में संगीत सीखा। उनका गुरु माँ; (श्रीमती अलाउद्दीन खाँ) से काफी लगाव था। उ. अलाउद्दीन खाँ एक आदर्शवादी थे जिन्होंने अपने अनुयायियों के लिए उँचे आदर्श स्थापित किए। उ. अलाउद्दीन खाँ एक सख्त गुरु थे पर अंदर से पिता की तरह भावुक भी थे।

शरन रानी अत्याधिक यात्रा करने वाले संगीतकारों में से थीं। शरन रानी भारत की पहली अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महिला थी तथा पहली भारतीय महिला थी, जिन्होंने भारतीय संगीत को कई देशों तक पहुँचाया।

भारत में शरन रानी की पहचान एक महान और प्रशंसनीय महिला सरोद वादिका के रूप में होती है। शरन रानी एक मात्र ऐसी महिला हैं जिन्होंने वाद्यों का बहुत बड़ा संग्रह किया और उस संग्रह को सम्पूर्ण समाज व आने वाली पीढिय़ों के लिए राष्ट्र को समर्पित किया। स्वतंत्रता पूर्व भारत में अनेक वाद्यों को लुप्त होते देखकर शरण ने पुराने और दुर्लभ वाद्यों की खोज और उनके अर्जन का बीड़ा उठाया और समय पर इन वाद्य यंत्रों का पुनस्र्थापन भी किया। दशकों से उन्होंने दुर्लभ वाद्यों का अतुलनीय संग्रह किया। 1980 में उन्होंने अपने निजि संग्रह में से 224 वाद्य राष्ट्रीय संग्रहालय को भेंटस्वरूप दिए' इन वाद्यों से युक्त वीथिका का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 30 अक्तूबर 1980 को किया और इसे राष्ट्रीय महत्त्व का संग्रह नाम दिया। 1982 में उन्होंने 24 और तत्पश्चात 2002 में उन्होंने राष्ट्रीय संग्रहालय को पुन: 134 वाद्य भेंट किए।

इस प्रकार उन्होंने कुल 382 वाद्य राष्ट्रीय संग्रहालय को दिए। शरन रानी बाकलीवाल संग्रह में भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्रकार के वाद्य हैं।

इस संग्रह में शास्त्रीय संगीत की दोनों धाराओं यानि उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय के वाद्य संग्रहित हैं। उत्तर भारत के वाद्य जैसे-रूद्र वीणा, रबाब, सितार, सरोद, दिलरूबा, इसराज, संतूर, तानपूरा, तबला, पखावज हैं तथा दक्षिण भारत की तंजोरी वीणा, गोट्टूवाद्यम्, तम्बूरा, मृदन्गम्, नाग स्वरम पम्बई इत्यादि भी सम्मिलित हैं।

इस संग्रह से शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य भी देखने को मिलते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के एकतारे, रावण हत्था, ढ़ोल, ढ़ोलक, करणा, घण्टे, घण्टीयां, कई प्रकार के घुँघरू, बाँसुरियाँ, इत्यादि शामिल हैं। ये सब तो थे भारत के शास्त्रीय व लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य इनके अतिरिक्त इस संग्रह में कई विदेशी वाद्य भी शामिल हैं। जो श्रीमती शरन रानी की विभिन्न विदेश यात्राओं के दौरान भेंट किए गए थे जैसे- यूरोप, चीन, जापान, एशिया के वाद्य। विभिन्न वाद्य जो उन्होंने व्यक्तिगत रूप से एकत्रित किये थे। इनमें प्रदर्शित कछुआ सितार विशेष महत्त्व के हैं।

इस वाद्य वीथिका में राजस्थान के विभिन्न राज दरबारें से सम्बन्धित वाद्य हैं जिनमें हाथी दाँत का सुन्दर कार्य और लकड़ी की सुन्दर नक्काशी है। बाबा अल्लाउद्दीन खाँ द्वारा अविष्कृत वाद्य चन्द्र सागर भी इस वाद्य वीथिका में प्रदर्शित है। बनारस के प्रसिद्ध बीनकार स्व. पं. लक्ष्मी प्रसाद की रूद्र वीणा जिसका समय 1860-1926 हैं, स्व. पं. अयोध्या प्रसाद जी की पखावज (1891-1977) व कवी रविन्द्र नाथ टैगोर के संगीतिक गुरु विष्णुपुर निवासी जदुभट्ट की रबाब प्रदर्शित है। लगभग 1850 में बंगाल में बना मन्द्र बहार वाद्य, जिसका उल्लेख सिर्फ किताबों में मिलता है। ऐसा वाद्य भी इस वाद्य वीथिका में हैं। दुर्लभ होते जा रहे वाद्य सुरबहार, सुरसिंगार, दिलरूबा, इसराज इत्यादि यहाँ देखे जा सकते हैं, इस वीथिका में लगभग 1850 के सरोद व सितार हैं जिनसे इनके विकास क्रम को भी देखा जा सकता है। इस वीथिका में भारत के विभिन्न प्रदेशों के शास्त्रीय व लोक वाद्य तो हैं ही।

विदेशी वाद्य भी यहाँ ध्यान आकर्षित करते हैं। जैसे यूरोपीय लायर (19वीं शत) यू. के, पद चालित हारमोनियम, लगभग 1880 ई. पेरिस रांस, यूरोप, संयुक्त राष्ट्र अमरीका का धातु की वृताकार पेटिका में लघुफोनो ग्राम (लगभग 1920 ई.) जापान का बैंजो (1930 ई.), 17वीं 18वीं शती ई. का तिब्बत, चीन का वाद्य-खुला कटोरा, 1950 के लगभग की जापान की बांसुरी लंदन का सेलो 19वीं शती ई. इत्यादि अनेक वाद्य हैं।

श्रीमती शरन रानी का प्रथम सरोद आरंभिक 20वीं शती ई.

**इन वाद्यों की सूची इस प्रकार है:-**

गोपी चन्द, इकतारा, स्व श्री एस.एम. टैगोर की रूद्र वीणा, सुर-सिंगार, स्व. श्री लक्ष्मी प्रसाद मिश्र की रूद्र वीणा, सितार, मल्हार इकतारा, तीन तारा वीणा, गोतु वाद्यम्, सितार- 18वीं शती ई. राजस्थान, सितार, 'कछुआ'- सितार, साज-ए -कश्मीर, सितार, इसराज, रावणहत्था, मन्द्र बहार, सुर-बहार, रबाब-कश्मीर, चन्द्र सारंग- पश्चिम बंगाल, मयूर बीन-कश्मीर, इसराज- पश्चिम बंगाल, श्री जोदू भट्ट का रबाब - आरंभिक 18वीं

शती ई. पश्चिम बंगाल, दिलरूबा, कछुआ सितार, तानपुरा, धनुष एवं बाण, तम्बूरा, सारंगी, ऊद-1900 ई. ईरान, कानून सह सितार, शत् तंत्री वीणा, दक्षिण भारत, यूरोपीय लिअॅर, स्वर मण्डल के प्रकार का वाद्य, संतूर- लगभग, कानून के प्रकार का वाद्य, पदचालित हारमोनियम - लगभग 1880 ई. पेरिस, नल तरंग, यांत्रिक उपकरण युक्त संगीत - पेटिका, धातु की वृत्ताकार पेटिका में लघु फोनोग्राम - लगभग 1920 ई. यूरोप / सं रा. अमेरीका, श्रुति-पेटी, संगीतमय यांत्रिक पक्षी - लगभग 1860 ई. यूरोप, ऑर्गन- लगभग 1880 ई. कलकत्ता, पश्चिम बंगाल, बैंजों - लगभग 1930 ई. जापान, फोनोग्राफ - (एडीसन का एकस्व फोनोग्राफ) 1894 ई. संयुक्त राज्य अमेरीका, हारमोनियम - 1920 ई. मुंबई।

कॅस्टानेट्स लगभग, कबाकस, बेंत से निर्मित वाद्य लगभग 1875 ई., अरीका मॅराकस, कलाई- घंटी, त्रिकोणात्मक वाद्य, सेलो- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन, बॉस ट्यूबा- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन, बिगुल- परवर्ती 19वीं शती ई लंदन, ट्राम्बोन -परवर्ती 19वीं शती ई लंदन, ओबो- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन ,क्लेरियेनेट- परवर्ती 19वीं शती ई लंदन, तुरही- परवर्ती 19वीं शती ई लंदन. बिगुल- परवर्ती 19वीं शती ई लंदन, पार्श्वढोल- (साइड ड्रम) ई लंदन, वॉयलन, पद प्रहारक एवं प्रहारक शलाकाओं युक्त ढ़ोल, बास ट्यूबा -लंदन, इंगलिश तुरही, ट्राम्बोन- 19वीं शती ई. लंदन, स्वर संगीत का नगाड़ा- 19वीं शती ई. लंदन, तुरही -19वीं शती ई. लंदन, कंसर्टिना- 19वी शती ई. यूरोप, स्वर संगीत का नगाड़ा- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन, बास ट्यूबा का नगाड़ा- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन, तुरही का नगाड़ा- परवर्ती 19वीं शती ई. लंदन, कॉर्नेट- परवर्ती 19वीं शती ई. लंद, डफली 19वीं शती ई. उत्तर प्रदेश, मादल, पम्बई, ढ़ोल लगभग 1875 ई. अमरीका, पम्बई, मृदंग, ढ़ोल, खोल, मृदंग, खंजरी 1965 ई. पूर्व भारत, तबला, मारफा (ढ़ोल) लगभग 1850 ई. उत्तर प्रदेश, मादल लगभग 1930 ई. तमिलनाडु, पखावज महान पखावन वादक पंडित अयोध्या प्रसाद द्वारा संचालित लगभग 1900 ई.उत्तर प्रदेश, नगाडा, श्रीमती शरन रानी का प्रथम सरोद आरंभिक 20वीं शती ई.

**लोक वाद्य**

झीका, घंटा, करताल, खुला हुआ कटोरा, चीन बांस- तरंग, शहनाई, सुरनई, नाग स्वरम्, मश्कबीन, हिमाचल प्रदेश, थरई, पुंगी, रणभेरी, नर- श्रृंग, नागतोड़ी - मध्य प्रदेश, नागफनी, खंगलिंग, शंख, श्रृंग, पूर्व भारत, मुरली, वेणु, मोर- छंग, जूरिया पेपा (श्रृंग), हुतुली- (मिट्टी की सीटी), भोरिंडा, घंटियों एवं बकसुए से युक्त चमड़े की पेटी, संगीतमय कंठाभूषण, नंदी शीर्ष युक्त पंच-घंट, घंटी, घुंघरू, संगीतमय कंठाभूषण, पालने में लटकाने वाला झुनझुना, मध्य प्रदेश, संगीतमय लट्टू, गज-घंट, श्रृंग, घंटा 'खटखटा', कटोराझांझ, पं. शम्भु महाराज के घुंघरू पूर्वी उत्तर प्रदेश, पैजना शम्भु महाराज के घुंघरू मध्य प्रदेश, झील 20वीं शाती ई. राजस्थान, नक्कारा, चड़चड़ी 20वीं शती ई. पश्चिम बंगाल, भारफा लगभग 1850 ई. उत्तर प्रदेश, नागस्वरम् लगभग 1800 ई. चिंगलपट, तमिलनाडु , श्रुति लगभग 1800 ई. , भेर 20वीं शती बिहार, रण-सींगा, मुख-वीणा परवर्ती 19वीं शतीं ई. तमिलनाडु (मुख-वीणा के विख्यात विद्वान स्व. श्री वेणुगोपाल रेड्डी इसे बजाया करते थे), दीर्घ सोंगा, मुख-वीणा लगभग 1960 ई. कर्नाटक , थुनशेन 18वीं शती ई. उत्तर भारत , सुरनई लगभग 18वीं शती, उत्तर भारत।

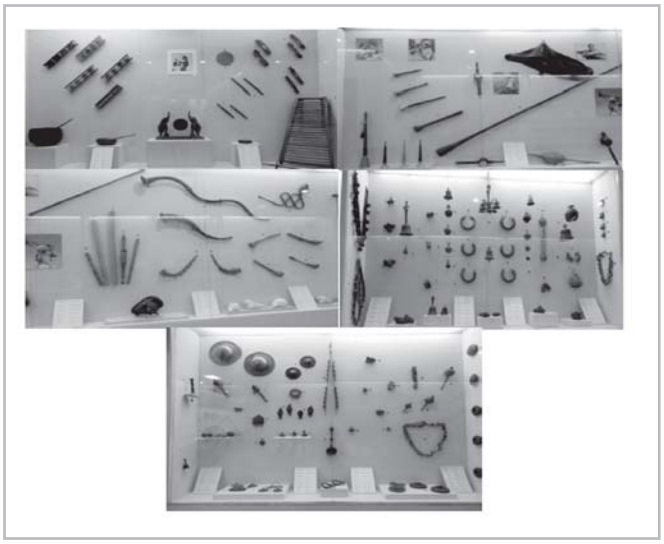

इस वीथिका में वाद्यों को बड़ी संवेदन शीलता के साथ रखा गया है। वाद्यों को देखने से लगता है कि जैसे वह अभी भी बजने के लिए तैयार हैं इस प्रकार से भारत व विभिन्न देशों से वाद्यों को यहाँ लाकर एकत्रित किया गया है जिन वाद्यों के प्रदर्शन से हम लगभग 300 वर्ष पुराने वाद्यों के बदलते स्वरूप को बखूबी पहचान सकते हैं।

वाद्यों का यह विशाल संग्रह आज भी भारत की गौरव मय संगीत परम्परा की झांकी प्रस्तुत करता है।

संपर्क : Assistant Professor
Department of Music Goswami Ganesh Dutta Sanatan
Dharma College, Sector : 32 C, Chandigarh 160030

# इसराज: इतिहास और शांतिनिकेतन अनुलग्नक

सौगत दास

**संक्षिप्त परिचय**

इसराज वाद्य की उत्पत्ति लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व हुई थी। प्राचीन भारतीय संगीत में जिन दो वाद्यों का उल्लेख मिलता है, वे हैं छड़ी से बजाया जाने वाला वाद्य, मंद्रभार और तौष या मयूरी वीणा। हालाँकि, इस संदर्भ में, हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि इसराज की उत्पत्ति पर सारंगी का भी प्रभाव है। सारंगी एक अन्य वाद्य है जिसे छड़ी से बजाया जाता है।

लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व, बंगाल में प्रचलित संगीत के प्रमुख केंद्र बिष्णुपुर और कोलकाता थे। उस समय, भारत के लखनऊ और बनारस क्षेत्रों में टप्पा और ठुंमरी गीत प्रचलित थे, लेकिन बंगाल में मुख्यतः ध्रुपद गीत प्रचलित थे। इसी दौरान, बिष्णुपुर के कुछ संगीतकार टप्पा और ठुंमरी सीखने के उद्देश्य से बनारस और लखनऊ क्षेत्रों में गए। उसी समय, ईश्वरी राज प्रसाद नामक एक संगीतज्ञ अपने शिष्यों के साथ संगीत सीखने पंजाब से इस क्षेत्र में आए। इनमें बिहारीजी और लक्ष्मणदासजी प्रमुख थे। ऐसा माना जाता है कि इन दोनों ने ही इसराज का आविष्कार किया था और अपने गुरु ईश्वरी राज प्रसाद के नाम पर इस वाद्य का नाम इसराज रखा, जो बाद में इसराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक अन्य प्रचलित मत यह है कि काशी धाम के संगीत प्रेमी नबीबख्श सारंगी वादक ने इस वाद्य का आविष्कार किया था।कई लोगों का मानना है कि पिछला मत इस मत से अधिक स्वीकार्य है।

यह वाद्य अरब से आया था, लेकिन हमें इसके बारे में कोई विस्तृत जानकारी या इसराज वाद्य का नाम फारस से आयातित किसी वाद्य के नाम के साथ नहीं मिलता, न ही हमें इसका कोई सीधा सामान्य नाम मिलता है। और किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इस वाद्य का कोई नाम नहीं है। इसराज की उत्पत्ति के बारे में ऐसे मत प्रचलित हैं, जिन्हें क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने अपनी पुस्तक "असु-रंजनी तत्व" के "संगीत सार" नामक लेख खंड में लिखा है। संगीत के इतिहास की विभिन्न पुस्तकों में हमें इसराज वाद्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि राम प्रसन्न बंदोपाध्याय ने अपनी पुस्तक "इसराज तरंग" में जो कहा है, उसमें भी ईश्वरी राजप्रसाद का नाम ज़्यादा आता है।

ASESH CHAMINDRA BANDJHYOPADHYAY

संयोग से, यह कहना ज़रूरी है कि इसराज वाद्य केवल लखनऊ, बनारस या काशी में ही नहीं, बल्कि गया क्षेत्र में भी प्रचलित था। लखनऊ और बनारस क्षेत्रों में, टप्पा और ठुंमरी गीतों के साथ सारंगी का प्रयोग एक संगत वाद्य के रूप में किया जाता था, लेकिन सारंगी बजाना इतना आसान नहीं है। सारंगी वाद्य में पर्दा नहीं होता, इसकी त्वचा मोटी होती है, इसमें इस्तेमाल होने वाले तार भी मोटे और जानवरों की खाल से बने होते हैं और इसे नाखून के ठीक ऊपर वाले हिस्से से बजाया जाता है। परिणामस्वरूप, इस वाद्य को बजाना काफी कठिन है।सारंगी वादक मुख्यतः टप्पा और ठुंमरी गायकों और गायिकाओं के साथ संगत करते थे। इस समय के दौरान प्रदर्शन करने वाले गायक ज्यादातर बाईजी थे और उनकी कोई सामाजिक स्थिति नहीं थी। इस स्थिति में दो समस्याएँ उत्पन्न हुईं। पहली, सारंगी वाद्य बजाना कठिन था और दूसरी, सारंगी वादकों की सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं थी, साथ ही सारंगी वादकों की संख्या भी अपर्याप्त थी।

इन तीन कारणों से, उस समय आम लोग एक ऐसा वाद्य चाहते थे जिसे बजाना आसान हो, सामाजिक प्रतिष्ठा हो और सीखना आसान हो। यह कहना ज़रूरी नहीं कि उस वाद्य की ध्वनि सारंगी वाद्य जैसी ही होगी। इस संदर्भ में, यह कहना होगा कि हमारे सारंगी जैसा वाद्य बनाने के लिए, हमें जो दो ध्वनियाँ निकालनी हैं, उन्हें सारंगी के मटके वाले भाग से निकालकर फैलाकर बजाना होगा। इसलिए, मंद्रभर या सितार के ऊपरी भाग और सारंगी के निचले भाग, यानी मटके वाले भाग को मिलाकर एक वाद्य बनाया गया, जिसका नाम दिलरुबा रखा गया। जो आकार में सितार या मंद्रभर से थोड़ा छोटा होता है, जिसकी ध्वनि सारंगी जैसी होती है और जिसका इस्तेमाल टप्पा या ठुंमरी गीतों के साथ किया जा सकता है। इसके अलावा, इसका उपयोग ध्रुपद गीतों के साथ भी किया जा सकता है। इस वाद्य को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इस वाद्य का एक अन्य रूप इसराज कहा जा सकता है। यहाँ यह कहना होगा कि इसराज की सटीक उत्पत्ति के बारे में हमें अभी तक सटीक जानकारी नहीं मिली है। हालाँकि, वाद्य पर एक

स्क्रीन होने के कारण इसे बजाना आसान हो गया था। हालाँकि, इस वाद्य को बजाने में कई समस्याएँ भी देखी गईं। सबसे पहले, चूँकि इस वाद्य की छड़ की लंबाई अधिक थी, इसलिए छोटे मुरकी के काम को बजाना लगभग असंभव था। इस मुरकी का प्रयोग टप्पा या ठुमरी गीतों में अधिक किया जाता है। हालाँकि, ध्रुपद गीतों के साथ इस वाद्य की संगत अपेक्षाकृत आसान थी।

हम इस वाद्य की उत्पत्ति के बारे में बात कर चुके हैं। लेकिन हमें अभी भी यह नहीं पता है कि इस वाद्य की उत्पत्ति का सही स्थान कहाँ है। यह वाद्य सबसे पहले पश्चिम बंगाल में नहीं बनाया गया था, यह वाद्य लखनऊ या बनारस क्षेत्र में बनाया गया था। इसके बारे में कोई सटीक जानकारी नहीं है। किसी भी अन्य समकालीन संगीत के इतिहास में इस वाद्य के निर्माण के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिली है। हमें नहीं पता कि इसराज की रचना दिलरुबा से हुई थी या इसराज एक स्वतंत्र वाद्य के रूप में उभरा। कई लोगों का मानना है कि दिलरुबा वाद्य को बाद में ईश्वरी राजप्रसाद के शिष्यों ने रूपांतरित किया, जिन्होंने दिलरुबा वाद्य के आकार में कुछ बदलाव किए और ईश्वरी राजप्रसाद के नाम पर इसका नाम इसराज रखा। इसराज के नामकरण पर कई अन्य मत भी हैं। मेरा मत सबसे उचित प्रतीत होता है। इसराज की रचना की गई और ईश्वरी राजप्रसाद के साथ इसे पंजाब ले जाया गया। आजकल, हम पंजाब के गुरुद्वारों में इसराज और दिलरुबा बजाकर गुरबानी कीर्तन गाने की प्रथा देखते हैं। और बिष्णुपुर के बनर्जी परिवार के लोग इस वाद्य को बंगाल लाए थे। मुझे लगता है कि उन्होंने सोचा था कि इसराज जिस तरह का मीड गमक बजा सकता है, वह बिष्णुपुर में प्रचलित ध्रुपद गीतों के लिए काफी उपयुक्त है। इसलिए, बिष्णुपुर के संगीत साधक इस वाद्य को अपने गीतों के साथ एक संगत वाद्य के रूप में बजाने के लिए लाए थे।

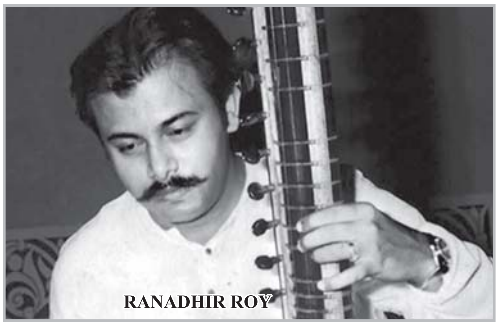

RANADHIR ROY

**सेकल एकल के संगीतकार (OLD AND NEW MUSICIAN)**

आज हम जिस संगीत शैली का अभ्यास कर रहे हैं, उसकी चर्चा या उस शैली के बारे में चिंतन 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ। इससे पहले, घराना जैसी कोई चीज़ नहीं थी। लोग आमतौर पर अपनी पहल पर विभिन्न स्थानों पर गायन और वादन का अभ्यास करते थे। कुछ लोगों ने किसी विशेष स्थान पर ध्यान केंद्रित करते हुए, अपने पारिवारिक या संस्थागत शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से घराने की अवधारणा बनाई।

19वीं शताब्दी के आरंभ में, कनाईलाल ढेरी और हनुमान दास सिंह गया में दो प्रसिद्ध इसराज वादक थे। बाद में उन्होंने अपने शिष्यों को जन्म दिया। हालाँकि, इन दोनों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चंद्रिका प्रसाद दुबे, मियाज़ुद्दीन खान आदि भी थे। ऐसा कहा जाता है कि कनाईलाल ढेरी महाशय अपनी वृद्धावस्था में कोलकाता आए और रवींद्रनाथ के परिवार से मिलने के कारण, इसराज की वहाँ शिक्षा दी। ऐसी भी जानकारी है कि उन्होंने विवेकानंद के घर पर इसराज की शिक्षा दी थी। हम जानते हैं कि स्वामी विवेकानंद स्वयं और उनके भाई हबू दत्त इसराज बजाना जानते थे।

बिष्णुपुर स्थित बंदोपाध्याय परिवार पश्चिम बंगाल में इसराज के संरक्षक थे। वे बिष्णुपुर में रहते थे। बिष्णुपुर के संगीतकार आसानी से बिष्णुपुरी शास्त्रीय संगीत या इसराज वाद्यों पर शास्त्रीय संगीत बजा सकते थे। इसके अलावा, इसराज का उपयोग बिष्णुपुर के शास्त्रीय संगीत के साथ किया जाता था। वहाँ के प्रसिद्ध बादक वादक रामशंकर भट्टाचार्य थे। बाद में रामशंकर भट्टाचार्य पर केंद्रित इसराज बजाने वालों में क्षेत्रमोहन गोस्वामी, अनंत लाल बंदोपाध्याय, दीनबंधु गोस्वामी, रामकेशव भट्टाचार्य, रामप्रसन्न बंदोपाध्याय, सुरेंद्रनाथ बंदोपाध्याय, गोपेश्वर बंदोपाध्याय, रमेशचंद्र बंदोपाध्याय आदि शामिल हैं। इसके अलावा, वर्तमान समय में इसराज बजाने वालों में अशेष चंद्र बंदोपाध्याय और बाद में शांतिनिकेतन के उनके शिष्य शामिल हैं।

वर्तमान इसराज वादकों में सबसे पहले शांतिनिकेतन के अशेष बंद्योपाध्याय (1920 - 1992) का उल्लेख किया जा सकता है। वे भी बिष्णुपुर के मूल निवासी थे और रवींद्रनाथ टैगोर के आह्वान पर शांतिनिकेतन चले गए थे। बाद में, वे शांतिनिकेतन में ही रहे और अपने छात्रों को इसराज की शिक्षा दी। उनके द्वारा सिखाए गए सबसे प्रमुख संगीतकारों में से एक थे रणधीर रॉय (1943-1989), उनके बाद उनके शिष्य बुद्धदेव दास (1961-) और उनके बाद आलोक बंद्योपाध्याय, शुभायुसेन मजूमदार, सौगत दास, देबयान मजूमदार, अर्कज्योति बंद्योपाध्याय, द्वैपायन सरकार, प्रेमांशु सेन, सुतनु सरकार, संदीप सेन, तथागत मिश्रा और अन्य ने इसराज बजाया। इस संदर्भ में एक बात कहना ज़रूरी है कि इसराज मूलतः दो लकड़ियों, सागौन और तुन, से बनता है। सागौन की लकड़ी से बने वाद्यों और तुन की लकड़ियों से बने वाद्यों की ध्वनि में काफ़ी अंतर होता है। इसराज बनाने वाले असल में कलाकार होते हैं। मेरा मानना है कि अगर वे वाद्य सही ढंग से नहीं बनाते, तो संगीतकारों के लिए संगीत का सही ढंग से प्रदर्शन करना असंभव है।

**वादन या वादन शैली की विशेषताएँ**

इसराज वाद्य एक तार वाला वाद्य है। इस वाद्य को तार पर डंडी मारकर या खींचकर बजाया जाता है। इस वाद्य को बजाने की विधि कुछ जटिल है। दाहिने हाथ में डंडी पकड़कर, उसे घड़े के ब्रिज के पास तार पर रगड़ा जाता है। इससे स्वर उत्पन्न होता है और वह राग समान रूप से प्रवाहित हो पाता है। इस वाद्य को आघात करके नहीं बजाया जाता। राग खींचकर बजाया जाता है। इस वाद्य को बाएँ हाथ की उंगलियों को एक विशेष प्रकार से पर्दे पर रखकर और उंगलियों से पर्दे को दबाकर बजाया जाता है। उंगलियों को

पर्दे पर उठाकर स्वर उत्पन्न किया जाता है।

इस वाद्य में मुख्यतः दो प्रकार की बैठक देखने को मिलती हैं। जब इस वाद्य का आविष्कार सर्वप्रथम हुआ था, तब इस वाद्य को गर्दन पर रखकर और पैरों से कुछ हद तक दबाकर या घड़े को वीरा पर रखकर बजाया जाता था। लेकिन बाद में, बिष्णुपुर के कुछ प्रमुख संगीतकारों ने इस वाद्य को पैरों पर खड़ा करके बजाने की विधि का आविष्कार किया, जो वर्तमान में शांतिनिकेतन में प्रचलित है। वाद्य को सीधा खड़ा करके बजाने की विधि के बारे में सभी जानते हैं। बिष्णुपुर के एक लोकप्रिय इसराज वादक सुरेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय का एक बार पैर टूट गया था। जब तक उनका पैर नहीं टूटा, तब तक वे वाद्य को कंधे पर रखकर बजाते थे। लेकिन पैर टूट जाने के कारण वह तरीका अपनाना संभव नहीं था। फिर, वाद्य को खड़ा करके बजाते समय उन्होंने पाया कि इसे खड़े रखकर बजाना ज्यादा आसान है क्योंकि सभी तार दिखाई दे रहे थे। तब से इसराज वाद्य को खड़ा करके बजाना एक चलन बन गया। शांतिनिकेतन आने के बाद अशेष चंद्र बंद्योपाध्याय ने इसे खड़े रखकर बजाने की इस विधि में थोड़ा बदलाव किया। पहले इसे बीड़ पर खड़ा करके बजाया जाता था, अशेष चंद्र ने अर्ध पद्मासन में बैठकर और इसे अपनी गोद में पैर रखकर बजाने की विधि शुरू की। गर्दन पर रखकर और खड़े रखकर बजाने के कुछ फायदे और नुकसान हैं, जिनकी चर्चा हम इस समय सीमित दायरे में नहीं कर रहे हैं। इसके अलावा, इस मुद्दे पर विस्तृत और गहन शोध की भी आवश्यकता है।

BUDDHADEB DAS

**शांतिनिकेतन का योगदान**

शांतिनिकेतन में इसराज वाद्य बजाने की मुख्य विशेषता यह है कि इसराज वाद्य को खड़े रखकर बजाया जाता है। इसराज वाद्य को अर्ध पद्मासन की मुद्रा में पैरों के बल बैठकर बजाया जाता है। इस प्रकार बजाने पर यह देखा गया कि सबसे पहला पर्दा, अर्थात् छड़ से जुड़े हुए पर्दे, आसानी से दिखाई देते हैं, और नीचे के पर्दे भी दिखाई देते हैं। इसलिए, खड़े रखकर बजाने पर ऊपर से नीचे तक सभी पर्दों तक पहुँचना आसान होता है। तभी से बिष्णुपुर क्षेत्र में खड़े रखकर इसराज बजाने की प्रथा शुरू हुई। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भतीजे अशेष चंद्र इसी प्रकार खड़े रखकर इसराज बजाते थे। अशेष चंद्र कई वाद्य बजाना जानते थे, जिनमें से एक इसराज भी था। रवींद्रनाथ, अशेष चंद्र को नारजोल महल से शांतिनिकेतन लाए थे। प्रसंगवश, यह कहना आवश्यक है कि टैगोर परिवार की संगीत साधना बिष्णुपुर में केंद्रित थी और विभिन्न तरीकों से बिष्णुपुर के लोग टैगोर परिवार के पास जाकर नियमित रूप से संगीत सिखाने का दायित्व लेते थे। इस संदर्भ में, एक बात तो कही जा सकती है कि रवींद्रनाथ के गीतों की शैली बिष्णुपुर क्षेत्र की गीतों की शैली से मिलती-जुलती है। लेकिन उस शैली ने कभी भी लखनऊ और बनारस क्षेत्र की गीतों की शैली का अनुसरण नहीं किया। स्वाभाविक रूप से, रवींद्रनाथ अपनी गीत शैली को आगे बढ़ाने के लिए और शांतिनिकेतन में टप्पा गीतों के शिक्षक के रूप में अशेषचंद्र को लाए। और अशेषचंद्र के इसराज के बाद, रवींद्रनाथ ने गीतों के संगत वाद्य के रूप में काफी महत्व प्राप्त किया। हालाँकि यहाँ यह अवश्य कहना होगा कि जोड़ासाँको टैगोर परिवार में इसराज वादन की प्रथा लंबे समय से चली आ रही थी।

हम इस विषय पर विस्तार से नहीं जाएँगे। हालाँकि, यह सच है कि यदि अशेषचंद्र शांतिनिकेतन नहीं आते, तो यह नहीं कहा जा सकता कि शांतिनिकेतन का इसराज वादन पूर्णता तक पहुँच पाता या नहीं। रणधीर रॉय शांतिनिकेतन में अशेष चंद्र के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। बहुत कम उम्र से ही रणधीर रॉय इसराज बजाने में निपुण हो गए थे। इतना ही नहीं, उन्होंने इसराज वाद्य में भी बदलाव किया। मैंने सुना है कि अशेष चंद्र अक्सर अपने शिष्य से कहते थे कि इसराज वाद्य का आकार-प्रकार उतना सुंदर नहीं है। इसकी धुन सुंदर तो है, लेकिन दार्शनिक नहीं है। इसलिए रणधीर रॉय ने इस वाद्य को बारीकी से परिष्कृत किया। सबसे पहले, उन्होंने वाद्य को लंबा बनाया, दूसरे, उन्होंने वाद्य के कुण्डे को बड़ा किया। तीसरे, ऊपर एक और तुम्बा लगाया गया ताकि वाद्य का क्षेत्र थोड़ा भारी हो और पैरों पर बैठकर बजाने में सुविधा हो। चौथे, मूल चार तारों के बजाय, इस वाद्य पर कुल छह तार लगाए गए, जिनमें से तीन को मुख्य तारों के रूप में बजाया जाता है। जिनकी मदद से संगीत के तीन सप्तक बजाना संभव है।

अन्य तीन तारों का उपयोग चिकारी की तरह किया जाता है। यह संशोधन इस वाद्य को पारंपरिक वाद्यों की तुलना में भारतीय शास्त्रीय संगीत बजाने के लिए उपयुक्त बनाता है। उन्होंने न केवल वाद्य की संरचना में परिवर्तन किया, बल्कि वाद्य बजाने के लिए आवश्यक कई अन्य परिवर्तन भी किए, जिनमें दो अंगुलियों का उपयोग, छोटी छड़ियों का उपयोग, संगीत उत्पन्न करने के लिए कटी हुई छड़ियों का उपयोग आदि शामिल हैं। उन्होंने इसराज वाद्य के तारों में भी परिवर्तन किया। वे विदेश से कुंडलित स्प्रिंग वाले तार लाए, जो सेलो नामक वाद्य में प्रयुक्त होने वाले तारों के समान थे, और उन्हें इसराज वाद्य में लगाया, जिससे वाद्य की ध्वनि में विशेष गंभीरता आ गई।

रणधीर रॉय ने बाद में पंडित वी.जी. योग से लंबे समय तक संगीत सीखा। इसलिए, रणधीर रॉय का वादन विष्णुपुरी संगीत के साथ-साथ वी.जी. जोग से भी प्रभावित था। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इन दोनों के प्रभाव में रणधीर रॉय ने जिस नई संगीत शैली का निर्माण किया, वह इसराज

वाद्य के माध्यम से शांतिनिकेतन में स्थापित हुई। शांतिनिकेतन में एक नए इसराज, वादन की एक नई शैली का जन्म हुआ। बाद में, उनके शिष्य आज भी वादन कर रहे हैं। रणधीर रॉय का असामयिक निधन हो गया। उनके सुयोग्य शिष्य विश्वभारती संगीत भवन के इसराज विभाग के प्रोफेसर बुद्धदेव दास हैं। बुद्धदेव दास ने अपने अथक परिश्रम से अनेक विद्यार्थियों को इसराज सिखाया है और अभी भी सिखा रहे हैं। बुद्धदेव बाबू के विद्यार्थी भी नई पीढ़ी को इसराज बजाने के लिए निरंतर प्रोत्साहित कर रहे हैं।

**संगत और एकल शास्त्रीय संगीत वादन**

इसराज वाद्य अब इतना समृद्ध वाद्य है कि यह भारतीय शास्त्रीय संगीत को पूरी तरह से अभिव्यक्त करने में सक्षम है और साथ ही इसे विभिन्न प्रकार के गीतों के संगत वाद्य के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस संदर्भ में मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। इसराज एक ऐसा वाद्य है जिसके माध्यम से गायन और वाद्य संगीत के तंत्र वाद्यों का वादन संभव है। हम रवींद्र संगीत की संगत के लिए इसराज को एक आवश्यक वाद्य के रूप में कह सकते हैं।

**भविष्य**

हम यह मान सकते हैं कि इसराज वाद्य का संबंध भारतीय-इस्लामी संगीत परंपरा से नहीं है। अब हम लगभग सभी जानते हैं कि यह वाद्य फारस से हमारे देश में नहीं आया, बल्कि शायद यह वाद्य विभिन्न वाद्यों के संयोजन से बना और अठारहवीं शताब्दी के अंत या उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में विभिन्न कलाकारों के हाथों विभिन्न स्थानों पर फैला। जैसा कि मैंने पहले कहा है, इस शैली का विचार बाद के समय की देन है। उससे पहले, व्यक्तिगत पहल पर वाद्य बजाना मुख्य बात थी। इस आधार पर, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसराज वाद्य का प्रसार पंजाब और बिष्णुपुर में हुआ। और बिष्णुपुर के बाद, शांतिनिकेतन ने बिष्णुपुर की उस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। यह वाद्य नया है। इस वाद्य का प्रचार और विस्तार करना, इसे पूरी दुनिया तक पहुँचाना हमारा काम है, जो अभी तक लगभग कुछ भी नहीं किया गया है। हमें लगता है कि इस वाद्य पर शास्त्रीय संगीत बजाने का पूरा प्रयोग या प्रयास अभी तक नहीं किया गया है। इसराज के कई पहलू, चाहे वह एक संगत वाद्य के रूप में हो या एकल शास्त्रीय संगीत वाद्य के रूप में, अभी भी समक्ष नहीं आए हैं।

Aassistant Teacher
Add: Gurupally west, Santiniketan
Birbhum , West Bengal Pin – 731235
Mob.: 9734140464

शब्द पुष्पांजलि

## डॉ रामदरश मिश्र का निधन साहित्य की अपूरणीय रिक्तता

देवउठनी एकादशी के पूर्व ही हिंदी और भोजपुरी साहित्य के एक स्थापित हस्ताक्षर का महाप्रयाण हुआ साहित्य संस्कृति और समाज के साथ लिखने पढ़ने वालों में यह खबर दुःख के साथ सुनी गई।सच है कि एक सौ साल से अधिक उम्र और सात दशकों की साहित्य यात्रा अब मौन हो गई।गोरखपुर के डुमरी में जन्में डॉ मिश्र ने लेखन की विभिन्न विधाओं में खूब लिखा और सार्थक लिखा, कालजयी लिखा।

कविता, कहानी, उपन्यास, ग़ज़ल, गद्य, पद्य कथा, आलोचना सहित अनेक रचनाएं रची और धीरे धीरे अन्ततः उनकी कलम थम गई। दूसरा घर, जल टूटा हुआ, अपने लोग, बबूल और कैक्टस, बिना दरवाजे का मकान, सहचर है समय, पानी के प्राचीर आदि कईउपन्यास कहानी संग्रह लिखे। एक कविता की पंक्तियां बेहद प्रेरक लगी **"मत उदास हो, कल, फिर सुबह नई होगी"** आशा की किरण बन गई इसी तरह बनाया है, मैंने ये घर धीरे धीरे यह संतोष और धैर्य से जुड़ता प्रतीत होता है और यह उनके जीवनकाल के उत्तरार्ध में प्रमाणित भी हुआ।

सात दशकों तक लिखने पढ़ने के बाद 2011 में उन्हें व्यास सम्मान, 2015 में आपको साहित्य अकादमी अवॉर्ड, 2021 में डॉ मिश्र को सरस्वती सम्मान और अभी 2025 में आपको पद्मश्री अवॉर्ड प्रदान किया गया। एक मिडिया साथी ने पिछले दिनों पद्मश्री अलंकृत होने पर संवाद किया उनके शब्दों में सौ बरस के किसी व्यक्ति से मिलना, केवल मिलना नहीं होता, एक दीक्षा होती है। एक पूरी शताब्दी को आप सुन रहे होते हैं। परंपरा को समझ रहे होते हैं। जीवन की कूची जितने रंगों से भरी होती है, सब देख रहे होते हैं। सौभाग्य रहा कि मैं रामदरश मिश्र जी के जीवन और लेखन पर उनसे बात कर सका। वे जिस तरह शब्दों से आत्मीय संवाद रखते थे दुर्लभ है। उन्होंने बहुत अच्छी बात कही थी कि **मैंने कभी महत्वाकांक्षा नहीं पाली। अपना काम करता रहा। 'धीरे-धीरे' यही मेरा ध्येय वाक्य रहा।** यही शायद उनकी दीर्घायु सादगी और लेखकीय ऊर्जा का रहस्य था। निस्पृह। कर्मशील। हिंदी साहित्य की दुनिया में दशकों तक किनारे पर खड़े वे धीरे-धीरे काम करते रहे। जीवन के उत्तरार्ध में बहुतों की कामना ही रह जाती है। दुनिया में वह सब मिला जिसे पाने की डॉ. रामदरश जी एक पूरी परंपरा थे। सहजता की। जीवनोत्सव की। कर्मशीलता की। उनका जाना हिंदी शताब्दी की एक भरी-पूरी उपस्थिति की रिक्तता है। जैसे, घर के बुजुर्ग का जाना है।

रपट: डॉ घनश्याम बटवाल मंदसौर

**(कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि )**

# शततंत्री से संतूर तक

डॉ. वीथिका टिक्कू

संतूर एक **प्राचीन वाद्य** है जिसका इतिहास कई सदियों पुराना है। यह वाद्य अपनी मधुर ध्वनि और अनोखी शैली के लिए जाना जाता है। संतूर की उत्पत्ति भारत वर्ष के जम्मू-कश्मीर राज्य में हुई, जिसे लोक संगीत के लिए जाना जाता है; और धीरे धीरे पूरे विश्व में संतूर की मधुर आवाज और अद्वितीय खूबीओं के कारण इसका प्रसार हुआ। इसकी **उत्पत्ति शततंत्री वीणा** से मानी जाती है क्यूँ की शततंत्री वीणा का उल्लेख याज्ञवल्क्य-स्मृति में भी आया है। संभवतः ये वीणा इस काल में धार्मिक अवसरों पर ही अधिक उपयोग में आती थी।

इस वाद्य को अखरोट/शहतुत की लकड़ी से बनाया जाता है, जो श्रीनगर में बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। इसकी आकृति संबलंब चतुर्भुज पर स्थापित है, जो कि श्री यंत्र के आकार जैसा है, जिसके कारण इसका एक आध्यात्मिक मूल्य भी है। बाँस या लकड़ी की दो छड़ियों, जिसे 'काष्ठ' भी बोला जाता है, उसके आघात से इस वाद्य को बजाया जाता है।

कश्मीरी लोक संगीत के अनुसार, जब यह वाद्य सूफियाना संगीत में बजाया जाने लगा, तो इस वाद्य को काफी प्रसिद्धि मिली। स्थानीय कलाकारों ने इस वाद्य को सीखा और आगे बजाने और सिखाने की परंपरा चलायी। पर्शीया के संतीर वाद्य की नाम से प्रभावित होके इसका नाम संतूर प्रचलित हुआ । इस वाद्य को बजाने की परंपरा में उस्ताद मोहम्मद **टिब्बत बकाल** और **रमजान जू** जैसे महान कलाकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तत्पश्चात शास्त्रीय संगीत के दो दिग्गज कलाकार **पंडित शिवकुमार शर्मा** व **पंडित भजन सोपोरी** ने भारत के शास्त्रीय संगीत में इस वाद्य को अवतरित किया। जैसे कि कश्मीरी लोक संगीत के अनुसार ये वाद्य उपयुक्त था, परंतु दोनों कलाकारों ने इसे भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग हेतु विकसित किया।

पंडित शिवकुमार शर्मा ने संतूर वाद्य को शास्त्रीय संगीत में जगह दिखलाई और इसे राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी बजाया और सिखाया। भारत में तब तक संतूर जैसा वाद्य किसी ने शास्त्रीय संगीत में सुना नहीं था, जब पं. शिव जी ने इसे फिल्मी संगीत जगत में पेश किया तो इसे दूर देश के लोग जानने पहचानने लगे। पं. शिवकुमार जी जो की एक बहुत कुशल तबला वादक थे एवं जम्मू कश्मीर के जम्मू प्रांत से सम्बन्ध रखते थे, अपने संगीतिक उपलब्धि के कारण उन्हें **पद्मविभूषण** के उपाधि 2009 में मिली। पंडित जी के दो पुत्र राहुल व रोहित, जिसमें से राहुल शर्मा अब संतूर की विद्या को सफलता पूर्वक आगे लेकर चल रहे हैं। शिवकुमार शर्मा जी की 10 मई 2022 को मुंबई में हार्ट-अटैक के कारण 84 की उम्र में मृत्यु हो गई। उनके ऊपर ईना पुरी द्वारा लिखी गई किताब व एक अंतरध्वनि नाम से बायोपिक भी बनी।

पं. भजन सोपोरी ने इस वाद्य में शास्त्रीय वाद्य जैसे वीणा, व्हायलीन, सितार के गुण डाले और संतूर वादन की एक अनूठी शैली विकसित की। पं. सोपोरी जी जो की कश्मीर के सोपोर गाँव से सम्बंधित थे; अपने पिता से सितार व गायन में प्रशिक्षण ले चुके थे। एवं अपनी मास्टर्स अंग्रेजी व पाश्चात्य कम्पोजिशन में अमेरिका से प्राप्त कर चुके थे। स्वयं अपने अनूठी शैली व प्रस्तुतिकरण के लिए उन्हें 2004 में **पद्मश्री** से अलंकृत किया गया। पं. सोपोरी जी का निधन 2 जून 2022 में लंबी बीमारी के कारण दिल्ली में हुआ, वो आकाशवाणी में भी कार्यरत रहे एवं 73 की आयु में देहावसान हुआ। पंडित जी के दो पुत्र सोहराभ व अभय में से अभय सोपोरी संतूर को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बजा रहें हैं। पं. सोपुरीजी से गंडा बाँधकर सीखने का सुअवसर मुझे (डॉ.वीथिका तिक्कू ) भी कुछ समय के लिए प्राप्त हुआ एवं सौभाग्यवश राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उनके साथ संतूर, संगत करने का भी सुअवसर मिला।

Dr. Tikoo on Santoor with Padmashri Pt. Bhajan Sopori

इन दोनों के बाद पं. तरुण भट्टाचार्य जो की मैहर घराने के आविष्कारक संतूर वादक हैं। वे अपनी वादन शैली में मंका का अविष्कार करने के लिये जाने जाते है । वो बंगाल में अपना संतूर का आश्रम चलाते हैं एवं 2010 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी दिया गया था। वे 23 दिसंबर 1957 में हावड़ा, भारत में जन्मे । उन्होने कई शिष्य इस देश को दिये, जैसे संदीप भट्टाचार्य; इन्होंने शतरंगी जैसा वाद्य बनाया। वहीं पं. भजन सोपुरी के शिष्यों में बिपुल राय व वर्षा अग्रवाल जी का नाम लिया जाता है। संतूर का

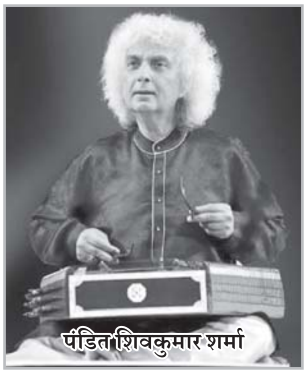
पंडित शिवकुमार शर्मा

इतिहास काफी पुराना है और इसका विकास विभिन्न शैलियों में किया गया है जिसमें 1. शिवकुमार शैली 2. सोपोरी शैली 3. मैहर शैली 4. वर्निक शैली / क्रोमाटिक शैली हैं। जैसे की भजन जी की शैली में तुम्बा लगाने से व विविध प्रयोगों से इसे भारतीय शास्त्रीय संगीत में सादर अपनाया गया उसी प्रकार क्रोमाटिक स्टाइल के संतूर में महाराष्ट्र के उल्हास बापटजी का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। उनके पुत्र अब पूना में इस शैली को बजा रहे हैं और फिल्मी जगत में निनाद व जगताप मंगेश भी इसे खूब प्रचलित कर रहे हैं। हाल ही में नायरंजना राधिका जो की 10 वर्ष की आयु की हैं हरियाणा के गुरुग्राम में इंडिया बुक आफ रिकॉडस में अपना नाम दर्ज करवा चुकी हैं। इसी प्रकार भारत के हर प्रांत में संतूर के पुरुष एवं महिला कलाकार इस वाद्य को खूब बजा रहे हैं एवं शास्त्रीय संगीत के उत्सवों में भी एकल संतूर वादन हमेशा सुनने को मिलता है। सराहनीय तो ये है कि कई कलाकारों ने संतूर का शास्त्रीय पक्ष को भी गहनता से पढ़ा और कई विश्वविद्यालय जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, कश्मीर व महाराष्ट्र के कई विश्वविद्यालयों में संतूर में स्नातकोत्तर और पीएचडी की डिग्री भी दी जा रही है।

संतूर वाद्य ने दूरदर्शन, आकाशवाणी जैसे संचार चैनलों से लेकर आधुनिक यूट्यूब, स्पॉटिफाई, और अन्य डिजिटल मंचों पर अपनी सफलतापूर्वक यात्रा की है। लोक सभा हो या इन्सिक चैनल, बी.बी.सी. जैसे चैनलों पर हम कई अनुभवी संतूर वादकों की कार्यक्रम की झलक देखते रहते हैं। राहुल शर्मा जी ने अपने कई अल्बम व प्रस्तुतियों में इलेक्ट्रॉनिक संतूर का प्रयोग करके यह जता दिया है कि संतूर भी अब आधुनिकता के प्रभाव से अछुता नहीं रह गया। संतूर वाद्य की बाहरी रूप रेखा, और वादन शैली जिस प्रकार से अलग है और बजाने वाले नई पीढ़ी के युवा रुची ले के सिखना चाह रहें है उससे यही लगता है कि संतूर का भविष्य सुरक्षित व समृद्ध है। यह वाद्य भारत वर्ष के नाम और संस्कृति में चार चांद लगायेगा। संतूर जैसे दिखने और ध्वनि जैसे कई वाद्य दुनिया के हर कोने में उपलब्ध है। पर ध्यान देने वाली बात यह है कि भारतीय संतूर की टोनल क्वालिटी किसी से भी पूरी तरह से नहीं मिलती। विश्व में संतूर के समकक्ष वाद्य १७ हैं जिनके नाम है १. संतुर मिडल इस्ट २. संतूर - भारत ३. खोम कमबोड़िया ४. क्रीम लाओस, वियतनाम, थाईलैंड ५. यूची ने मायफी यान्म्यूम कोरिया ६. चांग उजबेकिस्तान ७. हैमर डलसीमर यूनाईटेड किंगडम है दास ऑस्ट्रिया ८. शक्बई स्विट्जरलैण्ड हेक्करवर्ट डेनमार्क ९. हाकेवट बेल्जियम १०. हाकेबरट वोदर लैंड ११. सालही र बर्मनी १२. इलसिमर टिम्पानन फ्रांस १३. सालोटरियो इबलिना इटली १४. सातुरी ग्रीस संतुरी साइप्रस १५. टाम्बून रोमानिया १६. सम्बलि यूक्रेन सिम्बोलोम हंगरी १७. सालटेरियो मेक्सिको, ब्राजील व पुर्तगाल।

**भारतीय संतूर वादक और उनकी संक्षिप्त रुप से पहचान**

१. मोहम्मद अब्दुल्लाह टिबतबाकाल (Mohammad Abdullah Tibatbakal) → 1914 - 1982
२. रमजान जू (Ramzan Ju) → 1881-1971
३. शिवकुमार शर्मा (Shiv Kumar Sharma) →1938-2022
४. भजन सोपुरी (Bhajan Sopori) → 1948-2022
५. तरुण भट्टाचार्य (Tarun Bhattacharya) → 23 दिसंबर 1952
६. सतीश व्यास (Satish Vyas) → 16 नवंबर 1952
७. उल्हास बापट (Ulhas Bapat) → 1950-2018
८. राहुल शर्मा (Rahul Sharma) → 25 सितंबर 1972
९. अभय सोपोरी (Abhay Sopori) → 9 जून 1976
१०. वर्षा अवतवाल (Varsha Aggarwal) → 25 जनबरी 1967
११. श्रुती अधिकारी (Shruti Adhikari) → 18 अकटूबर
१२. अश्विन बापट (Ashwin Bapat) →1988
१३. विपुल राय (Vipul Rai) → अगस्त 1985

**संक्षिप्त सारांश**

संतूर एक प्राचीन वाद्य है जिसका इतिहास कई सदियों पुराना है। इसकी उत्पत्ति भारत वर्ष के कश्मीर में हुई थी और इसका विकास विभिन्न शैलियों में हुआ है, जिनमें शिवकुमार शर्मा शैली, सोपोरी शैली, मैहर शैली, और वार्निक शैली प्रमुख हैं। इन शैलियों में विभिन्न कलाकारों ने अपना योगदान दिया है और संतूर वाद्य को एक नए स्तर पर पहुंचाया है। संतूर की यह यात्रा काफी रोचक है।

आजकल, संतूर वाद्य विभिन्न संगीत शैलियों में प्रयोग किया जा रहा है, जिसमें शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, फिल्म संगीत, फ्युजन और पश्चात्य संगीत शामिल हैं। इतना ही नही, इस वाद्य का प्रयोग मानव शरीर की कई मानसिक और शारीरिक बीमारियों के इलाज में हो रहा है । कई युवा कलाकार संतूर वाद्य में खास रुचि लेकर अपनी प्रतिभा दिखा रहे हैं और इसे आगे बढ़ा रहे हैं। सौभाग्यवश अब संतूर वाद्य भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक अभिन्न भाग है और इसका भविष्य सुरक्षित और समृद्ध है।

संपर्क : Flat no.605, Royal Towers, Shipra Suncity,
Indirapuram, Ghaziabad (U.P)
Pin Code-201014
India Number-7559395887, Watsapp-+6591232984

■

आलेख

# राजस्थान की संस्कृति और परम्परा

डॉ. राहुल कुमार

राजस्थान की सांस्कृति दृष्टि से भारत के समृद्ध प्रदेशों में गिना जाता है। संस्कृति एक विशाल सागर है इसके अंतर्गत गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी, चौपाल, चबूतरे महल प्रसादों एवं घर-घर जन-जन में समाई हुई है। राजस्थान की संस्कृति का स्वरूप रजवाड़ा और सामंती व्यवस्था में देखा जा सकता है तथा संस्कृति में साहित्य और संगीत के अतिरिक्त कला-कौशल, शिल्प, महल, मंदिर, किले. झोपड़ियों का भी अध्ययन किया जाता है जो हमारी संस्कृति के दर्पण हैं। संस्कृति के अंदर पोशाक, त्यौहार, रहन-सहन, खान-पान, तहजीब-तमीज सभी संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।

**सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थान को 7 प्रमुख भागों में बाँटा गया है-**

1. मारवाड़ 2. मेवाड़ 3. शेखावटी
4. ढूँढाड़ 5. हाडौती 6. ब्रज
7. मेवाती

**राजस्थानी संस्कृति**

**1. मारवाड़ :** राजस्थान के पश्चिम में स्थित प्राचीन मारवाड़ रियासत का क्षेत्र सांस्कृतिक विभाग के अंतर्गत आता है। इसमें जोधपुर, नागौर, पाली, जालोर, बाड़मेर आदि जिले आते हैं। यह पूरा क्षेत्र थार के मरूस्थल का हिस्सा है। इस क्षेत्र की भाषा मारवाड़ी है क्षेत्र में घूमर, घुड़लो, ढोल, लूर, डांडिया तथा गैर नृत्य किए जाते हैं।

**2. मेवाड़ :** राजस्थान के दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी में स्थित प्राचीन मेवाड़ रियासत संस्कृति विभाग के अंतर्गत आता है। इसके अंतर्गत उदयपुर, चित्तौड़, राजसमंद, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा एवं प्रतापगढ़ जिले को सम्मिलित किया गया है। यह क्षेत्र मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र है यहाँ के लोग वीर स्वाभिमानी एवंस्वतंत्रता प्रिय हैं। इस क्षेत्र में मेवाड़ी भाषा बोली जाती है। लगभग 1400 वर्षों तक गुहिल वंश का शासन रहा है।

**3. ढूंढाड़ :** राजस्थान के मध्य एवं मध्य पूर्व क्षेत्र यानी प्राचीन आमेर रियासत को ढूंढाड़ क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इसके अंतर्गत जयपुर, दौसा, टोंक जिले आते हैं। यहाँ पर उर्वरक मैदान तथा रेत के टीले पाए जाते हैं। यहाँ पर ढूंढाड़ी भाषा बोली जाती है तथा यहाँ पर गणगौर तथा बड़ी तीज का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।

**4. हाड़ोती :** हाड़ा चौहान द्वारा शासित क्षेत्र को हाड़ोती कहते हैं। इसके अंतर्गत कोटा, बूंदी, झालावाड़, बारा आदि क्षेत्र आते हैं। यह पूरा क्षेत्र मुख्यतः पठारी है तथा यहाँ पर बड़े सरोवर, नदियां, हरे-भरे उपजाऊ मैदान भी हैं। यहाँ पर मुख्यतः काली मिट्टी और चिकनी मिट्टी पाई जाती है। इस क्षेत्र में न्हाण प्रसिद्ध लोक नाट्य है।

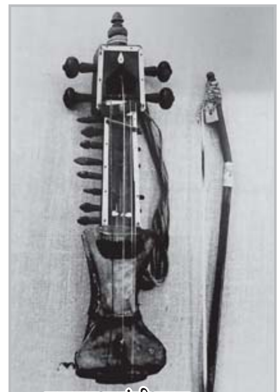

गुजरात सारंगी वाद्य

**5. शेखावटी :** इस क्षेत्र पर कच्छावा राजकुमार शेखा के वंशजों का शासन रहा है। इसलिए इसे शेखावटी क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में मुख्यतः चुरू, सीकर, झुंझनू जिले आते हैं। इस क्षेत्र का संपूर्ण भाग रेतीले धोरे तथा मैदान स्थित है। इस क्षेत्र पर कई नदियों के किनारे प्राचीन काल की सभ्यता विद्यमान है। इसका खेतड़ी क्षेत्र तांबे के लिए जाना जाता है। इस क्षेत्र में हवेलियां, भित्तिचित्र, गीदड़, नृत्य अधिक प्रसिद्ध है।

**6. ब्रज :** भरतपुर, धौलपुर एवं करौली जिले को इस भाग में सम्मिलित किया गया है क्योंकि यह जो भाग मथुरा के चौरासी कोस के घेरे में आते हैं। इस क्षेत्र में ब्रज भाषाएं बोली जाती है जो काफी मधुर लोकप्रिय है। नौटंकी और रासलीला आदि लोक नाटकों का आयोजन भी इसी क्षेत्र में किया जाता है।

**7. मेवाती :** अलवर, भरतपुर जिलों का जो हिस्सा गुड़गांव की तरफ स्थित है उसमें मेव जाति बड़ी संख्या में निवास करती है और इन लोगों का रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान आदि की विशेषताएँ युक्त है इसलिए इस क्षेत्र को मेवात कहते हैं। राजस्थानी संस्कृति समष्टिगत समन्वयात्मक और प्राचीन है। भौगोलिक विविधता और प्राकृतिक वैभव ने इसे और आकर्षक बनाया है। वस्तुतः राजस्थानी संस्कृति लोक जीवन को प्रतिनिधित्व करने वाली संस्कृति है राजस्थान की सांस्कृतिक परंपराएं विरासत से जुड़े स्थल प्रकृति और वन्य जीव की विविधता और देदीप्यमान इतिहास पर्यटन के खुला आमंत्रण हैं। समृद्ध लोक संस्कृति के परिचायक तीज त्यौहार उमंग के प्रतीक मेले आस्था और विश्वास के प्रतीक लोकदेवता फाल्गुन की मस्ती में नृत्य करती

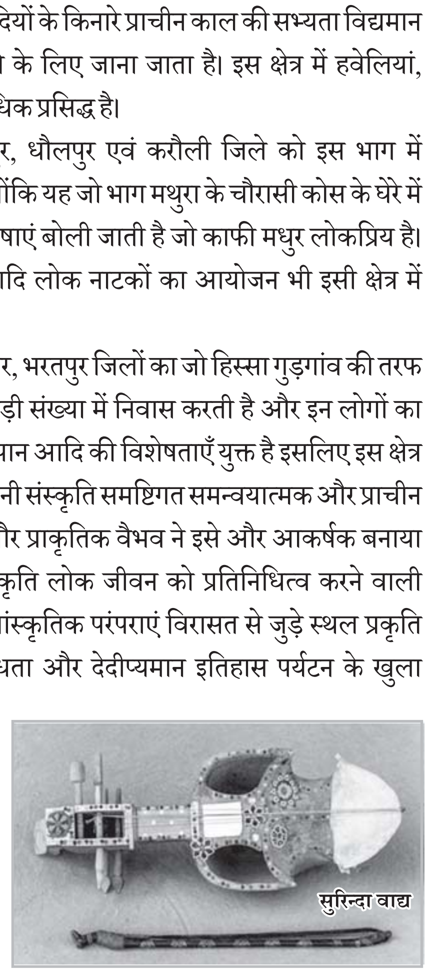

सुरिन्दा वाद्य

सिंधी सारंगी वाद्य

आकर्षक पायदान से युक्त महिलाएं पर्यटकों को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त है। धरती धोरारी की झिलमिलाती रेत ओर गूंजता सुरीला लोक संगीत पर्यटक को अभिभूत करने वाल होता है।

राजस्थान की संस्कृति और परंपरा की मुख्य बात यह है कि राजस्थान के जनमानस की विशालता ने जिस प्रकार सभी मान्यताओं और आस्थाओं को फलने-फूलने दिया उसी प्रकार अनेक अनुयायियों के साथ भातृभाव रखा।

राजस्थानी लोग अपनी संस्कृति और परंपरा पर गर्व करते हैं उनका दृष्टिकोण परंपरागत है। यहाँ साल भर में पर्व-त्यौहारों का तांता लंगा रहता है यहाँ एक कहावत प्रचलित है 'सात वार नो त्यौहार'। राजस्थान के मेले और पर्व-त्यौहार रंगारंग और दर्शनीय होते हैं। यह पर्व-त्यौहार लोगों के जीवन उनकी खुशियां और उमंग के परिचायक हैं। प्रायः इन मेलों और त्यौहारों के मूल में धर्म होता है।

लेकिन इनमें कई मेले और त्यौहार अपने सामाजिक और आर्थिक महत्व के परिचायक हैं। मनुष्य और पशु की अंतर निर्भरता को दर्शाने वाले पशु मेले राजस्थान की पहचान है। पुष्कर का कार्तिक मेला, परबतसर और नागौर के तेजाजी का मेला जो मूलतः धार्मिक है राज्य के बड़े पशु मेले माने जाते हैं।

एक कहावत प्रचलित है 'तीज-त्यौहार बावरी ले डूबी गणगौर' इसका अर्थ है कि त्यौहारों के चक्र की शुरूआत श्रावण महीने में तीज से होती है और साल का अंत गणगौर से होता है। गणगौर धार्मिक पर्व होने के साथ ही राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। तीज गणगौर जैसे पर महिलाओं के महत्व को भी रेखांकित करते हैं।

**राजस्थान की संगीत जीवी जातियाँ**

**गायन एवं नृत्य की जातियाँ**

**1. लंगा जाति -** मुसलमानों का यह वर्ग वर्तमान राजस्थान के बाड़मेर, जैसलमेर के जिलों में बसा हुआ है। यह लोग चौहान राजपूत के वाचक रहे इनकी गायकी आज देश में काफी लोकप्रिय है। इन्होंने विदेशों में भी अपनी कला की छाप छोड़ी है। गायन के साथ वाद्य में अधिकांशतः सारंगी का प्रयोग करत हैं। शास्त्रीय संगीत शैली में मांड गायन में इनकी विशेषता है। पीढ़ी दर पीढ़ी इनका कार्य गाने बजाने का ही चला आ रहा है। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी गायन के अतिरिक्त सारंगी, करताल, अलगोजा, सुरंदा, ढोलक, शहनाई, मोरचंग, पुंगी आदि वाद्य बजाने में दक्ष होते है। बाड़मेर का 'बरनावा' गांव इस परिवार का मुख्य स्थान है जो जोधपुर से 100 किलोमीटर दूर है।

अलगोजा वाद्य

**2. कलावंत -** कलावंत संस्कृत का शब्द है। कला का अर्थ 'हुनर', 'फन' और 'वंत' अर्थात् हुनर का ज्ञाता 'कलावंत' है। सीधे शब्दों में निपुण गायक और वादक। कलावंत मध्य युग से भारत का प्रमुख गायक वर्ग रहा है। अनेक कलावंत अपना रिश्ता तानसेन से भी जोड़ते हैं। इनमें गौड़ ब्राह्मण और टॉक चौहान राजपूत मुख्य है। मुसलमान बनाए जाने के पूर्व यह लोग मंदिरों में कीर्तनकार थें इनके नाम में कुछ लोग 'सेन' तथा कुछ लोग 'खाँ' लंगाते हैं।

**3. कव्वाल -** कलावंत से ही कव्वालों का आविर्भाव हुआ। अलाउद्दीन खिलजी के समय अमीर खुसरो ने कव्वाली परंपरा की शुरूआत की थी। सूफी संतों ने कव्वाली गायन को प्रोत्साहन दिया। जयपुर कव्वालों का केन्द्र रहा अजमेर के ख्वाजा साहब की दरगाह में देश प्रदेश के कव्वाल अपनी कला गायकी का प्रदर्शन प्रतिवर्ष करते हैं।

**4. ढाढ़ी -** इनका पेशा गाने-बजाने का ही रहा। यह ढोलीयों से मिलता-जुलता वर्ग है। अंतर यह है कि ढोली ढोल बजाते हैं, तथा ढाढी सारंगी या रबाव. ढाढ़ी हिंदू भी होते हैं तथा मुसलमान भी। इनकी उत्पत्ति राजपूतों से मानी गई है। मुस्लिम ढाढ़ी हिंदू रीति-रिवाज़ भी अपनाते हैं। ढाढ़ियों की मुख्य खापे 'बावरा', 'सिहोल', 'बगड़वा', 'डेडाण' आदि। मध्यकाल में यह लोग युद्ध भूमि में वीरों को उत्साहित करने के लिए गाते-बजाते थे। इस प्रसंग में गाए जाने वाले गानों को 'सिंधु देना' कहा जाता था। वस्तुतः 'सिंधु' एक राग होता है जो जोशीला स्वर उत्पन्न करता है। आइने अकबरी में भी उल्लेख है कि ढाढ़ी रणभूमि में रहते हैं। शुरवीरों की तारीफ करते हैं तथा लड़ाई के मैदान को चमकाते है। ढाढ़ी अपने यजमानों की विरूदावली (पीढ़ीयाँ) मौखीक की याद रखते हैं और उनकी प्रशंसा के गीत गाते हैं। ढाढ़ी जाति में उचित कॉम से मांगने वाले 'मिरासी' कहलाए। ढाढ़ी जाति के लोग अब बाड़मेर, जैसलमेन में ही अधिक हैं जिन्हें अब मांगनियार भी कहा जाता है।

**5. मिरासी -** ये मुस्लिम धर्म अनुयायी हैं। 'मिरासी' अरबी भाषा का शब्द है। इतिहासकारों के अनुसार इनके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण थें यह ज्यादातर सुन्नी संप्रदाय के अनुयायी हैं। इनकी खापे ढोलीयों से मिलती हैं। यह लोग पीढ़ीयों से गाने-बजाने का कार्य करते आए हैं। मारवाड़ के जिलों में इनके घर अधिक हैं। कानोना, कलोट, जोड़ा, गर्रा आदि उपवर्ग है। सारंगी वादन इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। नौटंकी खेलों में भी यह लोग भाग लेते रहे हैं। हिंदुओं के भाटों की भांति इनका कार्य वंशावली का व्याख्यान करना रहा है। इनमें नक्कारची, तावाले तथा शहनाई वादक भी होते हैं।

**6. मांगणियार -** राजस्थान के पारंपरिक पेशेवर गायक वर्गो में राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में बसे मांगणियार अपनी विशिष्ट गायकी के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस वर्ग के लोग पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर, जालौर, जैसलमेर तथा राजस्थान की सीमा से सटे पाकिस्तान में भी बसे है। मांगणियार वर्ग पर हिंदू-

मुस्लिम संस्कृति का समुचित प्रभाव है। यह वर्ग दोनों धर्मों को मानता है। रमज़ान में रोजा रखते हैं तथा नमाज़ पढ़ते हैं जबकि हिंदू देवी-देवताओं को भी मानते हैं तथा उनका स्तुति गान करते हैं। मांगणियार के गड़मंगों (भाट) की बहियों से पता लगता है कि यह वर्ग सोलंकी, पँवार, भाटी, चौहान आदि राजपूत जातियों एवं पालीवाल ब्राह्मणों से निकली हैं। मांगणियारों का राजस्थानी लोक संगीत में महत्वपूर्ण योगदान है। यह कलाकार अपने पारंपरिक लोक वाद्यों पर गाते हैं। इनका कमायचा प्रमुख वाद्य है। खरताल, सुरणई वाद्य भी बखूबी बजाते हैं। धवला, देवड़ा, देहड, देवड, डगा, गेला, झीण आदि 19-20 खापे है जो राठौड़, भाटी, परिहार, परमार, सोलंकी आदि राजपूतों से संबंध रखती है।

**7. डोम (डुम) -** मारवाड़ के डोम, मिरासियों तथा ढोलियों के समान ही है, परंतु यह कौमें को निम्न श्रेणी में मानते हैं। इन्हें भाटों से उत्पन्न एक मुसलमान फिरका भी माना जाता है। डोमों में मिरासी भी हैं। इनके तथा मिरासियों के रीति-रिवाजों में अंतर नहीं है। अवध के डोम निम्न श्रेणी में माने जाते हैं।

**8. ढोली -** ढोल बजाने का पेशा करने से इस वर्ग को ढोली कहां गया। राजस्थान के विभिन्न अंचलों में इस वर्ग के अलग-अलग नाम है। मारवाड़, जैसलमेर, जालौर में इन्हें दमामी, नक्कारची, जयपुर में राणा, मेवाड़ में भारत भी कहा जाता था। ढोलियों की कई खापे अथवा शाखाएं हैं, जैसे डांगी, देहाड़, कालेट, जोड़ियां, देसार, गोरेल, छिकिया, रानीटा आदि आदि। यह लोग राजस्थान की विभिन्न राजपूत जातियों से अपना संबंध जोड़ते हैं जिनमें चौहान, परिहार, देवड़ा, बगार, राठौड़ तथा पालीवाल ब्राह्मण वंश से निकले हैं। मारवाड़ के 'डांगी' राजपूत, राठौड़ वशं से निकले हैं। ढोली जाति की स्त्रियाँ भी गाने बजाने का कार्य करती हैं जिन्हें 'ढोलनियाँ' कहा जाता है। मारवाड़ के ढोली प्रसिद्ध रहे है, जिनका पूरा एक मोहल्ला उदयपुर की पिछोला झील के किनारे नावघाट पर बसा है। ढोली अपने को गंधर्व भी कहते हैं। मुसलमान ढ़ोली प्रधानतयाः डांगी वंश के हैं, जो औरंगजेब के समय मुसलमान हुए। ये सुन्नी वर्ग के है।

मुरला वाद्य

**9. राणा -** इनका कार्य ढोल बजाने का ही है। मध्यकाल में यह लोग रण में सा (नगाड़े) पर चोट मारते थे। इसीलिए राणा कहलाए गए। शेखावटी क्षेत्र में राणा नगाड़ा बजाने का कार्य करते हैं और इस कला में बड़े दक्ष हैं। शेखावटी में मिरासी मुसलमान भी नगाड़ा बजाने के कारण 'राणा' कहलाए। राणा गाने-बजाने का भी कार्य करते हैं। ये राजपूतों सरीखा ही जीवन बिताते हैं। शेखावटी के प्रसिद्ध ख्याल लेखक और अभिनेता स्वर्गीय नानू राणा इसी जाति से हैं।

**10. फदाली -** यह लोग मुसलमानों के कूँजड़ो, कसाइयों तथा धोबियों के गवैया हैं। इस वर्ग के लोगों को धार्मिक त्यौहारों पर हरे व लाल झंडे लेकर गाते हुए जुलूस के रूप में चलते हुए आज भी देखा जा सकता है। पीर व भीर की आराधना के लिए जाते समय इन्हें गाने के लिए बुलाया जाता है। अजमेर के ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के उर्स के मेले में भी गाते हैं।

**11. भोपा -** राजस्थान में भोपा के कई वर्ग हैं। माताजी, गोगाजी, भैंरूजी, पाबूजी, देवजी, हड़बूजी आदि लोक देवों के भोपे अलग-अलग हैं। यह भोपे अपने-अपने इष्ट देवों के गीत गाकर सुनाते हैं। 'पाबूजी के भोपे' रावण हत्थे पर पाबूजी की विरूद्दावली गाकर सुनाते हैं। भोपों की स्त्रियाँ भी बहुत ऊँची आवाज़ में गाती हैं। रामदेवजी के भोपे तंदूरा बजाते हुए गाते हैं। भैरूजी के भोपे कमर में बड़े-बड़े घुंगरू बांधे रखते हैं। ये 'मशक' का बाजा भी बजाते हैं। रामदेवजी, गोगाजी, हड़बूजी, देवनारायण आदि राजपूत वीर एवं संत के रूप में लोक पूज्य है।

**लंगा जाति का उद्भव, इतिहास एवं संस्कृति**

लंगा जाति का उद्भव कई सौ वर्षों पूर्व माना जाता है, जो पाकिस्तान में बसे हुए थे तथा भारत में लंगा जाति वर्तमान समय से 600 से 300 वर्ष पूर्व आ बसे थे। लंगा जाति की नींव 'मीर' शब्द से मानी जाती है। मीर नाम पाकिस्तान में सिंध नामक स्थान के बादशाह के पुत्र का नाम था जो गायन वादन में बहुत रूचि रखता था। मीर का गाना बजाना उनके वालिद को नापसंद था, बादशाह के लाखो समझाने पर भी अपना यह शौक नही छोड़ा और बादशाह ने अपने पुत्र मीर को अपनी विरासत से बेदखल कर दिया। मीर ने अपने परिवार से अलग होकर अपना गाने-बजाने का शौक जारी रखा।

वरिष्ठ लंगा कलाकारों का यह कहना है कि लंगा जाति के पूर्वजों ने मीर के साथ ही अपना गाना बजाना शुरू किया था और यदि हम लंगा शब्द की बात करें कि यह शब्द कहा से निकला है तो इस बारे में यही जानकारी प्राप्त होती है कि बादशाह जो कि मीर के पिता ने अपने पुत्र व उसके साथ गायन-वादन करने वालों को नदी के दूसरे तरफ बसने को कहा अर्थात् नदी को लंघवा दिया, नदी के दूसरी तरफ रहने वालों का नाम लंगा रखा गया।'

साक्षात्कार के दौरान बडनावा गाँव के निवासी असकर खान लंगा जो कि एक वरिष्ठ कलाकार हैं जिन्होंने अपने लंगा इतिहास से जुड़े कई पहलुओं को उजागर किया है वह बताते है कि आज के लंगा युवक अपनी 6 पीढ़ियों पूर्व तक हिंदू धर्मावलम्बी थे और कुछ ऐतिहासिक कारणों से उन्होंने इस्लाम धर्म को अपनाया था। उनका यह भी कहना है कि बादशाह औरंगजेब के ज़माने में मुस्लिम धर्म को अपनाया था, अपने पारिवारिक वृत्त को बताते समय लंगा जाति के लोगों ने देवीदास जी के समय से गाने बजाने का काम अपने हाथ में लिया। लंगा जाति के लोग यह जानते है कि संगीत के साथ ही उनके पूर्वज युद्ध भूमि में भी अपनी वीरता का परचम लहरा चुके हैं। स्वयं देवी

दास जी की मृत्यु एक युद्ध में हुई और अपना सिर कटने के बाद भी निरन्तर तलवार चलाते रहै। उनके धड़ को गिराने के गहरे गहरे कत्थई रंग का छीटा दिया गया तब जाकर उनके प्राणों को मुक्ति मिली। इसी कथा के कारण लंगा जाति के लोगों ने गहरे कत्थई रंग के वस्त्र को पहनना वर्जित कर दिया था। ऐसे रंग के वस्त्र को धारण करने से किसी न किसी हानि के होने का डर रहता है। देवी दास जी एक सिंधी सिपाही होने के साथ-साथ एक लोक संगीत कलाकार भी थे। वह सुरनई नामक वाद्य बजाया करते थे परंतु वर्तमान में लंगा जाति दो उपजातियों में बटे हुए हैं एक सुरनई लंगा और दूसरी सारंगीया लंगा। इन दोनों जातियों के बीच में खाने-पीने आदि का संबंध है किन्तु बेटी-ब्याह का संबंध नही होता है। सारंगीया लंगों का कहना है कि सुरनई लंगे टेट से मुस्लमान है और उनके रीतिरिवाज भी वैसे ही है किन्तु सारंगीया लंगों की उपजातियाँ मुख्यतः राजपूतों की जातियों उपजातियों से संबंधित है जैसे-तुन्वर, भाटी, सोलंकी आदि। सारंगीया लंगाओं की स्त्रियाँ हिन्दू सधवा स्त्री की भाँति चूड़ा पहनती है और इनके परिवार मुस्लिम त्योहारों के साथ ही शीतला सप्तमी एवं अक्षयतृतीया जैसे हिन्दू पर्वों को भी धार्मिक श्रद्धा से मनाते है।

शहनाई वाद्य

लंगाओं के वंशानुक्रम इस प्रकार है देवीदास जी जोगीणीदास जी अजयपाल डूंगरसी रायसी ठाकरसी जसेजी → पांचेजी → हलाजी कायमंची → उमेदजी अलीजी सुरतान खान धारू खान खाजू खान नूरमहोम्मद खान तथा वर्तमान में हयात महोम्मद खान लंगा आदि। लंगा जाति के पीढ़ी दर पीढ़ी पूर्वजों का वंशानुक्रम से यह ज्ञात होता है कि लंगा जाति के लोग देवी दासजी के वंशज है जो कि हिन्दू धर्म से संबंध रखते है इसी कारण आज के लंगा हिन्दू रीति-रिवाज का भी पालन करते है।

**सिंधी सिपाही**

यह जानन जरूरी है कि लंगा एक जाति है जिसका मुख्य पेशा अपने जजमानों के परिवारों के लिए गाना बजाना है। जजमानों के परिवारों के समूह, जिन्होंने लंगा गायकों का संरक्षण किया है वह सिंधी सिपाही के रूप में जाने जाते है। सिंधी सिपाही 'धानी' या छोटे गाँव में रहते है, जहाँ उनके पास बस छः से दस घर होते है जिनमें प्रत्येक धानी को उनके समूह के नेता नाम से जाना जाता है या समुदाय की एक उपजाति के नाम से जाना जाता है। हम पाते है कि सिंधी सिपाही के कुछ ही परिवार मुख्य गाँव में रह रहे है जो एक छोटे बाजार के रूप में कार्य करते है और इनमें विभिन्न जाति के समूह शामिल है। सिंधी सिपाही मुख्य रूप से पशुपालक व चरवाहा है। इनके पास बड़ी संख्या में गाये, बकरिया और भेंडे है। धानी इन्हें जानवरों को चराने के लिए बड़े खेतों की सुविधा प्रदान कराते है। शुष्क परिस्थितियों के कारण उन्हें कृषि के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित करने की अनुमति नही मिलती है। हाँलाकि उनके पास अपना एक क्षेत्र होते है जिसमें वह खेती कर सकते है, यदि मानसून अनुकूल होता है तो इस क्षेत्र में दो से तीन इंच वर्षा होती है जिससे वे अपने मवेशियों के लिए पर्याप्त प्राकृतिक चारा जुटाने में सक्षम हो जाते है।

हालाँकि हर तीसरे वर्ष में अकाल का एक चक्र आता है और इन लोगों को अपने घरों या बस्तियों को छोड़कर जाना पड़ता है। नई जगह की तलाश में जहाँ भूमि पर आधारित उपज कर अपना और अपने जानवरों का पालन-पोषण कर सके।

**लंगा जाति की सामाजिक संरचना**

राजस्थान का उत्तर-पश्चिमी भाग पूर्णतः रेगिस्तान है। इस भाग में जैसलमेर, जोधपुर एवं बिकानेर के क्षेत्र आते है। इन्ही क्षेत्र में मुख्यत: लंगाओं की बस्ती बसी हुई है। इनके सर्वाधिक परिवार जैसलमेर नामक पुरानी रियासत में रहते आए है तथा जैसलमेर के सीमावर्ती क्षेत्रों जैसे जोधपुर, बिकानेर तथा बाडमेर इत्यादि में भी फैले हुए है। भौगोलिक व राजनीतिक दृष्टि से यह क्षेत्र पाकिस्तान और भारत की समिनिर्मित आते है। वर्तमान में अधिकतर लंगाओं का परिवार जोधपुर से 100-150 कि.मी. दूर बसा बडनावा गाँव जिसका जिला बाडमेर लगता है, में 200 से 300 लंगा परिवार बसे हुए है तथा कुछ के परिवार लंगा जाति पाकिस्तान में भी बसे हुए हैं।

लंगा स्वयं मुसलमान गायक हैं और यह जाति अपने गायन पेशे के रूप में जानी जाती है। वर्तमान समय में छः पीढ़ियों पूर्व तक लंगा जाति के लोग हिन्दू धर्मावलम्बी थे। पर कुछ ऐतिहासिक कारणों से इन्होंने इस्लाम धर्म को अपनाया था। लंगा जाति के जजमान भी सिंधी-सिपाही व राजपूत है तथा आज भी सैकड़ों लंगा जाति परिवार इन्हीं जातियों की खेती पर अपनी जीविका चला रही है तथा पीढ़ियों से चली आ रही जजमानी प्रथा को निभाती चली आ रही है।

लंगा के हिन्दू धर्म से इस्लाम धर्म के रूपांतरण ने एक नई सामाजिक संस्कृति को जन्म दिया। इन्होंने इस्लाम धर्म के सभी रीति-रिवाज़ों को स्वीकार किया परन्तु साथ ही हिन्दू धर्म के कुछ रीति-रिवाज़ों को लंगा साथ लेकर चले। आज की लंगा जाति के परिवारों की महिलाएँ हिन्दू महिलाओं की तरह ही वेशभूषा धारण करती है जैसे चूड़ा पहनना। मुस्लिम धर्म इस प्रथा के विरूद्ध है। इसी प्रकार मर्दो ने इस्लाम धर्म अपनाने के बाद भी धोती पहनना जारी रखा जो कि इस्लाम धर्म का पहनावा नही है। इसी तरह हिन्दू धर्म से संबंधित कई उत्सव, सहारोहों और देवी-देवताओं की पूजा अर्चना आदि को आज भी लंगाओं द्वारा पालन किया जाता है।

लंगा की उपजाति राजपूत जाति के पैटर्न का पालन करती है। राजपूत जातिगत रूप से सभी पूर्व रियासतों में सत्तारूढ जाति रही है। इस जाति को भारत में स्वतंत्रता के आगमन के बाद एक प्रशासनिक ईकाई के रूप में एकीकृत किया गया था। जैसलमेर, जौधपुर और बीकानेर राज्य राजपुत शासकों के अधीन थे। राजपुतों की उप-जातियों तुनवर, भाटी, सोलंकी व राठौर आदि के नाम से जानी जाती है। लंगा जाति को भी इसी तरह से

विभाजित किया गया है। उप जातियों के लिए इनके समान नाम है जैसे- 'तुंवर लंगा' व 'भाटी लंगा' आदि। इसी प्रकार सिंधि सिपाहीयों ने भी उप जातियों के विभाजन को एक समान पैटर्न का पालन किया लेकिन वैवाहिक गठबंधनों में मुस्लिम धर्म के तरीके का ही पालन करते चले आ रहे है।

राजपूत परिवारों में एक लड़का और लड़की की शादी एक ही उपजाति में नहीं की जाती है जबकि लंगा जाति में एक ही उपजाति में भी शादी करवाई जाती है। क्योंकि मुस्लिम पारिवारिक कानून चचेरे भाई व बहन के साथ शादी करने की अनुमति देता है।

**लंगाओं के दो खापे अथवा शाखाएं-**

(1) सारंगीया लंगा (2) सुरनई लंगा।

**1. सारंगीया लंगा** – यह लोग सिर्फ सारंगी व गायन का कार्य करते है। सारंगीय लंगा इन्हें इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अपने साथ संगीत में सिर्फ सारंगी का प्रयोग करते है तथा उसके साथ अपना गायन वादन करते है। मुख्य रूप से इनकी दो सारंगीया ही होती है जैसे गुजरातन सारंगी और सिंधी सारंगी। गुजरातन सारंगी बनाने वाले कलाकार वर्तमान में बहुत सीमित संख्या में है। हयात मौहम्मद लंगा इसका वादन करते थें तथा इनके पिता जी स्वर्गीय नूर मौहम्मद लंगा गुजरातन सारंगी का वादन किया करते थे। सिंधी सारंगी लंगाओं में बहुत प्रचलित वाद्य है। सारंगीय लंगाओं में अधिकतम सिंधी सारंगी ही लंगाओं द्वारा वादन की जाती है। वरिष्ठ सारंगीय लंगाओं में वर्तमान में कादर खाँ लंगा और असकर खाँ लंगा इस वाद्य के वादक हैं।

**2. सुरनई लंगा** – सुरनई लंगाओं में सिर्फ हवा से बजने वाले वाद्यों का प्रयोग होता है। सुरनई लंगाओं का प्रमुख वाद्य अलगोजा, बीन इत्यादि है। सुरनई लंगा गायन नही करते सिर्फ वाद्य वादन करते है।

**लंगा जाति के वाद्य**

इस अध्याय के अंतर्गत लंगा जन जाति में प्रयुक्त विविध वाद्यों की विस्तृत व्याख्या की जाएगी। प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ वाद्यों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है और इसको चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण की संज्ञा दी गई है।

सर्वप्रथम ये वर्गीकरण भरत मुनि द्वारा प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में (200 ईसा पूर्व) प्राप्त होता है एवं उनके बाद के सभी ग्रंथों में इसी वर्गीकरण को मान्यता दी गई है। इसके अतिरिक्त भी एक अन्य वर्गीकरण नारदकृत 'संगीत मकरंद' में दिया गया है। जिसमें पंच महाध्वनियों का विवरण देते हुए मनुष्य के कंठ को भी एक वाद्य माना गया है तथा मनुष्य शरीर को देवी वीणा कहा गया है। इस अध्याय में भरत मुनि प्रणीत चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण के आधार पर ही वाद्यों को वर्गीकृत किया जा रहा है।

चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण भारतीय संगीत में प्राचीन काल से ही चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है जो इस प्रकार है- (1) तत् (2) अवनद्ध (3) घन (4) सुषिर। लंगा जाति के लोक संगीत के वाद्यों की भी यही चार श्रेणी मानी गई हैं। तत् वाद्यों में तंत्रीयुक्त वाद्यों अर्थात् जिनमें तारों का प्रयोग होता है, ऐसे वाद्यों को प्रमुख माना गया है। इनमें पशुओं की आंत के अलावा धातु निर्मित तार जैसे ताँबा, पीतल, लोहे के बने तार लगते हैं। दूसरी श्रेणी में चर्म से मंडित अवनद्ध वाद्य आते हैं। जो ढोलनुमा, सुंडीनुमा और घेरेनुमा होते है। इन वाद्यों को उंगलियों अथवा हाथ की थाप से बजाया जाता है तथा कुछ वाद्यों को बाँस की पतली डंडियों के द्वारा बजाया जाता है। तीसरी श्रेणी में घन वाद्य आते है। घन वाद्य धातु, मिट्टी अथवा लकड़ी द्वारा निर्मित होते हैं। कभी-कभी इनके अंदर कंकर या धातु के छर्रे डाल दिए जाते हैं जोकि हिलाडुला कर अथवा मंजिरेनुमा वाद्यों को आपस में टकराकर बजाया जाता है। कुछ वाद्य लकड़ी की इंडियों से भी बजाये जाते हैं। चौथी श्रेणी सुषीर वाद्य में फूंक वाले वाद्य शामिल होते है जो कि नलीदार होते है। गले की वायु फूंक ही इनके वादन का मुख्य आधार होती है।

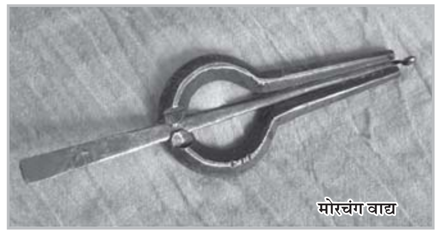
मोरचंग वाद्य

यूँ तो लोक वाद्यों के अंतर्गत वे सभी वाद्य आते हैं जो जन साधारण द्वारा आमतौर से प्रयोग में लाए जाते है जैसे ढोलक, नगाड़ा, मंजिरा, ताल, करताल, घुंघरू आदि। ये सभी ऐसे वाद्य हैं जिनका प्रयोग जन साधारण द्वारा भजन कीर्तन मनोरंजन के लिए गायन वादन के आयोजन में किया जाता है। यदि वर्तमान स्थिति की बात करें तो लोक वाद्य में हमारा ध्यान अनुसूचित जाति, जन-जाति तथा संगीत जीवि जाति आदि इस प्रकार के आंचलिक क्षेत्रों में रहने वाले अन्य लोक कलाकारों के वाद्यों की ओर जाता है। इन लोक कलाकारों के यह वाद्य शास्त्रीय संगीत के वाद्यों से कुछ भिन्न होते हुए भी अपने लौकिक स्वरूप के कारण अपनी विशेष पहचान रखते हैं।

लंगा कलाकारों के संदर्भ में भी यह बात उचित बैठती है। इन लोक कलाकारों को यह वाद्य इनकी वंश परम्परा से विरासत में मिले हैं जो वर्तमान में भी अपनी बनावट और वादन शैली की मौलिकता व सुन्दरता को संजाये हुए है। वर्गीकरण की दृष्टि से वाद्यों को पुनः दो बड़े वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- 'स्वर वाद्य' एवं 'लय वाद्य'।

लोक संगीत में भी स्वर वाद्य तथा लय वाद्य अलग-अलग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और लोकगीतों तथा लोकनृत्यों में प्राण फूंकने का काम करते है। लंगा जाति में प्रयुक्त वाद्यों के विशेष महत्व को देखते हुए लंगा जाति के वाद्यों का विवरण यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है:- वर्गीकरण की दृष्टि से भरत मुनि प्रणित चार श्रेणियों में रखा गया है जैसे तत्, सुषीर, अवनद्ध तथा घन वाद्य। अध्ययन की दृष्टि से इन चारों प्रमुख श्रेणियों के भी उपवर्ग बनए गए हैं। लंगा जाति के वाद्यों का श्रेणी विभाजन इस प्रकार है-

**1. घन वाद्य** - जैसा पहले ही बताया गया है, घन वाद्य धातु, लकड़ी या मिट्टी निर्मित वे वाद्य होते हैं जो प्रायः लय देने के काम में आते हैं। इन वाद्यों में कुछ वाद्य टक-टक व झन झन ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य होते हैं-

• टक-टक ध्वनि वाले वाद्य की श्रेणी में खड़ताल व मटका वाद्य आते हैं। ये वाद्य लंगा जाति के प्रमुख वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। लंगा के अतिरिक्त

मांगनियार जाति के लोक कलाकार भी इन वाद्यों का प्रयोग करते है।

**2. अवनद्ध वाद्य -** इस श्रेणी के वाद्यों में मुख्य रूप से बेलनाकार वाद्य ढोलक ही लंगा जाति द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं।

**3. सुषीर वाद्य-** लंगा जाति द्वारा प्रयुक्त सुषिर वाद्यों को इनकी निर्माण सामग्री के आधार पर तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे बांस द्वारा निर्मित, लकड़ी या तुम्बी द्वारा निर्मित तथा धातु द्वारा निर्मित-

ढोलक वाद्य

- बांस द्वारा निर्मित वाद्यों में पावा जोड़ी व नड़ वाद्य आते हैं।
- लकड़ी या तुम्बी निर्मित वाद्यों में सुरनई, अलगोजा, मुरला, बीन आदि वाद्य आते हैं।
- धातु निर्मित वाद्यों में मोरचंग (मुखचंग) समावेश होता है।

4. **तत् वाद्य -** इन वाद्यों को इनकी वादन प्रक्रिया की भिन्नता की दृष्टि से दो वर्गों में बांटा गया है। झनकार वाले तथा गज से बजाए जाने वाले वाद्य।

- झनकार वाले वाद्य।
- गज द्वारा वादित वाद्यों की श्रेणी में सुरिन्दा, गुजरातन सारंगी व सिंधी सारंगी का समावेश होता है।

लंगा जाति के वाद्यों को जानने समझने से पूर्व ये बात जानना आवश्यक है कि लंगा जाति को विभाजित करने वाली दो बड़ी खापी का आधार उनके द्वारा प्रयुक्त किए जने वाले वाद्य ही हैं। सिंधी सारंगी व गुजरातन सारंगी बजाने वाले कलाकार सारंगिया लंगा कहलाते हैं जबकि सुरनाई, मुरला, नड़ अथवा मोरचंग बजाने वाले कलाकार सुरनाया लंगा कहलाते हैं। सारंगिया लंगा सारंगी बजाकर गाते भी हैं इसलिए इनमें गायक भी होते हैं। परंतु सुरनाया लंगा गाते नहीं हैं। वे सिर्फ फूंक वाले वाद्य ही बजाते हैं।

**राजस्थान की लंगा जाति के पारम्परिक वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है-**

**सिंधी सारंगी -** सिंधी सारंगी राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र जोधपुर, बाडमेर व जैसलमेर क्षेत्र के लंगा लोक कलाकारों में प्रचलित बहुत लोकप्रिय वाद्य है। भारतीय लोक वाद्य में प्रचलित अन्य सभी सारंगियों की तुलना में यह सबसे विकसित सारंगी मानी जाती है। इस वाद्य को शास्त्रीय संगीत की सारंगी के सबसे अधिक समीप का माना जाता है। यह वाद्य लंगा जाति के पारम्परिक लोक वाद्यों में से एक है।

**लंगा जाति की सिंधी सारंगी का विवरण इस प्रकार हैं -**

- इसका ढांचा शीशम की लकड़ी का बनाया जाता है और इसकी तबली लंबी होती है।
- नीचे से गोल, बीच में कुछ संकरी तथा ऊपर का भाग चौड़ा होता है।
- देखने में यह बड़े चरू (भांड) की तरह लगती है। इस पर चमड़े की झिल्ली मंडी जाती है।
- इसकी नाल चौड़ी होती है। नाल के ऊपर की तरफ पेटीनुमा चौकोर कक्ष बना होता है।
- इसकी दाई-बाई लहूनुमा दो-दो खुंटी लंगाई जाती है। नाल के दाएं पार्श्व में तीरनुमा खुटिया पंक्तिबद्ध लंगाई जाती है।
- इसमें बाज के मुख्य चार तार होते हैं। इनमें से दो तार स्टील के तथा दो तार पशु की आंत के होते हैं जिन्हें ताँत कहते हैं। ये तार घुडच पर आधारित होते हुए ऊपर लगी लट्टुनुमा खुटियों से बांधे जाते है। इन तारों को सा सा, पा पा स्वरों में मिलाया जाता है।
- सिंधी सारंगी में झार के सात तार पीतल के होते है तथा झील के सत्रह (17) तार स्टील के होते है। इन तारों को नाल की दाई तरफ लगी तीरनुमा खूंटियों से बांधा जाता है।
- इनमें से कुछ तार ऊपर वाली पेटी के बाई तरफ लगी छोटी खूंटियों से बांधा जाता है। यही तार गीत की धुन अथवा राग की आवश्यकता अनुसार मिलाए जाते हैं। यह वाद्य मुख्य रूप से तीन भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वर समूहों द्वारा मिलाया जाता है।
- सिंधी सारंगी को गज द्वारा बजाया जाता है अथवा वादित किया जाता है। इसका गज चुटियानुमा (हॉकी स्टिक जैसा) होता है जिसमें घोड़े के पूँछ के बाल लगे होते हैं। तारों पर गज का प्रयोग बहुत अद्भुत रीति से किया जाता है जिसमें गीत के बोलों को तालबद्ध रूप का आधार बनाया जाता है।

**गुजरातन सारंगी-** राजस्थान की लंगा जाति के गुजरातन सारंगी का विवरण इस प्रकार है-

- लंगा जाति के लोक कलाकारों में प्रचलित एवं लोकप्रिय वाद्य गुजरातन सारंगी है। इसे प्रायः छोटे बच्चों के द्वारा बजाया जाता है।
- गुजरातन सारंगी की बनावट :- रोहिडा, सागवान या केर की लकड़ी से बनाया जाता है।
- इसकी तबली लम्बी चतुष्कोणी होती है जिसका बीच का भाग कुछ संकरा होता है।
- गुजरातन सारंगी की लम्बाई लगभग 2 फुट होती है।
- नाल का ऊपरी भाग चोकोर पेटीनुमा होता है। इसके दायें बायें तार बांधने की खूटियाँ होती है जो लट्टूनुमा होती है।
- इसमें बाज के मुख्य चार तार होते है। इसमें से दो पशु की आंतों के तथा दो लोहे के होते हैं।
- इन्हें ऊपर वाली गोल खूटियों से बांधा जाता है।
- झील के 'आठ' तार होते है। ये नाल के दाई तरफ लगी खूटियों से बांधे जाते है।
- गुजरातन सारंगी को गज से बजाया जाता है। गज में घोड़े की पूंछ के बाल लगे होते है।
- इस वाद्य का वादन गायन की संगति में किया जाता है। गायक वाद्य का वादन करते हुए स्वयं ही गाता भी है।

- गज के तारों पर बिरजा का लेपन किया जाता है। इससे चिकनापन आ जाता है। अन्य बातें सिंधी सारंगी से मिलती-जुलती है।

**सुरिंदा लंगा -** जाति के सुरणईया लंगा जाति का प्रमुख पारम्परिक तंत्री वाद्य सुरिंदा है। प्रायः सुरिंदा वादक मुरला वाद्य की संगत में इसे प्रस्तुत करते हैं।

- सुरिंदा वाद्य का स्वतंत्र गायन में प्रयोग नहीं किया जाता। यह वाद्य संगत के रूप में ही प्रयोग में लाया जाता है।
- इस वाद्य का ढाँचा रोहिडा की लकड़ी से बनाया जाता है।
- इसकी तबली विचित्र रूप से बनी होती है। जिसका ऊपरी भाग महराव की शक्ल में उड़ते पक्षी की तरह लगता है।
- इस सुरिंदा वाद्य का बीच का भाग बिल्कुल संकरा होता है तथा निचला भाग गोलाई लिए कुछ लम्बा (कलश की तरह) होता है। ये भाग चमड़े की झील्ली से मंडा रहता है तथा नाश्पाती के आकार का होता है।
- इसकी नाल छोटी होती है। नाल के ऊपरी भाग में चतुष्कोपिक कक्ष बना होता है।
- तार बांधने की खूंटियाँ इस कक्ष के दाएं बाएं लगी होती है।
- सुन्दरता के लिए ऊपर की ओर कुछ-कलात्मक आकृति भी बनाई जाती हैं।
- सुरिंदा वाद्य के मुख्य तारों में दो तार स्टील की तथा एक तार पशु के आंत की होती है। इन्हें सा सा प भाव में मिलाया जाता है।
- पाँच तार 'झारे' (तरब) के होते है जिनको सा रे गा मा पा स्वर में मिलाया जाता है।
- दो तार 'झील' (बड़ी तरबे) के होते है जो सा व रे स्वरों में मिलाया जाता है।
- सभी तार वाद्य के ऊपरी भाग में रहते है। इसमें समतल मेरू तथा घोड़ी लंगाई जाती है। सभी तार इन पर आधारित रहती है।
- इसके वादक गिने चुने ही हैं।

**मोरचंग -** राजस्थान की लंगा जाति के कलाकारों में प्रचलित वाद्य है। यह वाद्य छोटा, बनावट में सरल है लेकिन राजस्थान सहित प्रायः पूरे भारत की लोक संस्कृति में व्यापक रूप से प्रचलित एवं लोकप्रिय है।

- यह वाद्य लोहे की छोटी कड़ी से बनाया जाता है।
- इस वाद्य का व्यास करीब चार-पाँच इंच होता है।
- छल्ले के एक तरफ का मुख खुला रखकर उसके सिरे ऊपर की तरफ मोड़ दिए जाते है तथा खुले मुख में पक्के लोहे की बनी, लटकी जिक्री (जिवहा) लंगाई जाती है। जो गोलाई के आर-पार होते हुए ऊपर से बिच्छू के डंक की तरह होती है।
- इस वाद्य का वादन दाँतो के बीच दबाकर मुख रंध्र से फूंक देकर किया जाता है।
- बजाते समय इसकी जिक्री पर तर्जनी तथा अंगूठे से हल्के आघात कर लयात्मक ध्वनियों व स्वरों का सृजन होता है।
- राजस्थान में यह वाद्य आजकल लंगा जाति के अलावा भी कई अन्य जातियाँ अपने गायन वादन की संगति के प्रयोग में लाती है।

**सुरनई (सहनाई) -** लंगा जाति के पारम्परिक वाद्यों में से सुरनई (सहनाई) भी एक प्रमुख वाद्य है। यह वाद्य शहनाई से मिलता-जुलता वाद्य है जो वर्तमान समय में लंगा जाति के सुरनई लंगा द्वारा बजाया जाता है।

- सुरनई वाद्य का निर्माण:- शीशम, सागवान अथवा केर की लकड़ी से बनाकर किया जाता है। केर की लकड़ी लंगा कलाकार द्वारा सबसे अच्छी मानी जाती है। इस लकड़ी का प्रयोग लंगा कलाकारों द्वारा अन्य वाद्य बनाने में भी किया जाता है।
- इस वाद्य में खजूर या ताड़ वृक्ष की रीड लगी होती है जो बहुत मोटी व सख्त होती है। इसलिए इसे बजाते समय लंगातार गीला करना आवश्यक होता है।
- इसकी लम्बाई करीब सवा फुट होती है तथा इसके आगे वाले संकरे भाग पर एक नलीका लंगाई जाती है। पत्ती (रीड) को इसी नलीका के साथ मजबूती से जोड़ा जाता है।
- पत्ती को होंठो से दबाकर लंगातार फूंकते हुए इसे बजाया जाता है इसलिए इसे नकसाँसी वाद्य माना जाता है।
- इसके ऊपरी भाग में छः छीद्र होते हैं और इसे शहनाई की तरह माना जाता है। इसे बजाते समय पत्ती को पानी से थोड़ा-थोड़ा गीला किया जाता है।
- इस वाद्य का वादन वैसे तो पूरे राजस्थान में प्रचलित है लेकिन मुख्य रूप से इस वाद्य को भील, जोगी, डोली और जैसलमेर क्षेत्र के लंगा जाति के लोग बजाते हैं।
- यह वाद्य मांगलिक अवसरों जैसे वैवाहिक अवसरों पर तथा देवोत्सव इत्यादि में लंगा कलाकारों द्वारा बजाया जाता है। विशेष तौर पर लंगा कलाकारों के जजमानों के घरों में जब कोई विशेष उत्सव अथवा विवाह या पुत्र जन्म का उत्सव होता है तो वे इस वाद्य का वादन करते हैं।
- इस वाद्य की खूबसूरती को बढ़ाने के लिए चाँदी की पतली चादर को चढ़ाया जाता हैं। जिस पर आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। इसके साथ में सुर सुरनाई वादक भी होते हैं।

**मुरला (मुरली) -** मुरला वाद्य (मुरली) एक लोक संगीत वाद्य है जो पुंगी वाद्य का विकसित रूप है। यह वाद्य लंगा कलाकार द्वारा बजाया जाता है। इसके आसपास का पुंगी वाद्य जो सूखी लौकी से बना होता है उसे जोगी व कालबेलिया जाति के लोग बजाते हैं। जो नीचे सुर का वाद्य होता है।

- इस तरह इस वाद्य के तीन भेद होते है-आगौर, मानसुरी एवं टांकी। छोटी व पतली लकड़ी की तुम्बी के आकार में निर्मित टांकी, मुरला या मुरली कहलाती है। यह वाद्य जैसलमेर, सिंध व पाकिस्तान के कई सीमापार से सटे इलाकों में बजता देखा जा सकता है।
- मुरला वाद्य केर की लकड़ी से बना होता है। इसका सुर ऊँचा होता है और टीप का सुर होने के कारण ही इसे टाँकी भी कहा जाता है।
- एक विशेष प्रकार के लम्बे नलीदार की तरफ लकड़ी की दो नलीकाएँ फंसाकर इन नलीकाओं में कगोर वृक्ष की पतली लकड़ी का बना एक-एक सरकंडा (रीड) लंगाया जाता है।

- एक नलीका से केवल ध्वनि निकलती है जबकि दूसरी नलीका से स्वर समूह बजाएं जाते है जिनसे धुनें निकलती हैं। इस वाद्य में लगभग पौने दो सप्तक की रेंज रहती है और गायन की सभी तकनीक का वादन किया जा सकता है।
- इसमें तीन छीद्र होते है तथा स्वरों का मिलान मोम की सहायता से किया जाता है। इसमें अलापचारी की सम्भावना भी रहती है।
- मुरला वाद्य का वादन लंगातार फूंक द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया को नकसाँसी कहा जाता है। इस वाद्य में अधिकतर लोक धुने बजायी जाती है।

इस वाद्य की ध्वनि को विशेष माड्यूलेशन्स के द्वारा बहुत मनोरंजक तरह से प्रस्तुत किया जाता है।

खड़ताल (खरताल) वाद्य

**खड़ताल -** खड़ताल वाद्य राजस्थान में जोधपुर शहर के पश्चिमी भाग के बाड़मेर व जैसलमेर जिलों के लंगा कलाकारों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। यह वाद्य लंगा कलाकारों के प्रमुख वाद्य में से एक है जोकि लय के विविध रूपों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

- यह वाद्य एक छोटा सा वाद्य है जो शिशम, रोहिड़ा या केर की लकड़ी से बनाया जाता है। इसमें लकड़ी के चार समतल टुकड़ों को हाथ में पकड़ा जाता है।
- इस वाद्य का आकार लम्बाई में दस अंगुल तथा चौड़ाई में चार अंगुल होता है। इस आकार की चार पट्टियाँ होती हैं।
- इस वाद्य को बजाने के लिए वादक को अपने प्रत्येक हाथ में दो-दो पट्टियाँ रखनी होती है, जो अंगूठे और अंगुलियों के बीच बीच में ढील देते हुए इस तरह पकड़ लेता है कि इनको परस्पर आघातित करते हुए कलाई से संचालित किया जा सके है। यह लयात्मक घन वाद्य है। इससे टक-टका टक की ध्वनि निष्पन्न होती है।
- कुशल वादक इसके वादन में ढोलक के सभी बोल भी निकाल सकता है। द्रुत गति में बजाने पर इससे बहुत सुन्दर लयात्मक छन्द सुनाई देते हैं। छोटे बच्चे इस वाद्य को मोहक अंदाज में प्रस्तुत करते हैं।
- काष्ठ खण्ड से निर्मित होने से इसे 'कठताल' और हाथ से बजाने के कारण इस वाद्य को 'करताल' नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

**अलगोजा -** अलगोजा वाद्य राजस्थान के लंगा कलाकारों द्वारा वादन किया जाता है। यह वाद्य लंगा कलाकारों के पारम्परिक वाद्यों में से एक जो पीढ़ी दर पीढ़ी लंगा कलाकारों द्वारा वादन होता आ रहा है। यह वाद्य बहुत ही सुरीला तथा आकर्षक ध्वनि वाला वाद्य है जो बांसुरी वाद्य से मिलता-जुलता है।

- अलगोजा वाद्य केर की लकड़ी से बनाया जाता है।
- अलगोजा वाद्य की दो नलिकाएं होती है। इन दो नलिकाओं में से एक नलीका को नर व दूसरी नलीका को मादी कहा जाता है।
- नर नलीका में सात छीद्र व मादी नलीका में नौ छीद्र होते है।
- नर नलीका में लंगातार एक स्वर बजता है जबकि मादी नलीका में सातों स्वरों को बजाया जा सकता है और धुन की प्राप्ति होती है।

**ढोलक -** ढोलक वाद्य राजस्थान के लंगा कलाकारों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। वैसे तो यह वाद्य अन्य जातियों द्वारा भी बनाया जाता है परंतु लंगा कलाकारों में ताल की दृष्टि से यह वाद्य एक महत्वपूर्ण वाद्य में से एक है। इस वाद्य का लंगा कलाकारों द्वारा सर्वप्रथम 1968 में प्रयोग 'आकाशवाणी' की रिकार्डिंग दिल्ली में किया गया। आज वर्तमान समय में यह वाद्य लंगा कलाकारों का एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य बन चुका है तथा हर प्रस्तुतीकरण में लंगा कलाकार इस वाद्य का प्रयोग करते है।

- ढोलक वाद्य का खोल सागवान, आम, नीम तथा शीशम की लकड़ी का बनाया जाता है।
- ढोलक की खोल की लम्बाई औसतन ढेड फुट की होती है तथा दोनों ओर के खुले मुखों का व्यास लगभग छः इंच से दस इंच तक का होता है।(खोल की बनावट के अनुसार)।
- ढोलक के खोल का मध्य भाग ऊभरा हुआ होता है जबकि दोनों तरफ के मुख मध्य भाग की अपेक्षा संकरे होते है।
- इस वाद्य में बकरे के चमड़े की पूड़ी लंगाई जाती है। इस खोल के एक तरफ मोटी चमड़ी तथा दूसरी तरफ पतली चमड़ी लंगाई जाती है।
- दोनों पूड़ियों के सिरों को कुछ समेट कर गजरे बनाए जाते है जिन्हें दोनों मुखों पर ढक्कन की तरह फिट कर के सूत की ढोर गजरे में डालते हुए गोलाई के चारों ओर परस्पर बांध दिया जाता है।
- डोरी डालते समय उसमें लोहे या पीतल के छल्ले डाल दिए जाते है ताकि उनके माध्यम से डोरी में तनाव दिया जा सके तथा ढोलक के स्वरों को उतारने व चढ़ाने तथा मिलाने की प्रक्रिया इन कड़ियों की सहायता से की जा सके।
- ढोलक के एक हिस्से को नर तथा दूसरे हिस्से को मादी कहा जाता है। नर वाले हिस्से को मढ़ते समय इसकी पूड़ि के भीतरी सतह पर चार पाँच इंच के वृत्तनुमा, राल से बने विशेष पदार्थ का लेप चिपकाया जाता है जिसे मसाला कहते है।
- नर की आवाज़ में गंभीरता एवं गूंज इसके मसाले के कारण होती हैं।

लंगा कलाकारों को पहले ढोलक वाद्य के प्रयोग की मनाही थी अतः गीतों के ताल पक्ष को रखने के लिए इन लोगों ने घड़े में फूंक मारकर उसमें से ढोलक की मधुर ध्वनि निकालने की विशिष्ट तकनीक का आविष्कार किया। इस तरह घड़े को फूंक से बजाने में ढोलक की जैसी घूँ घूँ की ध्वनि प्राप्त होती है। ये वाद्य बजाने वाले अब कम लंगा कलाकार रह गए हैं।

Add.: 242 C and D block kanishka apartment
Shalimar Bagh Delhi 110088 near haiderpur metro station
Mob.: 8860595309

आलेख

# भारतीय संगीत में जलतरंग वाद्य

सुज्ञान दानी

**सारांश**

भारत के घनवाद्यों में से एक विशिष्ट वाद्य है जलतरंग, जो भारतीय संगीत परम्परा में वैज्ञानिक ध्वनिविज्ञान तथा सौन्दर्यबोध - दोनों के अद्वितीय समन्वय का प्रतीक है। यह जल से भरे पोर्सलिन के प्यालों से निर्मित होता है, जिन्हें विशिष्ट स्वर (स्वर-सप्तक) में मिलाया जाता है। इस प्रकार यह वाद्य सुर-सटीकता एवं ताल-निपुणता दोनों का संगम है। प्रस्तुत निबंध में जलतरंग के निर्माण, संरचना तथा उसके भारतीय संगीत की विविध विधाओं में प्रयोग का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन यह दर्शाता है कि जलतरंग आज भी एक अद्वितीय घनवाद्य के रूप में प्रासंगिक है, जो रागों की सम्पूर्ण प्रस्तुति में सक्षम है। इसकी स्थायी आकर्षण-शक्ति न केवल इसके स्वरलालित्य एवं जल से जुड़ी प्रतीकात्मकता में निहित है, बल्कि इस बात में भी है कि यह कला, भौतिकी एवं सांस्कृतिक धरोहर तीनों को जोड़ने वाला एक शिक्षण-सेतु बन सकता है।

**मुख्य शब्दः** घनवाद्य, इडियोफोन, भारतीय वाद्य, जलतरंग, दुर्लभ वाद्य

**परिचय**

भारतीय कला-संगीत की विविध एवं बहुरंगी वाद्यपरम्परा में जलतरंग का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। दिखने में सरल किन्तु संगीत-संभावनाओं में गहन, यह वाद्य इस सिद्धान्त का मूर्त रूप है कि संगीत, साधारण पदार्थों जैसे जल और पात्र से भी उत्पन्न हो सकता है। 'जलतरंग' (अर्थात् जल की तरंगें) विज्ञान और कला, दोनों के अद्भुत संगम का उदाहरण है। ध्वनि, प्रकृति और मानवीय सृजनशीलता के पारस्परिक सम्बन्ध को यह वाद्य उत्कृष्ट रूप में प्रदर्शित करता है। यद्यपि आज इसकी उपस्थिति सीमित है, फिर भी इसकी स्वर-शुद्धि, प्रवाही स्वभाव और रागाभिव्यक्ति की क्षमता के कारण यह संगीतविदों और रसिकों दोनों के लिए आकर्षण का विषय बना हुआ है। यह लेख जलतरंग का अंगवैज्ञानिक, ध्वनिवैज्ञानिक तथा प्रदर्शन-परिप्रेक्ष्य से अध्ययन है।

**अंगविज्ञान**

मनुष्य का कंठ, प्रथम ज्ञात वाद्य माना जाता है, और अन्य सभी वाद्य उसी की अभिव्यक्तिपूर्ण क्षमता की खोज में विकसित हुए। भारतीय संगीतशास्त्र में वाद्यों को परम्परागत रूप से चार वर्गों तत् वाद्य (तार-वाद्य), सुषिर वाद्य (वायु-वाद्य), अवनद्ध वाद्य (चर्म-वाद्य) तथा घन वाद्य (ठोस-वाद्य), में विभाजित किया गया है। आधुनिक युग ने पाँचवाँ वर्ग - इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्र, भी जोड़ा जा सकता है। इन वर्गों में जलतरंग को घनवाद्य कहा जाता है, क्योंकि इसकी ध्वनि किसी तार, वायु या चमड़े से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पात्र के स्पन्दन से उत्पन्न होती है।

भारतीय कला-संगीत की परम्परा में जलतरंग, घटम, और मूर्षिङ्ग (मोरसिंग) जैसे घनवाद्य सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि घटम् और मूर्षिङ्ग प्रायः ताल-प्रधान भूमिका निभाते हैं, जलतरंग एक स्वर घनवाद्य है, जो हिन्दुस्तानी और कर्नाटक दोनों संगीत-पद्धतियों में एकल प्रस्तुति में सक्षम है।

**रचना एवं ध्वनिवैज्ञानिक सिद्धान्त**

परम्परागत जलतरंग पोर्सलिन अथवा सिरेमिक कटोरियों के समूह से निर्मित होता है, जिन्हें वादक के सम्मुख अर्धवृत्ताकार क्रम में सजाया जाता है। सामान्यतः बारह से पच्चीस कटोरियाँ प्रयुक्त होती हैं, प्रत्येक एक विशिष्ट स्वर का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन कटोरियों को शुद्ध जल से भरके वांछित स्वर में लाया जाता है अधिक जल डालने से स्वर नीचे उतरता है, कम करने से ऊँचा होता है। प्रत्येक पात्र प्रारम्भ में इस वांछित स्वर से ऊँचा भरा जाता है ताकि उसमें शुद्ध जल भरके इच्छित स्वर में लाया जाता है।

यह सूक्ष्म स्वर-संशोधन पश्चिमी क्रोमैटिक स्केल की स्थिर दूरी पर आधारित नहीं होता; वादक स्वयं राग के चलन को बजाते हुए प्रत्येक स्वर को श्रुति-स्तर

पर संतुलित करता है, जिससे भारतीय कला-संगीत के सूक्ष्म स्वरसौन्दर्य को सुरक्षित रखा जा सके।

ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से जलतरंग अनुनाद (resonance) तथा आवृत्ति-परिवर्तन (frequency modulation) के सिद्धान्त पर कार्य करता है। जब पात्र के किनारे को हल्के आघात से स्पर्श किया जाता है, तो उसका सम्पूर्ण शरीर कम्पन उत्पन्न करता है। पात्र में विद्यमान जल उस कम्पन की आवृत्ति को परिवर्तित कर ध्वनि को विशिष्ट स्वर प्रदान करता है। वादक लकड़ी अथवा फाइबर की छड़ियों से पात्रों को आघात करता है, जिससे कोमल, पारदर्शी एवं जल-तरंगों जैसी लयात्मक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

**वादन-प्रक्रिया**

जलतरंग का वादन लय-संवेदनशीलता और स्वर-संवेदनशीलता दोनों की माँग करता है। वादक प्रायः अर्ध पद्मासन या सुखासन में बैठकर दोनों हाथों से पात्रों को बजाता है। प्रत्येक पात्र निश्चित स्वर से सम्बद्ध रहता है तथा चयनित राग के भीतर प्रस्तुति की जाती है।

यद्यपि जलतरंग के स्वरों का अंतराल निश्चित होता है, दक्ष वादक सूक्ष्म कण्, मींड् जैसे अलंकारों की अनुभूति नियंत्रित प्रहार और जल-कम्पन के संयम से उत्पन्न कर लेते हैं। इसकी ध्वनि का क्षणिक स्वरूप कलाकार को लयात्मक वाक्य-विन्यास एवं कल्पनाशील अनुक्रम से रागात्मक प्रवाह निर्मित करने को प्रेरित करता है। यही इसकी कलात्मक चुनौती और सौन्दर्य दोनों है।

हिन्दुस्तानी संगीत में जलतरंग के साथ तबला और कभी-कभी पखावज भी प्रयुक्त होते हैं। इसमें राग की प्रस्तुति ध्रुपद शैली के आलाप-जोड़-झाला और खयाल शैली के गत-लयकारी रूपों में की जाती है। धुन तथा हलके गीतों में भी इसकी प्रस्तुति है। कर्नाटक संगीत में इसकी संगति प्रायः मृदंगम् और वायलिन के साथ होती है और कभी-कभी घटम्, खंजीरा, मोरसिंग भी प्रयुक्त होते हैं। इस संगीत में यह वाद्य वर्ण, कृति तथा तिल्लाना की शैलियों में ज्यादा प्रयुक्त होता है, जिनमें आलापन और स्वरकल्पना खंड सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार यह वाद्य, हिन्दुस्तानी और कर्नाटक - दोनों शास्त्रीय संगीत पद्धतियों में, स्वर एवं ताल दोनों की अभिव्यक्ति में समभाव रखता है।

**चलचित्र एवं जनप्रिय संगीत में भूमिका**

1930 के दशक में भारतीय चलचित्रों में ध्वनि के आगमन के साथ वाद्य-प्रयोग की नयी दिशाएँ खुलीं। जलतरंग की कोमल, झंकारमयी ध्वनि ने संगीतकारों का ध्यान आकृष्ट किया, जो निर्मलता, स्मृति या स्वप्निल भावों को अभिव्यक्त करना चाहते थे। इसकी ध्वनि जल-बिन्दुओं, काँच की झंकार या देवमंदिर की घंटियों की तरह अक्सर निष्कलुषता, ईश्वरत्व, प्रेम या प्रकृति के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुई।

प्रसिद्ध संगीतकार जैसे नौशाद, मदन मोहन, रोशन आदि ने बैजू बावरा, मुग़ल-ए-आज़म, कोहिनूर, अमर, दस्तक, बहाना, चित्रलेखा, दिल ही तो है, तथा बरसात की रात जैसी फिल्मों में जलतरंग का प्रयोग किया। इसकी झंकारपूर्ण ध्वनि नदी, वर्षा या भक्ति-दृश्यों को अलंकृत करती थी।

परन्तु इलेक्ट्रॉनिक सिंथेसाइज़र और डिजिटल सैम्पलिंग के आगमन के बाद जलतरंग धीरे-धीरे फिल्म-संगीत से ओझल होता गया। कृत्रिम ध्वनियाँ इसकी ध्वनि की नकल तो कर सकती थीं, किन्तु उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को नहीं। कलाकारों द्वारा मंच प्रदर्शन आज भी इसकी प्रामाणिक ध्वनि-सत्ता को संरक्षित रखे हुए हैं।

**समकालीन प्रासंगिकता एवं पुनरुद्धार**

हाल के दशकों में अनेक संस्थागत और व्यक्तिगत प्रयासों से जलतरंग के पुनरुद्धार का कार्य हुआ है। संगीत नाटक अकादमी तथा आकाशवाणी जैसी संस्थाओं ने दुर्लभ भारतीय वाद्यों पर विशेष परियोजनाएँ की हैं, जिससे उनका शिक्षण एवं प्रस्तुति पुनर्जीवित हो सके।

समकालीन कलाकार पंडित मिलिंद तुलंकर और विदूषी शशिकला दानी ने संगीत-समारोहों, कार्यशालाओं एवं शिक्षण-प्रवर्तन के माध्यम से जलतरंग के प्रति नये सिरे से रुचि उत्पन्न की है। उनके योगदान से यह सिद्ध होता है कि यह वाद्य आज भी आधुनिक शास्त्रीय परिवेश में सशक्त रूप से जीवित है।

शिक्षण की दृष्टि से जलतरंग वादन कला, ध्वनिविज्ञान एवं पर्यावरणीय प्रतीकात्मकता के समागम का एक उपयोगी माध्यम है। इसका जल-संवेदी स्वरूप भौतिकी, संगीतशास्त्र, इन्द्रिय अध्ययन तथा पर्यावरणीय सौन्दर्यशास्त्र, इन सबके बीच अन्तःविषयी संवाद का अवसर देता है।

उल्लेखनीय है कि जलतरंग से प्रेरणा लेकर भारतीय संगीत में काष्ठ-तरंग (लकड़ी की पट्टिकाओं का समूह), कांच तरंग (कांच की पट्टिकाओं का समूह), घट-तरंग (मिट्टी के पात्रों का समूह), तथा तबला-तरंग (दाएँ तबले के समूह) जैसे नये वाद्य भी विकसित हुए हैं, जो समान घनवाद्यीय अनुनाद-सिद्धान्त पर आधारित हैं।

**निष्कर्ष**

जलतरंग भारत की कला और विज्ञान की गहन एकता का जीवंत प्रतीक है। यह एक ऐसा घनवाद्य है जो स्वर और लय के बीच की सीमाओं को लांघता हुआ संगीत की आत्मा को मूर्त रूप देता है। यद्यपि इसका रूप नाजुक और वादन कठिन है, पर इसका स्वरलालित्य, पारदर्शी ध्वनि और प्रकृति से जुड़ी प्रतीकात्मकता इसे आज भी अनोखा बनाती है।

21वी सदी में अब, जब अनेक परम्परागत वाद्य विस्मृति के कगार पर हैं, तब जलतरंग अभी भी ऐसा एकमात्र घनवाद्य है जो पूर्ण रागों की प्रस्तुति करने में सक्षम है। शास्त्रीय, उप-शास्त्रीय और सुगम-संगीत जैसे तीनों प्रकारों में प्रस्तुत किया जानेवाला यह वाद्य भारतीय संगीत में मौलिकता और सृजनशीलता के मध्य एक जीवंत सेतु है।

Add. No. 10, 1st Main Road,Opp. St. Mary's High School,Karnataka Layout 2nd Stage,Basaveshwara Nagar, Bengaluru - 560079
Contact: 9901102588, E-mail: sugnandani@gmail.com

■

आलेख

# वाद्य संगीत में योग का तत्व : शरीर, मन और आत्मा की एकात्मकता

आचार्य जागृति

संगीत और योग दोनों ही भारतीय संस्कृति के अमूल्य रत्न हैं। ये दोनों साधनाएँ मनुष्य को उसके मूल स्वरूप से जोड़ने का कार्य करती हैं। योग शरीर, मन और आत्मा के संतुलन का मार्ग दिखाता है, तो संगीत- विशेषकर वाद्य संगीत- भावनाओं, ऊर्जा और चेतना को एक लय में बांधता है। जब इन दोनों का संगम होता है, तो उत्पन्न होता है नाद योग, वह अवस्था जहाँ ध्वनि स्वयं ध्यान बन जाती है और साधक की चेतना ब्रह्मांडीय स्पंदन से एक हो जाती है। आज के युग में जब जीवन की गति तीव्र और तनावपूर्ण हो गई है, संगीत वाद्यों के माध्यम से योग का अभ्यास मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और आध्यात्मिक उन्नति का सशक्त साधन बन गया है।

यह आलेख योग और वाद्य संगीत के पारस्परिक संबंधों के ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक आयामों का एक समीक्षात्मक तथा समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

**1. योग और संगीत का ऐतिहासिक संबंध**

भारत में योग और संगीत का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। दोनों की जड़ें वेदों और उपनिषदों तक फैली हुई हैं। 'सामवेद' को भारतीय संगीत का आदिग्रंथ कहा जाता है, जिसमें मंत्रों के उच्चारण के लिए विशिष्ट स्वर और लय निर्धारित थे। यह लयबद्ध उच्चारण ही आगे चलकर संगीत के रूप में विकसित हुआ। वहीं पतंजलि के योगसूत्र में ध्यान, प्राणायाम और धारणा के माध्यम से मानसिक एकाग्रता और आत्मानुभूति की बात कही गई है। प्राचीन ऋषियों ने पाया कि ध्वनि या नाद में ऊर्जा और चेतना दोनों समाहित हैं। उन्होंने कहा - **"नाद ब्रह्म"** अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि का मूल स्वरूप ध्वनि ही है। इस प्रकार, संगीत और योग दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है मनुष्य को अपने भीतर की शांति और चेतना से जोड़ना। प्राचीन आश्रमों में योगाभ्यास के दौरान वीणा, मृदंग, शंख या बाँसुरी जैसे वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। इनकी ध्वनि साधकों के मन को स्थिर, एकाग्र और भावनात्मक रूप से परिष्कृत करती थी। वेदों के मंत्रोच्चार की लय और स्वर स्वयं एक प्रकार का ध्यान संगीत है, जो आज भी योग साधना में प्रयुक्त होता है।

**2. संगीत वाद्यों का योगाभ्यास में महत्व**

संगीत वाद्य केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि चेतना के उपकरण हैं। योगाभ्यास में वाद्य संगीत का उपयोग शरीर और मन को ध्यानावस्था के लिए तैयार करने में किया जाता है।

**(क) मंत्र-संगीत और ध्यान**

योग में मंत्र जप एक प्रमुख अंग है। जब मंत्रों के साथ वाद्य संगीत जैसे तंत्र वीणा, बाँसुरी, हारमोनियम या तबला का संयोजन होता है, तो साधक की एकाग्रता गहरी हो जाती है। वाद्य के स्वर मंत्र की ध्वनि को कंपनात्मक रूप से समर्थन देते हैं, जिससे साधना का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है।

**(ख) ताल और प्राणायाम का संबंध**

प्राणायाम अर्थात् श्वास का नियंत्रण। जब श्वास-प्रश्वास को किसी ताल या बीट के अनुसार किया जाए, तो श्वास लयबद्ध होती है और फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है। उदाहरण के लिए, ढोलक या तबला की स्थिर ताल के साथ प्राणायाम करने पर श्वास की गति नियंत्रित और नियमित होती है।

**(ग) संगीत और योगासन का सामंजस्य**

योगासनों के दौरान यदि पीछे पृष्ठभूमि में बाँसुरी या वीणा की कोमल ध्वनि हो, तो शरीर और मस्तिष्क दोनों तनावमुक्त होते हैं। वाद्य संगीत मस्तिष्क की तरंगों को अल्फा स्टेट में लाता है, जिससे शरीर और मन गहरी विश्रांति की अवस्था में प्रवेश करते हैं।

**(घ) ध्यान में वाद्य का सहारा**

ध्यान की शुरुआत में मन अक्सर चंचल रहता है। ऐसे में वाद्य संगीत एकाग्र और स्थिर का कार्य करता है। धीरे-धीरे जब साधक ध्यान में प्रविष्ट होता है, तब बाहरी ध्वनि से अंतर्नाद की ओर यात्रा आरंभ होती है।

**समीक्षात्मक दृष्टि से:**

वाद्य संगीत योगाभ्यास को न केवल सौंदर्यपूर्ण बनाता है, बल्कि साधक की नाद चेतना को जागृत कर ध्यान को सहज करता है।

**3. मानसिक स्वास्थ्य पर योग-संगीत का प्रभाव**

आधुनिक मनोविज्ञान और न्यूरोसाइंस यह स्वीकार करते हैं कि संगीत मस्तिष्क के तंत्रिका तंत्र पर गहरा प्रभाव डालता है। जब योग और संगीत का संयोजन होता है, तो यह प्रभाव और भी शक्तिशाली हो जाता है।

- **तनाव और चिंता में कमी:**

वाद्य संगीत, विशेषकर बाँसुरी और वीणा की ध्वनि, मस्तिष्क में डोपामिन और सेरोटोनिन जैसे रसायनों का स्राव बढ़ाती है। इससे व्यक्ति में शांति और प्रसन्नता की भावना उत्पन्न होती है।

- **एकाग्रता और ध्यान में वृद्धि:**

योगाभ्यास के दौरान मधुर वाद्य ध्वनियाँ बीटा वेव्स को कम और अल्फा वेव्स को बढ़ाती हैं। परिणामस्वरूप ध्यान अधिक गहरा और स्थायी होता है।

- **भावनात्मक स्थिरता:**

संगीत वाद्य व्यक्ति की भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। योग के साथ वाद्य ध्वनि का प्रयोग व्यक्ति के मनोविज्ञान में संतुलन और सकारात्मक दृष्टिकोण लाता है।

**उदाहरण:** योग प्रशिक्षकों द्वारा अक्सर ध्यान सत्रों में "तिब्बतन सिंगिंग

बाउल्स" का प्रयोग किया जाता है। उनकी ध्वनि कंपन मस्तिष्क की आवृत्ति से मेल खाती है और ध्यान की गहराई को बढ़ाती है।

**4. शारीरिक लाभ : योग और वाद्य संगीत का समन्वय**

योग मूलतः शरीर की लय और संतुलन को पुनर्स्थापित करने की साधना है। जब इसमें वाद्य संगीत का समावेश होता है, तो यह प्रक्रिया अधिक स्वाभाविक और सौम्य बन जाती है।

- **मांसपेशियों का तनाव कम होना:**

वीणा, बाँसुरी या सन्तूर जैसे वाद्यों की ध्वनियाँ Parasympathetic Nervous System को सक्रिय करती हैं, जिससे मांसपेशियों में शिथिलता आती है।

- **ऊर्जा और गतिशीलता:**

तबला, ड्रम या मृदंग जैसे अवनद्ध वाद्य योगासन के दौरान शरीर में ऊर्जा का प्रवाह बढ़ाते हैं। यह शरीर की जैविक लय (Biological Rhythm) के साथ तालमेल बैठाते हैं।

- **श्वास नियंत्रण और रक्त संचार:**

बाँसुरी या शंख की ध्वनि श्वसन तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। इन वाद्यों के प्रयोग से प्राणायाम के दौरान श्वास का नियंत्रण और रक्त संचार दोनों में सुधार होता है।

**समीक्षात्मक दृष्टि से:**

संगीत वाद्यों के साथ योगाभ्यास शरीर को एक लयबद्ध साधना में बदल देता है, जहाँ प्रत्येक आसन और श्वास एक सुर बन जाता है।

**5. आध्यात्मिक विकास में योग-संगीत का योगदान**

योग का परम लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा की एकता। संगीत इस मार्ग पर एक सेतु का कार्य करता है। भारतीय दर्शन में कहा गया है।

**"नादं बिन्दुं कलां यत्र तत्र ब्रह्म तत्र संस्थितम्"**

अर्थात जहाँ नाद और बिंदु (ध्वनि और चेतना) का मिलन होता है, वहीं ब्रह्म की अनुभूति होती है। संगीत वाद्य जब श्रद्धा और एकाग्रता के साथ बजाए जाते हैं, तो वे साधक को ध्यान की गहराई में ले जाते हैं। संत तुकाराम, मीराबाई, और कबीर जैसे संतों ने अपने भजन और वाद्यों के माध्यम से भक्ति योग को सहज अनुभव बनाया। नाद योग इसी एकत्व की साधना है जहाँ वाद्य से उत्पन्न बाह्य नाद अंततः साधक के भीतर के अनाहत नाद (आत्मध्वनि) से मिल जाता है। यह मिलन ही योग की चरम अवस्था है।

**6. आधुनिक जीवन में योग और संगीत का प्रयोग**

आज के युग में योग और संगीत का मेल केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और जीवन शैली सुधार का एक आवश्यक उपकरण बन चुका है।

- **योग क्लासेस और रिट्रीट्स:**

कई योग केंद्रों में वाद्य संगीत का प्रयोग नियमित रूप से किया जाता है। बाँसुरी या हेंडपैन की ध्वनि योगासनों को अधिक सुखद और प्रभावी बनाती है।

- **म्यूजिक थेरेपी के साथ योग:**

चिकित्सक अब तनाव, अनिद्रा, और अवसाद जैसी समस्याओं के समाधान के लिए योग वाद्य संगीत" का संयोजन अपना रहे हैं। यह थेरेपी न केवल मनोवैज्ञानिक रूप से, बल्कि शारीरिक दृष्टि से भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

- **कॉर्पोरेट और शैक्षणिक क्षेत्र में प्रयोग:**

कई संस्थानों में कार्य के दौरान योग- नाद सत्र आयोजित किए जाते हैं ताकि कर्मचारियों का मानसिक स्वास्थ्य संतुलित रहे। वहीं स्कूलों में बच्चों के लिए संगीत योगसत्र ध्यान और अनुशासन बढ़ाने में सहायक हैं।

**7. योग-संगीत अभ्यास के लिए वाद्यों का चयन**

योगाभ्यास में प्रयोग होने वाले वाद्यों का चयन अत्यंत सावधानीपूर्वक होना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक वाद्य की ध्वनि का कंपन शरीर और मन पर अलग प्रभाव डालता है।

| वाद्य | प्रमुख उपयोग | प्रभाव |
|---|---|---|
| **बाँसुरी** | ध्यान, प्राणायाम | मन की शांति, गहरी श्वास |
| **वीणा / सितार** | ध्यान, भक्ति योग | भावनात्मक संतुलन |
| **हारमोनियम** | मंत्र जप, ध्यान | एकाग्रता और भक्ति |
| **तबला / मृदंग** | योगासन, सक्रिय ध्यान | ऊर्जा और तालबद्धता |
| **शंख** | योग की शुरुआत / समापन | शुद्धि और ऊर्जावान अनुभव |

**सुझाव:** योगाभ्यास की प्रकृति के अनुसार वाद्य का चयन करें। ध्यान और प्राणायाम के लिए शांति देने वाले वाद्य, और सक्रिय आसनों के लिए तालबद्ध वाद्य उपयुक्त रहते हैं।

**8. योग-संगीत का विज्ञान**

आधुनिक विज्ञान भी अब यह स्वीकार करने लगा है कि ध्वनि में ऊर्जा का एक विशिष्ट कंपन होता है। भौतिक स्तर पर यह कंपन मस्तिष्क की तरंगों (Brain Waves) को प्रभावित करता है, जबकि सूक्ष्म स्तर पर यह मनोभावों और चेतना पर कार्य करता है।

- **अल्फा वेव्स -** ध्यान और शांति की अवस्था में उत्पन्न
- **थीटा वेव्स -** गहरे ध्यान और अंतर्दृष्टि की अवस्था
- **बीटा वेव्स -** तनाव और सक्रियता की अवस्था

संगीत वाद्य इन तरंगों को नियंत्रित करने की क्षमता रखते हैं। योग के साथ मिलकर यह प्रभाव मनुष्य को गहरे ध्यान, आत्मसंतोष और आध्यात्मिक एकत्व की ओर ले जाता है।

**निष्कर्ष**

योग और वाद्य संगीत दोनों ही मानव जीवन को संतुलित, सुंदर और सार्थक बनाने के साधन हैं। इनका संगम केवल कलात्मक नहीं, बल्कि जीवन के समग्र स्वास्थ्य और चेतना से जुड़ा हुआ है। वाद्य संगीत योग के प्रत्येक स्तर शारीरिक (Asana), मानसिक (Dhyana), और आध्यात्मिक (Samadhi) को गहराई प्रदान करता है। इनकी लय में शरीर का संतुलन, इनके स्वर में मन की शांति और इनके नाद में आत्मा की अनुभूति निहित है। "नाद ब्रह्म" की अनुभूति तब होती है जब साधक के भीतर और बाहर का संगीत एक हो जाता है, यही योग का वास्तविक लक्ष्य है। अतः कहा जा सकता है कि "योग और वाद्य संगीत दोनों मिलकर मनुष्य को बाह्य कोलाहल से निकालकर अंतर्नाद की ओर ले जाते हैं।" यही वह अवस्था है जहाँ शरीर, मन और आत्मा पूर्ण सामंजस्य में आ जाते हैं और यही है नाद योग का परम सार।

योग गुरु, सांस्कृतिक आयोजक, संगीत समीक्षक
पता: 191-D, LIG DDA Flats, Motia Khan, Delhi-110055
Mob.: 08700754310
Email: jagritisarita@gmail.com

# जनजातीय समुदायों की पारंपरिक लोककथाओं में वाद्यों के अवतरण की प्रारम्भिक अवधारणा

डॉ. पूरन सहगल

लोक को कभी-कभी आकाश कहने का मन होता है और कभी सागर! दोनों अगम और अनन्त है। अगम और अनन्त तो ईश्वर भी है। तब यदि मैं लोक को ईश्वर कहूँ तो किसी विद्वान को इन्कार नहीं करना चाहिए। वैसे लोक तो इनसे भी अगम है। उसे समझना और समझ कर उसका बखान करना शब्दातीत है। ईश्वर के विषय में तो वेदों से लेकर अब तक इतना बखाना गया है कि पिष्ट पेषण जैसी स्थिति बन गई है। हाँ आकाश की विशालता और विराटता इनसे अधिक गहन है। सभी कुछ उसी की छत्रछाया में निहित है।

लोक और वेद दो जीवन की सलिला के प्रवाह को संयमित करते हैं। यही बात महात्मा तुलसीदास कहते हैं।

**"लोक वेद मत मंजुल कूला"**

वेदाधार में जीवन में कई बंधन दिखलाई देते हैं कई वर्जनाएँ हैं। लोकाधार तो स्वच्छंदता को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता। बावजूद इसके लोकाचरण परम्पराओं की मर्यादा का खण्डन भी तो नहीं करता। वह संयमन को बनाए रखता है। जीवन सलिला को तट का उलंघन नहीं करने देता। सांस्कृतिक संयम और मर्यादा का पालन करने का संदेश देता है।

लोक प्रवृत्ति मूलक है और शास्त्र निवृत्ति मूलक। लोक भूमि पुत्र है। उसे अपनी माता समझता है। यह भी सत्य है कि उसका साहित्य जिसे हमने लोक साहित्य के नाम से जाना है तथा जिसे भाषा (लोक बोली) अभिव्यक्ति प्रदान करती है। वह जन-जन की मनोभावना का सच्चा और सुथरा बखान होता है। बेलाग, निष्पक्ष और निर्द्वन्द्व और निस्वार्थ भी। लोक संस्कृति अर्थात 'सम्यक संस्कृति' संस्कृति और सभ्यता में अन्तर है। जीवन पद्धति, रीति रिवाज, करनी, विचरनी, कथनी, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ ये सब सभ्यता कही जाती है। संस्कृति इन सब को संयमित करती है। इन्हें स्वच्छंद होने से रोकती है। और जब भी इनमें अकल्याणी रूढ़ियाँ पनपने लगती है तब संस्कृति उनका वर्जन कर उन्हें नकार देती है।

हमारी संस्कृति वास्तव में आदिवासी लोक संस्कृति का ही तो विस्तार है। आदिम जातियों के पर्व, त्यौहार, व्रत, अनुष्ठान उनकी कला, संगीत, नृत्य, वाद्य सबके सब आज विकसित और परिमार्जित एवं परिशोधित होकर हमारे जीवन को धन्यता प्रदान कर रहे हैं।

वृक्ष पूजन से लेकर ईशवंदना तक हमें यदि आदिवासी समाज की जीवन पद्धतियों को समझने का अवसर मिले तब उनकी सांस्कृतिक मान्यताएँ प्राकृतिक होकर जीवन की सहजता को पूरित करती हैं।

उनके लोक नृत्य कालांतर में लोक जीवन की साधना और आनंदानुभूति के आधार बने। आज जो शास्त्रीय नृत्य हैं वे सभी आदिवासी लोक नृत्यों के ही विकसित स्वरूप हैं। इसी प्रकार उनके लोक वाद्य भी तो आज के विकसित लोक वाद्यों की ही परंपरागत शैली के स्वरूप और परिष्कृत रूप धरे हैं।

मैंने अपने पूर्व लेख में "पीपाड़ी" का वर्णन किया था। जिसे एक चरवाहे ने पीपल पानों से क्रीड़ा करते करते फूँक द्वारा एक पीऽऽऽ जैसी ध्वनि को प्रकट लिया था। जिसे हम सुषिर वाद्यों की जननी कह सकते हैं। उसी "पीपाड़ी' के आधार में बाँसाधार से बाँसुरी और मुरली के रूप में विकसित होकर कृष्ण की अधरधरी जगतमोहनी के रूप में धन्य हो गई। सभी सुषिरवाद्य उसी पीपाड़ी के ही वंशज हैं।

लोक वाद्यों से निकली झंकार को यदि अनहदनाद कहा गया तो सच ही कहा गया है। लोकवाद्य जहाँ सहज होते हैं वहीं लयगर्भित भी। उनमें निराश जीवन को उमंगित और उत्साहित कर देने की अद्भुत क्षमता होती है।

लोकवाद्यों का आधार तो प्रकृति स्वयं है। गाय का रंभाना, सिंह का दहाड़ना पक्षियों का कलरव, बादलों का गर्जन, मेडकों का टर्राना, भंवरों का गुनगुनाना, कोयल का कुहुकना, मयूर की पीकांऽऽक-पीकांऽऽक कर घन का आह्वान करना, पपीहे की पींऽऽऽ, बिल्लियों की म्याऊँ, श्वानों का भौंकना, गर्दभ का रेंगना, अश्व का हिनहिनाना, बैल का डकारना, हाथियों का चिंघाड़ना, वायु का वृक्षों को झूमने के लिए प्रेरित करना और सांय सांय की ध्वनि करना। बाँसों के झुरमुट से वायु का घर्षण कर सीटियाँ बजाना। सागर का गहन गम्भीर गर्जन आदि हमारे वाद्यों के सृजनाधार है। बाँसों के वायुगर्जन से उत्पन्न मधुर मधुर सीटी के बजने और उसकी मनमोहक ध्वनि से आनंदमग्न युवती को रीझते देखकर एक युवक ने किस प्रकार बाँसुरी का सृजन किया। यह आदिवासी लोककथा में मैंने पिछले वाद्य यंत्रों के कलासमय अंक में लिखी थी। किस प्रकार एक युवती बाँस कुँज में बैठी हवा के घर्षण से निकलने वाली ध्वनि से मोहित होकर आनंद मगन थी। उसे रिझाने और अपनी ओर आकर्षित करने हेतु युवक ने एक पोले बाँस से

निरंतर प्रयोग करते हुए एक फूँक वाद्य (सुषिर वाद्य) का निर्माण किया। जहाँ वह लोक कथा मनोरंजक है वहीं उसके नायक युवक द्वारा प्रयास भी कम एवं महत्त्वपूर्ण मनोरंजक नहीं है। क्या हमें उस युवक द्वारा निर्मित उस बाँस फूँक यंत्र को बाँसुरी वाद्यों का जननी मानने में संकोच करना चाहिए?

कई बार कहा जा चुका है कि, गीत-संगीत और नृत्य त्रयी की जीवन शक्ति संगीत अर्थात वाद्ययंत्रों में ही निहित होती है। बिना संगीत के न तो गीत गतिमान हो सकता है और न ही नृत्य। संगीत का आधार तो वाद्ययंत्र ही माने जाते हैं। जैसे शक्ति के बिना शिव 'शव' हो जाता है उसी प्रकार बिना संगीत के गीत नीरस और नृत्य मात्र उछलकूद बनकर रह जाता है। नृत्य की समस्त मुद्राये सार्थक होकर भी निरर्थक हो जाती है। गीत केवल भाषा का प्रपंच बनकर रह जाता है।

एक और लोक कथा स्मरण हो रही है। एक आदिम युवक-युवती युगल एक सरोवर के निकट बैठकर प्राकृतिक छवियों को निहारते आनंदित हो रहे थे। तभी युवती ने एक छोटा सा पत्थर उठाकर सरोवर के जल में फेंका। उससे एक ध्वनि हुई "ढुप्प" ! तब युवक ने भी एक पत्थर जल में फेंक दिया फिर वही ध्वनि उठी ढुप्प ! उसके बाद युवती ने पत्थर फेंका। फिर युवक ने भी फेंका। होते-होते वह एक क्रीड़ा में बदल गया। बार-बार क्रम से वही ध्वनि उठती रही ढुप्प !ढुप्प!! उस ध्वनि की मौज में दोनों युवक-युवती आनंदविभोर हो खड़े होकर झूमने लगे। फिर नृत्य करने लगे। अनायास तालियाँ बजाने लगे और तालियों की धप्प-धप्प से उनका नृत्य गतिमान हो उठा। वही ताली ही तो "ताल" और "लय" का प्रथम अवतार थी। उसी ताल और लय ने "अवनद्ध" यंत्रों को प्रेरित किया। जो आज शास्त्रीय आधार पाकर विश्व वंद्य हो गया है। मैं उसे अवनद्ध वाद्यों का जनक मानता हूँ।

जब रात्री में अलाव के इर्द गिर्द आदिम स्त्री-पुरुष घूमते हुए एक प्रकार से नृत्य करते हुए चक्राकार घूम-घूम कर आनंद विभोर होकर मुँह से हाऽऽ-हाऽऽ, होऽऽ होऽऽ, हू-हू जैसी ध्वनियाँ निकालकर दोनों हाथों से तालियाँ बजाते हुए, पैरों को धरती पर पटकते हुए झूम-झूमकर चक्राकार घूमते-घूमते नृत्यरत हो उठते थे। तब उनके पैरों से निकलने वाली थप्प थप्प, धप्प-धप्प, तालियों से निसृत ध्वनियाँ एकमेव होकर जिस सुखानुभूति का आभास करवाती, प्रकृति और पुरुष को आनंदित करती हुई एकमेव हो उठती थी। तब सुषिर वाद्यों और अवनद्ध वाद्यों का समवेत आदिम मनोरंजन से नृत्याभास होता रहा और कालांतर में नृत्य कला का विकास हुआ। उसी से बाना नृत्य और गरबा नृत्य का भी विकास हुआ। ऐसा मानना होगा।

भले ही उस आदिम मानव के पास कोई वाद्ययंत्र नहीं था किन्तु उन्हें दैहिक वाद्ययंत्रों के प्रयोग से भौतिक वाद्ययंत्रों के निर्माण की प्रेरणा अवश्य प्राप्त हुई।

इस प्रकार प्रकृति जीवी उस आदिम समूहों ने उछल-उछल कर, नृत्य मुद्राओं को प्रकट करते हुए तालियाँ बजा-बजाकर, सीटियाँ बजा-बजाकर किलकारियाँ मारकर, नृत्य, संगीत की क्रियाओं का आविष्कार करना प्रारंभ किया। जैसा कि, मैंने पूर्व में भी कहा है नृत्य और संगीत का परस्पर मैत्रीभाव होता है। दोनों एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं। दोनों हाथों से शंखाकार आकृति में जोड़कर अँगूठे के प्रथम संघ्र से फूक लगाने पर जो ध्वनि प्राप्त होती है वही ध्वनि शंख से भी प्रकट होती है। उसी ध्वनि को घुग्घु कोयल, श्वान, सियार जैसी कंठ ध्वनियों से मिलान कर कई बार सांकेतिक व्यवस्थाएँ भी की जाती रही हैं। उदाहरणार्थ अपने दल को सावधान करना। आक्रमण के लिए तत्पर करना आदि। दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों को जिव्हा को पीछे मोड़कर उन पर स्थापित कर फूँक लगाने से जिस सीटी की बजाहट होती है वह भी अद्भुत होती है। इसी प्रकार अधर को सिकोड़ कर फूँक मारकर भी सीटी बजाई जाती है। यह सब सुषिर वाद्यों के प्रेरक प्रसंग है।

इसी प्रकार एक और लोक कथा तो अद्भुत, अजीब और गजब है-

एक बार एक आदिम पुरुष ने सूखे हुए चमड़े पर बाँस की छोटी सी कीमड़ी से प्रहार किया। उस प्रहार से ढब्ब की ध्वनि प्रकट हुई। उसने वह प्रहार बार-बार किया बार-बार के प्रहार से ढब्ब-ढब्ब, ढब्बा ढब्ब, फिर डम्म डम्म की ध्वनि होने लगी। उस क्रीड़ा से उसे आनंद आने लगा। धीरे-धीरे उसी चर्म प्रहार का उद्घोष रूप बदलता रहा और कालांतर में ढोल-ढोलक, चंग, मांदल, टिमकी, गुदुम, ढपला, मृदंग, ताशा, कुण्डी, ठिसकी जैसे अवनद्ध वाद्यों का विस्तार हुआ।

इसी प्रकार एक बार एक आदिम युवती ने बॉस को पत्थर औजार से थोड़ा सा चीरा। शेष भाग को मुठ्ठी में पकड़ कर दूसरे हाथ पर थपकी लगाई तब एक धुन निकली खन्न। उसने उस बाँस को फिर चार भागों में चीरा लगाया। तब खन्न की ध्वनि और अधिक मुखर हो उठी। धीरे-धीरे वह युवती बाँस को चीरों (सलाखों) में बाँटती गई। एक प्रकार का झुनझुना बन गया। उसे उसने एक शिला पर बजाया। तब वही ध्वनि और भी झनक उठी। उसने उसे अपना वाद्य बना लिया और यदा कदा बजाती रही।

एक बार उस युवती ने बम्बूल की सूखी फलियों को एकत्रित किया। उन्हें अलाव में जलाने के उद्देश्य से। सूखी फलियों में बीजों की रुणक सुन कर उसे एक तरकीब सूझी। उसने उन फलियों को उस बाँस वाले झुनझुने को सलाखों (तीलियों) में एक पतली लता तार से बाँध लिया। अब तो वह और भी मधुर ध्वनि वाला झुनझुना बन गया। उसे देखकर अन्य युवती व युवकों ने भी ऐसे झुनझुने बना लिए और फिर तो समूह नृत्यों में ताली, चर्म वाद्य, पैर का ढसका, हा-हा, हू-हू, हो-हो की मुख ध्वनियों, बाँस की फूंकनियां, पीपाड़ी, हस्त शंख आदि सुषिर वाद्यों के साथ घन वाद्य भी शामिल हो गए।

इन्हीं घन वाद्यों को कालांतर में आज के उन्नत घन वाद्यों का दादा-परदादा माना जा सकता है। मंजीरा, मोरचंग, घुंघरु, घड़ियाल, सांकल,

करगल, घंडा, चिमटा, खड़ताल, सांकल, थाली आदि वाद्यों का विस्तार इसी बाँस झुनझुन के परिष्कृत रूप ही तो है।

जनजातीय वाद्यों के प्रमाण उद्भव और विकास का इतिहास जान पाना तो अत्यंत कठिन है। शायद पाना भी बहुत ही जटिल और लम्बित प्रश्न है। जनजातीय समाज प्रकृति जीवी समुदाय है। तथा यह भी मान्यता है कि, जनजातीय में बल्कि लोकजीवन में किसी भी कला विधा का विकास कोई एक व्यक्ति नहीं अपितु समूह कला और करतब में सुधार करता रहता है। और उसमें निखार आता जाता है। यह लीला तो अद्भुत और गजबी है। यह विकास व्यक्तिनिष्ट न होकर व्यष्टिनिष्ट है। समय साध्य भी है।

मानव सदा से प्रयोगधर्मी रहा है। आवश्यकता और आविष्कार की क्रीड़ा चलती रहती है। चली ही आ रही है। क्या यह संभव नहीं कि, आज के वाद्यों में आने वाले समय में और भी परिष्कार हो जाए। कुछ नये वाद्ययंत्रों का नवसृजन हो जाय? शास्त्रीय वाद्यों का इतिहास सहज है। उनके सृजन की जानकारी भी सहज है। यह हमारे युग की सृजन क्रिया है।

जब धातु युग आया तब उसी ताली की थपकी अवनद्ध से मजीरा प्रकट हो गया। चिमटा, झांझ, खंजरी वाद्य अस्तिस्व में आया। कुछ वाद्य ऐसे भी हैं जिनमें दो प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं। यथा रावण हत्था। मुलरूप रूप से यह तत वाद्य की श्रेणी में आता है किन्तु इसके गज के दाहिने सिरे पर घुंघरुओं का एक गुच्छा बंधा रहता है। इसे बजाने पर तत वाद्य और घन वाद्य के सम्मिलित स्वर निष्पादित होते हैं। इसी प्रकार खंजरी यह मूलरूप से अवनद्ध वाद्य है किन्तु इसमें एक तरफ घुंघरु बंधे रहने के कारण थाप लगाने पर अवनद्ध वाद्य और घन वाद्य दोनों का आनंद होता है। ऐसा ही वाद्य है "झींका"। यह वाद्य लकड़ी की लम्बी दो पट्टियों के मध्य से लेकर दस पीतल के गोल-गोल छोटे पहिये लगे रहते हैं। इस वाद्य को जब दोनों हाथों से पकड़ कर हिलाते हैं तब एक मधुर झनझनाहट की ध्वनि निसृत होती है तब यह तत वाद्य और घन वाद्य का आनंद देता है। इस प्रकार शामिल बाजा माना जा सकता है। और भी कई वाद्य ऐसे हैं जिनमें एक साथ सम्मिलित वाद्यों का आनंद प्राप्त होता है।शास्त्रीय वाद्यों का इतिहास तो सहज रूप से कई ग्रंथों में से प्राप्त किया जा सकता है किन्तु जनजातीय वाद्य यंत्रों का कोई लिखित अथवा क्रमिक विकास या उद्भव प्राप्त करना तो लोकाधारित ही संभव है।

मैंने पूर्व एक लेख में लिखा है कि, एक लोक धारणा के अनुसार "त्रिपुर वध के पश्चात प्रसन्न होकर शिव नृत्यरत हुए। उनके नृत्य को स्वर प्रदान करने के उद्देश्य से ब्रह्मा ने त्रिपुर के रक्त से मिट्टी सान कर अवनद्ध वाद्य ढोल का निर्माण किया। उसी के चमड़े से उसे मढ़कर ब्रह्मा जी ने गणपति को ताल और लय (ताल+लय ताली) वाद्यों की सृष्टि हुई। स्वयं ब्रह्माजी ने ही सरस्वती को तत वाद्य वीणा प्रदान की।

यदि हम थोड़ा सा और भी विचार करें तब हमें ज्ञात होगा कि, विष्णु का वाद्य (आयुद्ध) शंख (सुषिर वाद्य) शिव का वाद्य डमरू (अवनद्ध वाद्य) सरस्वती की वीणा तत्त वाद्य तथा लक्ष्मी के पावों में रणक-रणक, झणक-झणक बजने वाली किंकणियों की मधुर ध्वनि घन वाद्य की प्रस्तुति देकर इन चारों देव-देवियों के इन वाद्य या आयुधों को यदि हम वाद्य यंत्रों का आदि स्वरूप या प्रतीक मान लेने की स्वीकृति दे सकेंगे। तब हमारे जनजातीय समुदायों के उस प्रयोगधर्मी प्रयासों का महत्व कम नहीं हो जायेगा?

जो भी हो ! जनजातीय समुदायों के वाद्ययंत्रों का आदिम प्रयास एवं उनका प्रयोगधर्मी प्रयास वन्दनीय है।

जनजातीय समुदायों के लिए तो उनके द्वारा सृजित सभी वाद्ययंत्र उनकी जीवन धारा के प्राणाधार हैं। इनके बिना तो उनके नृत्य, उनके गीत बल्कि उनकी जीवन चर्या ही बेरसी और बेअर्थी हो जाती है। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है गीत-नृत्य और संगीत की त्रिवेणी परस्पर तो सार्थकता प्रदान करती ही है। यह एक परम सत्य है किन्तु वाद्ययत्रों का अस्तित्व सर्वोपरि है। कृष्ण का रास बाँसुरी के बिना कैसे सजता? इसी प्रकार ढोल के बोल भी अनेक रस्मों के जीवनाधार होते हैं। आप दूर बैठे अपने घर में ढोल की आवाज सुनकर अंदाज लगा सकते हैं कि, यह ढोल कौन सी "रीत" में बज रहा है।

सब रीतों की ढोल धुन पृथक-पृथक ! एक "वारी ढोल" बजता है। वह संकेत करता है कि, गाँव में खतरा होने वाला है या फलां गाँव या समूह ने हमारे गाँव में अपराध कर दिया है। उसका प्रतिशोध लेना है। सभी जन चौक पर आ जाओ। लोक कथाओं को मिथक कहकर उन्हें कपोल कल्पित मान लेना जनजातीय समुदायों के प्रति अपराध करना है। ये लोककथाएँ पृथक-पृथक जनजातीय समुदायों में आदि परम्परा से लोक कथक्कड़ों के कंठ में जीवित चली आ रही हैं।

आज भले ही हमें इन कथाओं में आश्चर्य बोध हो अथवा मनघड़ंत का भाव हमारे भीतर फुफकारने लगे किन्तु यह है सत्य।शैल चित्रों में गेरू, कोयले और खड़िया से बनी अनघड़ रेखाओं और चित्रात्मकता इन लोक कथाओं की प्रमाणिकता सिद्ध कर देती है।अभी भी जनजातीय समुदायों की कलाधर्मिता को समझने के लिए हमें इन्हीं लोकाधारों को अपना शोधाधार बनाना होगा। शोधार्थियों के लिए जनजातीय लोककथाएँ शोधाधार बने। यह विस्तार का सम्बल बने। कई तथ्य प्रकट हों। वाद्ययंत्रों पर ही नहीं लोक नृत्यों, लोक गीतों पर अभी भी सम्पूर्ण शोध होने के कपाट खुले है। उनके भीतर झांकना नहीं अपितु प्रविष्ट भी होना पड़ेगा। उन्हे समझ कर सार तत्त्व निकालना होगा।

लेखक: लोक साहित्य के अध्येता हैं।
संपर्क : निदेशक- मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा जि. नीमच (म.प्र)-458110
मोबा. 9424041310

■

# मध्यप्रदेश के स्थापना दिवस पर विशेष...
# मध्यप्रदेश में निवेश, नवाचार और रोज़गार के संकल्प का अभ्युदय

डॉ. मोहन यादव

मध्यप्रदेश आज अपनी स्थापना के 70वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। 1 नवंबर 1956 को अस्तित्व में आये मध्यप्रदेश में विकास की नई यात्रा विगत दो दशकों से आरंभ हुई, जो प्रदेश को देश में अग्रणी राज्य बनाने की संभावनाओं तक पहुंच गई है। यह सुखद संयोग है कि आज देवउठनी ग्यारस के पावन अवसर पर राज्योत्सव का आयोजन किया जा रहा है। हमारे तीज, त्यौहार और परंपराएं हमारी संस्कृति का आधार हैं। उत्सव के आनंद से ही भविष्य निर्माण के भाव निर्मित होते हैं। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि प्रदेश में सभी त्यौहारों को व्यापक स्वरूप में मनाया जा रहा है। अपने त्यौहारों का सांस्कृतिक संदर्भ ही हमें पुरातन से नूतन की प्रेरणा देता है।

हमारे लिए गर्व की बात है कि भारत का हृदय मध्यप्रदेश वन, जल, अन्न, खनिज, शिल्प, कला, संस्कृति, उत्सव और परंपराओं से समृद्ध है। हमें मां नर्मदा, चंबल, पार्वती, शिप्रा नदियों का सान्निध्य और बाबा महाकाल का आशीर्वाद प्राप्त है। यह भगवान परशुराम की जन्मस्थली, भगवान श्रीकृष्ण की शिक्षास्थली और आदि शंकराचार्य जी की तपोस्थली है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने चित्रकूट में लंबा समय व्यतीत किया है। इतिहास प्रसिद्ध राजा नल, भर्तृहरि, विक्रमादित्य की जन्म स्थली भी मध्यप्रदेश रही है। सम्राट विक्रमादित्य ने ही शकों के आतंक से भारत को मुक्त किया था। संसार की पहली वैज्ञानिक कालगणना "विक्रम संवत्" का आरंभ भी मध्यप्रदेश के उज्जैन से हुआ था।

मुझे बताते हुए प्रसन्नता है कि हम अपने ऐतिहासिक गौरव की दिव्यता और प्राकृतिक भव्यता के साथ विरासत से विकास की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने भारत को विश्व में सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए विकसित भारत निर्माण का संकल्प दिया है। प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व में हमारा देश विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। प्रधानमंत्री जी के इस संकल्प को साकार करने और विकसित भारत निर्माण के लिए मध्यप्रदेश में निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। प्रदेश में उद्योग वर्ष मनाने के साथ राज्योत्सव की थीम 'उद्योग और रोज़गार' रखी गई है। इसमें प्रदेश के सतत विकास, सांस्कृतिक समृद्धि और जनभागीदारी का भाव है।

यशस्वी प्रधानमंत्री जी की प्रेरणा से हमें निवेश और औद्योगिक विकास की यात्रा को परिणाम में बदलने का अवसर प्राप्त हो रहा है। विविधता से समृद्ध मध्यप्रदेश के हर क्षेत्र की अपनी विशेषता, क्षमता और दक्षता है, जिसमें अनंत संभावनाएं हैं। इसी को केन्द्र में रखकर हमने प्रदेश में रीजनल इन्वेस्टर्स समिट का नवाचार किया। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि प्रदेश के हर क्षेत्र का कौशल और उद्योग इसमें शामिल हुआ है। व्यापार को सरल बनाने और निवेशकों से सीधे संवाद के लिए हमने मार्च 2024 से उज्जैन से निवेश यात्रा शुरू की और फिर जबलपुर, ग्वालियर, सागर, रीवा, शहडोल, नर्मदापुरम, मुंबई, कोयंबटूर, बेंगलुरु, पुणे, दिल्ली, यूके, जर्मनी, जापान, दुबई तक इसे विस्तार दिया। विभिन्न सम्मेलनों, राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय रोड-शो के माध्यम से मध्यप्रदेश के निवेश में कई गुना वृद्धि हुई है।

निवेशकों को एक सक्षम, सरल और सुरक्षित वातावरण प्रदान किया गया है। प्रदेश में इनोवेशन हब, स्टार्टअप पॉलिसी, फंडिंग सपोर्ट और इन्क्यूबेशन नेटवर्क स्थापित कर देश की स्टार्टअप क्रांति को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है।

मुझे यह बताते हुए खुशी है कि मध्यप्रदेश ने पिछले एक वर्ष में औद्योगिक निवेश के क्षेत्र में कई ऐतिहासिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट में घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों ने प्रदेश में निवेश के प्रति गहरी रुचि दिखाई है। खनिज कॉन्क्लेव में प्रदेश को 56 हजार करोड़ से अधिक के निवेश प्रस्ताव मिले, जो खनिज नीति और प्रशासनिक सरलता का परिणाम हैं। आईटी पार्क, इलेक्ट्रॉनिक निर्माण इकाइयां और नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में भी निवेश को प्रोत्साहन मिला है।

मुझे यह बताते हुए हर्ष है कि प्रदेश एक ऐसे परिवर्तनकाल से गुजर रहा है जहां निवेश, नवाचार और रोज़गार आधार स्तंभ हैं। लगभग दो वर्षों में प्रदेश ने उद्योग, कृषि, दुग्ध उत्पादन, पर्यावरण, ऊर्जा और सामाजिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में अनेक ऐतिहासिक उपलब्धियाँ अर्जित की हैं।

भारत के समग्र विकास के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने हमें गरीब, युवा, अन्नदाता और नारी (GYAN) के सम्मान का मंत्र दिया है। विकास के इन आधार स्तंभ के अनुरूप प्रदेश विकास और कल्याण के लिए युवा शक्ति, गरीब कल्याण, किसान कल्याण और नारी सशक्तिकरण मिशन के तहत कार्य किया जा रहा है।

गरीब कल्याण मिशन में स्वरोज़गार और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधा आदि की दिशा में कार्य

किया जा रहा है। मध्यप्रदेश कौशल विकास मिशन और स्टार्टअप नीति 2025 ने युवाओं को जॉब सीकर से जॉब क्रिएटर में परिवर्तित किया है। कौशल विकास मिशन के माध्यम से युवाओं को उद्योग-आधारित प्रशिक्षण दिया जा रहा है। रोज़गार मेले, अप्रेंटिसशिप कार्यक्रम और डिजिटल स्किल सर्टिफिकेशन जैसे प्रयास युवाओं को रोज़गार से जोड़ रहे हैं। रोज़गार सृजन हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है। शासकीय और निजी क्षेत्रों में युवाओं के लिए स्थायी, कुशल और सम्मानजनक अवसर उपलब्ध किये जा रहे हैं। मध्यप्रदेश देश का पहला राज्य है जिसने शासकीय भर्ती का कैलेण्डर जारी किया और उसके अनुरूप भर्ती प्रक्रिया भी आरंभ हो गई है।

कृषि क्षेत्र को नवाचार के साथ सशक्त बनाने की दिशा में एक नई क्रांति का सूत्रपात हुआ है। प्रदेश सरकार ने ड्रोन आधारित फसल निरीक्षण, स्मार्ट सिंचाई प्रणाली और कृषि उत्पाद मूल्य संवर्धन पर विशेष फोकस किया है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना और मुख्यमंत्री खेत-तालाब योजना सहित अन्य प्रयासों से किसानों के लिए सिंचाई क्षेत्र बढ़ाने का लगातार प्रयत्न किया जा रहा है। केन-बेतवा और पार्वती-कालीसिंध-चंबल लिंक परियोजना से प्रदेश के किसानों को सिंचाई और पानी की सुविधा व्यापक स्तर पर उपलब्ध होगी। प्रदेश में सिंचाई का रकबा 52 लाख हेक्टेयर से अधिक हो चुका है। इसे दोगुना करने का लक्ष्य है। आगामी 3 वर्षों में सिंचाई क्षेत्र का रकबा 100 लाख हेक्टेयर करने की योजना है। कृषि उपज का प्रत्यक्ष भुगतान, ऑनलाइन मंडी व्यवस्था और जैविक खेती के प्रोत्साहन ने अन्नदाताओं की आय में वृद्धि की है। मध्यप्रदेश गेहूं, सोयाबीन, चना और मसालों के उत्पादन में अग्रणी प्रदेश हैं।

महिला सशक्तिकरण को आर्थिक स्वावलंबन से जोड़ने की दिशा में नारी शक्ति मिशन परिवर्तनकारी सिद्ध हो रहा है। लाड़ली बहना योजना के माध्यम से लाखों महिलाओं को आर्थिक सुरक्षा मिली है। महिला उद्यमिता नीति के तहत महिलाओं को लघु उद्योग, डेयरी, हस्तशिल्प और सेवा क्षेत्र में अवसर प्रदान किए जा रहे हैं। महिलाओं द्वारा संचालित स्व-सहायता समूह को वित्तीय सहायता और बाजार उपलब्ध कराया जा रहा है। यह मिशन नारी शक्ति ही नहीं बल्कि नये भारत की आधारशिला है।

गौ-धन हमारी अर्थव्यवस्था का स्थायी स्तंभ बने इसके लिए हमने गौ-संवर्धन और दुग्ध उत्पादन को आर्थिक नवाचार का केंद्र बनाया है। मुख्यमंत्री गौ-संवर्धन मिशन के तहत प्रदेशभर में गौ-अभयारण्य और गौ-सेवा केंद्रों की स्थापना की गई है। लगभग दो वर्षों में प्रदेश ने दुग्ध उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि हासिल की है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि प्रधानमंत्री जी के मार्गदर्शन और प्रदेशवासियों के सहयोग और संबल से कल्याणकारी नीतियों और निर्णयों को अमल में लाने में सफलता प्राप्त हुई है। मध्यप्रदेश की स्वर्णिम यात्रा सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास के साथ आगे बढ़ रही है। गरीब के चेहरे पर मुस्कान, किसान की खुशहाली, नारी का सम्मान और युवाओं का उज्ज्वल भविष्य हमारा संकल्प भी है और लक्ष्य भी। आइये, हम सब मिलकर समग्र विकास के साथ आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश बनाएं और विकसित भारत के निर्माण में सहभागी बनें।

प्रदेशवासियों को मध्यप्रदेश के 70 वें स्थापना दिवस की मंगलकामनाएं...।

लेखक : मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

समवेत

## वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.वीणा सिन्हा को कला समय भेंट

हाल ही में आचार्य प्रभु दयाल जी के साथ श्री भँवर लाल जी से आत्मीय वार्ता हुई। वे "कला समय " पत्रिका के माध्यम से देश की साँस्कृतिक विरासत का पुनर्विलोकन कर रहे हैं। कला समय के विभिन्न अंकों में भारतीय वाद्यों का अनोखा संसार उद्घाटित होता है, व्यंग्य पर केंद्रित विशेषांक है, लोक व शास्त्रीय नृत्य संगीत का सारगर्भित ज्ञान है कला के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण किया गया है। उन विशेषताओं के अलावा अद्वैत दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर निरंतर चर्चा जारी है। बधाई आपको। मैंने भी अपनी पुस्तकें उन्हें प्रदान की। इस रोचक भेट की यादें संजो कर रखी हैं। साझा कर रही हूँ।

-वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.वीणा सिन्हा

# उस्ताद अली अकबर खां साहब...
# जिनके नाम से जगमगाता है मैहर घराना !

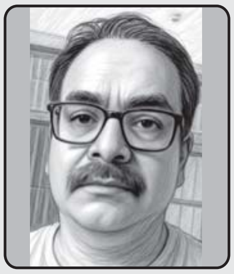

डॉ. प्रदीप मिश्र

मैहर घराने के उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ के भारतीय शास्त्रीय संगीतज्ञ और सरोद वादक थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत को उन्होंने समूचे विश्व में स्थापित करने के साथ ही उसके प्रचार-प्रशिक्षण का कार्य भी बड़ी शिद्दत के साथ किया। उन्होंने सरोद वादन को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महान संगीतकार उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब और मदीना बेगम के पुत्र , अली अक़बर ख़ाँ साहब का जन्म **14** अप्रैल **1922** को वर्तमान बांगला देश में स्थित कोमिला ज़िले के शिबपुर गाँव में हुआ। उन्होंने अपनी गायन तथा वादन की शिक्षा, अपने पिता से दो वर्ष की आयु में प्रारम्भ की। उनके चाचा, फ़कीर अफ़ताबुद्दीन से तबला वादन भी सीखा। उस्ताद अल्लाउद्दीन ख़ाँ ने इन्हें कई अन्य वाद्यों में भी पारंगत किया, पर अन्ततः निश्चय किया कि इन्हें सरोद पर ही ध्यान देना चाहिए।

बाबा अलाउद्दीन खां साहब के गुरु उस्ताद वजीर खां साहब, महान संगीतकार तानसेन के शिष्य हुआ करते थे, इसलिए अली अकबर खां साहब भी तानसेन की संगीत-परंपरा के अनुयाई थे। उनके पिता और गुरु अलाउद्दीन खां साहब ने उन्हें सख्त अनुशासन में संगीत की तालीम दी। उन्हें अट्ठारह घंटे अभ्यास कराया जाता था। बाबा ने उन्हें संगीत के साथ ही नए रागों के निर्माण का प्रशिक्षण देते थे। अली अकबर खां साहब ने अपने पिता से साज बजाने के साथ, उसमें नए परिवर्तन और नए साजों के निर्माण की कल्पना और उन्हें मूर्त रूप देने की तालीम भी प्राप्त की।

**1939** में अली अकबर खां साहब ने इलाहाबाद में संपन्न अखिल भारतीय संगीत समारोह से अपनी सार्वजनिक संगीत-यात्रा का प्रारंभ किया। सोलह वर्ष की आयु में मैहर छोड़कर ऑल इंडिया रेडियो में उन्होंने संगीतकार की नौकरी ज्वाइन कर ली। वहां उनका नाम शिबू दत्ता रखा गया। उनके कार्यक्रमों से श्रोताओं की संख्या में अभूतपूर्व इजाफा हुआ।

ऑल इंडिया रेडिया पर उनके कार्यक्रम सुनकर मैहर राजा ने उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब को बुलाया और कहा, 'शिबू दत्ता नाम का सरोद वादक, तुम्हारे बेटे अली अकबर से बेहतर कलाकार है...' अलाउद्दीन खां साहब ने रेडियो पर प्रोग्राम सुना तो राजा की बात उन्हें सच लगी। लेकिन जब पता लगाया तो शीबू दत्ता, उनका बेटा अली अकबर ही निकला। उन्होंने उसे फिर से मैहर बुला लिया और संगीत में जो कमी थी , उन्हें दूर करने के लिए फिर से सख्त अभ्यास शुरू कराया गया। फिर उनकी शादी करा दी गई।

बीस साल की उम्र में उनकी पहली रिकार्डिंग एचएमव्ही ने लखनऊ में की। जोधपुर के राजा उमेद सिंह और फिर उनके पुत्र हनुमंत सिंह के दरबार में उनकी नियुक्ति संगीतकार के रूप में हो गई। जोधपुर में वे सात साल रहे, वहां उन्हें उस्ताद की पदवी प्राप्त हुई। लगभग इसी दौर में उनके पिता और गुरु अलाउद्दीन खां साहब ने उनकी संगीत प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्हें 'स्वर सम्राट ' की उपाधि दी। लेकिन अली अकबर खां साहब अपने नाम के आगे उस्ताद या कोई और उपाधि लगाना पसंद नहीं करते थे। उनकी बेटी लाजवंती ने जब इसकी वजह पूछी तो उन्होंने कहा, 'मेरे पिता ने मुझे जो नाम दिया है, उसके अलावा मेरे लिए कोई पहचान या उपाधि कोई मायने रखती।'

अली अकबर खान साहब एक पथप्रदर्शक और रचनात्मक प्रतिभा वाले अद्वितीय संगीतकार थे, वे सरोद के सबसे सिद्धहस्त वादक साबित हुए। उनकी प्रस्तुतियों से उनके श्रोताओं को पूरी तरह से एक अलग लोक में पहुंच जाते थे। उनके सरोद की प्रारंभिक ध्वनि, उनके श्रोताओं की आत्मा को झकझोर देने के लिए काफी होती थी। वह अपनी आँखें बंद करके बैठते थे उसके कंधे झुके हुआ करते थे, सिर झुका हुआ होता था, और उनके हाथ, बारीक धुन वाली परफ़ेक्ट पिच पर सरोद को पकड़ हुए होते थे। उनकी उँगलियाँ सधे हुए संतुलन से तार को हिला थीं और यंत्र से धीरे-धीरे मानव अस्तित्व की आवाज़ निकल रही होती थीं। वाद्य से पैदा हुए स्वर, श्रोता और स्वरों के बीच सौंदर्यपूर्ण संवाद पैदा हुआ करते थे।

अली अकबर खान ने सरोद वादकों के लिए नई ऊंचाइयां हासिल कीं क्योंकि वह पश्चिम में रिकॉर्ड करने वाले पहले भारतीय संगीतकार थे। उनकी शानदार रचनाओं के लिए पूर्वी और पश्चिमी दोनों संगीतकारों ने उनकी संगीत उपलब्धियों की प्रशंसा की। लॉर्ड येहुदी मेनुहिन ने उन्हें 'एन एब्सोल्यूट जीनियस' (दुनिया का सबसे महान संगीतकार) कहा और उन्हें **1955** में यूएसए में प्रदर्शन और रिकॉर्ड करने के लिए आमंत्रित किया।

अली अकबर खान साहब का लंबा जीवन और करियर सरोद की उनकी महारत के साथ युगों और महाद्वीपों तक फैला हुआ है। उन्होंने **1956** में कलकत्ता में पहला अली अकबर संगीत कॉलेज खोला क्योंकि भारतीय शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाना उनके जीवन का मिशन था। **1960** के दशक में उन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत की पहली पश्चिमी एलपी रिकॉर्डिंग की, और ऑलिस्टेयर कुक के ओम्निबस पर भारतीय संगीत का पहला

टेलीविजन प्रदर्शन दिया, जिसने पश्चिम में भारतीय संगीत की लोकप्रियता की लहर का बीज बोया। **1967** में उन्होंने भारतीय संगीत सीखने के इच्छुक विदेशी छात्रों को भारतीय संगीत सिखाने का फैसला किया और सैन राफेल, कैलिफ़ोर्निया में अपना स्कूल खोला, जहाँ उन्होंने अगले **42** वर्षों तक पढ़ाया और पश्चिमी और भारतीय मूल के हजारों छात्रों को प्रशिक्षित किया। संस्थान. उन्होंने **20** से अधिक वर्षों तक स्विट्ज़रलैंड के बेसल का दौरा किया और **1985** में स्विट्ज़रलैंड में अली अकबर कॉलेज ऑफ म्यूजिक खोला।

अली अकबर खानसाहब भारतीय शास्त्रीय संगीत के बारे में जागरूकता फैलाना चाहते थे और इसलिए उन्होंने वार्षिक सेमिनार आयोजित करना शुरू किया, जिसने पूरे यूरोप से छात्रों को आकर्षित किया। बुनियादी से लेकर अग्रिम स्तर तक कॉलेज ने सितार, सरोद, तबला जैसे विभिन्न वाद्ययंत्रों पर निर्देश दिया, जिसमें भारतीय शास्त्रीय गायन संगीत के साथ-साथ इसके सिद्धांत और इतिहास भी शामिल थे। कॉलेज , नियमित रूप से भारत के कुछ बेहतरीन संगीतकारों को सेमिनार में आख्यान और प्रशिक्षण देने और कार्यशालाएँ आयोजित करने के लिए आमंत्रित करता है जैसे - श्रीमती लक्ष्मी शंकर, उस्ताद अल्लारक्खा खान साहब, उस्ताद जाकिर हुसैन, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, यूएस.सुल्तान खान, पं.जसराज, प्रो. जॉर्ज रूकर्ट, पं. रविशंकर, गुंदेचा ब्रदर्स और कई अन्य। स्थापना से लेकर आज तक, अली अकबर कॉलेज ने **14** से अधिक देशों के **1500** से अधिक छात्रों को प्रशिक्षण दिया है, और भारत के बेहतरीन गुणी लोगों के **180** से अधिक संगीत कार्यक्रम आयोजित किए हैं।

उस्ताद अली अकबर खां साहब

अली अकबर खानसाहिब ने अपने पूरे करियर में फिल्मों के लिए संगीत तैयार किया और रिकॉर्ड किया। उन्होंने चेतन आनंद की "आंधियां" **(1953)** से शुरुआत करके भारत में बड़े पैमाने पर संगीत रचना की और आइवरी मर्चेंट की "हाउस होल्डर" और "खुदितापाशन" ("हंग्री स्टोन") के लिए संगीत तैयार किया, जिसके लिए उन्होंने "सर्वश्रेष्ठ संगीतकार" का पुरस्कार जीता।

अली अकबर खान को **1993** में जोधपुर पैलेस के स्वर्ण जयंती समारोह में 'हाथी सरूपा' और 'दोवारी तजीम' की उपाधियाँ मिलीं। उन्हें भारत के सभी सर्वोच्च संगीत पुरस्कार मिले और उन्हें "राष्ट्रीय संपदा" माना गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में उन्हें मैकआर्थर "जीनियस अवार्ड" और नेशनल हेरिटेज फ़ेलोशिप से सम्मानित किया गया, जो उन्हें **1997** में व्हाइट हाउस में हिलेरी क्लिंटन द्वारा प्रदान किया गया था। इसके अलावा वह एशियन पेंट्स शिरोमणि अवार्ड - हॉल ऑफ़ प्राप्त करने वाले दूसरे प्राप्तकर्ता बने।

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि उनके पिता बाबा अलाउद्दीन खान ने भारतीय संगीत की पहली लिखित स्वरलिपि बनाई। उन्होंने पश्चिमी शास्त्रीय संगीत स्वरलिपि प्रणाली सीखी और शास्त्रीय रागों में सामंजस्य के साथ आर्केस्ट्रा रचनाओं का आविष्कार किया। **14** जून **1994** को, बाबा अलाउद्दीन खान साहब की मैहर की संगीत परंपरा को संग्रहित और संरक्षित करने के लिए, 'अली अकबर खान फाउंडेशन' की स्थापना की गई थी, जिसे बाबा अलाउद्दीन सेनिया घराना (सेनिया घराना तानसेन वंश की ध्रुपद गायकी से संबंध ररखता है।) के नाम से जाना जाता है। यह लिखित, रिकॉर्डेड या मौखिक प्रारूपों में उपलब्ध रचनाओं का एक विशाल भंडार प्रदान करता है। बाबा अलाउद्दीन खान साहब की 100 से अधिक रचना पुस्तकें हैं, जिन्हें उनके शिष्यों द्वारा संरक्षित, प्रतिलेखित, सूचीबद्ध और अंग्रेजी में अनुवादित किया गया है।

**16**वीं-**20**वीं शताब्दी की लगभग **10,000** रचनाओं के दुर्लभ संग्रह के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं, जो परिवार के एक निजी संग्रह से संबंधित थे। इस संग्रह में आवाज़ और वाद्ययंत्रों के लिए **360** अलग-अलग अभ्यास, पुरानी पारंपरिक रचनाएँ और तंत्रकारी शैली (वाद्य भाषा विज्ञान) में बाबा अलाउद्दीन की अपनी रचनाएँ, ध्रुपद शैली और पुराने तराना में गाने और ताल (ताल चक्र) की एक विशाल विविधता शामिल है, जो सभी काफी दुर्लभ हैं। दुर्भाग्य से, इसका अधिकांश भाग निरंतर भौतिक गिरावट की स्थिति में है और इसे भावी पीढ़ियों के लिए संगीत की राष्ट्रीय विरासत के रूप में संरक्षण की आवश्यकता है।

अली अकबर खान साहब ने एक बार सरोद पर अपने प्रशिक्षण के बारे में लिखा था, 'यदि आप दस साल तक अभ्यास करते हैं, तो आप खुद को खुश करना शुरू कर सकते हैं, **20** साल के बाद आप एक कलाकार बन सकते हैं और दर्शकों को खुश कर सकते हैं, **30** साल के बाद आप अपने गुरु को भी खुश कर सकते हैं। लेकिन अंततः एक सच्चा कलाकार बनने से पहले आपको कई वर्षों तक अभ्यास करना होगा - तभी आप भगवान को भी प्रसन्न कर सकते हैं।'

उस्ताद ने वास्तव में प्रदर्शन के सभी मानक हासिल कर लिए थे और **18** जून, **2009** की शाम को **87** वर्ष की आयु में अपने परिवार और करीबी शिष्यों के साथ शांतिपूर्वक चले गए। उनका जाना पूरे संगीत जगत के लिए एक बहुत बड़ी क्षति थी।

उस्ताद अली अकबर खां साहब, मैहर घराने के दैदिप्यमान सितारे हैं, जो अनंत काल तक संगीत के आकाश में चमचमाता रहेगा।

संपर्क: डी-1 रामविहार सतना (मध्य प्रदेश)- 485001
9827063496

# शंकराचार्य और रामानुजाचार्य

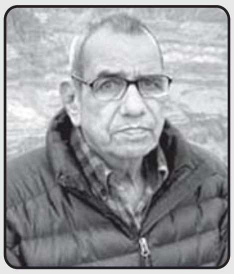

गौरीशंकर दुबे

श्री शंकराचार्य और श्री रामानुजाचार्य का भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान है। दोनों आचार्यों में अनेक समानता होने पर भी वे दो विभिन्न विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व करते है। अनादिकाल से वैदिक सम्प्रदाय कल्याणकारक माने गए हैं। सभी का लक्ष्य एक मात्र चेतन परमात्मा तत्व की प्राप्ति ही है। शंकराचार्य ज्ञान मार्ग के तो रामानुजाचार्य उपासना या भक्ति के प्रकाश स्तम्भ है। शंकराचार्य का जन्म 788 ई. में तथा रामाजुजाचार्य का जन्म 1037 ई. में हुआ, किन्तु संयोग से दोनों की जन्मतिथि बैशख शुक्ल पंचमी है। दोनों का जन्म ब्राह्मण परिवार में और दक्षिण भारत में हुआ। शंकर के अवतार शंकराचार्य है तथा शेष के अवतार रामानुजाचार्य है। शंकर ज्ञान निधि एवं विरक्त है इसी से आचार्य शंकर भी ज्ञानी और विरक्त हुए। शेष भगवद् भक्त तथा कर्म निष्ठ है इसी से रामानुज कर्मनष्ठि एवं भक्त हुए। दोनों के समक्ष लोकोपकार की भावना थी। दोनों ही नास्तिकता और भोगवाद के विरूद्ध थे। दोनों का लक्ष्य था एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति। किन्तु दोनों के साधन भिन्न – भिन्न थे। शंकराचार्य एकमात्र ज्ञान से ही मोक्ष-परमात्मा की प्राप्ति बतलाते है और कर्म तथा भक्ति को ज्ञान का साधन स्वीकार करते हैं जब कि रानानुजाचार्य कर्म तथा ज्ञान को भक्ति का साधन मानते है और मोक्ष भक्ति से ही बतलाते है। दोनों ने प्रमाण में उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र आदि को स्वीकार किया है। इन पर भाष्य लिखकर दोनों आचार्यो ने अपने मत का प्रतिपादन किया और स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना की।

गीता अध्याय 3 श्लोक 42 में आया है- **'यो बुद्धेः परतस्तु सः।'** जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है वह काम है। 'बुद्धेः अपियः परः स काम इत्यर्थः।' यह रामानुज का मत है। शंकराचार्य इस पर भाष्य करते है- **'यः सर्वदृश्येभ्यों बुद्धयन्तेभ्यः अभ्यन्तरः, यं देहिनं इन्द्रियादिभिः आश्रयैः युक्त कामो ज्ञाना वरण द्वारेण मोहयति इति उक्तं स बुद्धेः दृष्टा परमात्मा।'** इसका अर्थ है कि जो बुद्धि पर्यन्त समस्त दृश्य पदार्थो के अन्तिरतम व्यापी है, जिसके लिए कहा है कि उस आत्मा को इन्द्रियादि आश्रयों से युक्त काम ज्ञाना वरण द्वारा मोहित किया करता है वह बुद्धि का दृष्टा परमात्मा सबसे श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि रामानुजाचार्य बुद्धि से भी श्रेष्ठ काम को मानते है और शंकराचार्य बुद्धि से श्रेष्ठ परमात्मा को कहते है।

(1) शंकराचार्य के अनुसार एक अद्वितीय ब्रह्म ही तत्व है इसके अतिरिक्त दृश्यमान प्रपण्च कुछ नहीं है। रामानुज मत में चिदचिद् रूप शरीर विशिष्ट ब्रह्म सत्य है तथा इसके तथा उसके (जीव और जगत्) से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है।

(2) शंकराचार्य मत में ब्रह्म सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य है। रामानुजाचार्य के अनुसार सजातीय विजातीय भेद से शून्य नहीं है।

(3) शंकराचार्य के मत में ब्रह्म निर्विशेष तथा निर्गुण है परन्तु रामानुज मत में ब्रह्म सविशेष ही है, स्वभाव से उसमें कल्याण कारी गुणों की सत्ता है, प्राकृत हेय गुणों से वह सर्वथा हीन है।

(4) शांकर मत में ब्रह्म ही मायोपाधि से ईश्वर और अविद्योपाधि से जीव कहलाता है परन्तु जड़ जगत् प्रतिभासिक (मिथ्या) ही है अत: तत्व एक ही है। रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म ही ईश्वर है, उसके शरीर भूत जीव और जगत् उससे भिन्न है तथा नित्य है अत: पदार्थ तीन है, एक नहीं।

(5) शंकरचार्य के अद्वैत मत में जीव स्वभावत: एक है, परन्तु देहादि उपाधियों के कारण वह नाना प्रतीत होता है। किन्तु रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में जीव अनन्त है, एक दूसरे से नितान्त पृथक् है।

शंकराचार्य की दृष्टि में एक मात्र पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म की ही है क्योंकि सर्वमिदयमात्मा (बृहदा 4-5-7) यह सब आत्मा ही है और तत्वमसि (छान्दोग्य 6-8-7) वह तू ही है श्रुति प्रमाण है। जब कि रामानुजाचार्य के मतानुसार 'चित्, अचित् और ईश्वर भेद से तीन पदार्थ है। चित् पदार्थ भोक्ता जीवन ईश्वर से भिन्न अणु है। अचित् पदार्थ भोग्य प्रकृति है और ईश्वर पदार्थ इन दोनों का नियामक तथा इन से भिन्न है। ईश्वर की उपासना से जीव की मुक्ति होती है। यह मान्यता रामानुजाचार्य की है। किन्तु श्रुति इन पदार्थो का प्रथम वर्णन करती है और पश्चात् कहती है कि अधिकारी पुरुष जिस समय इन ईश्वर, जीव एवं प्रकृति तीनों को ब्रह्म रूप अनुभव करता है तब कृतकृत्य हो जाता है। **'यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।'** (श्वेताश्वि 1-9) ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है 'नानन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।' (श्वेता 6-15) इन प्रमाणों से शंकराचार्य का मत ही साधु प्रतीत होता है।

एक बात और है कोरे शास्त्र - ज्ञान को शंकराचार्य ने कभी मान्यता नहीं दी। उनका कहना है कि जो **अहं ब्रह्मास्मि** कहते हैं और मैं कर्ता हूँ मैं भोक्ता हूँ भी कहते है वह ज्ञान और कर्म दोनों से पतित होने के कारण उनका कभी कल्याण नहीं होता। जब किसी धर्म या सिद्धान्त को मानने वालों में विकृति उत्पन्न हो जाती है तब उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अन्य सिद्धान्त सामने उपस्थित होता है। इसी स्थिति में रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का विकास हुआ जो सर्वथा उचित ही कहा जा सकता है। कोरे वाचिक ज्ञानी का कभी ज्ञान से लाभ नहीं होता। ज्ञान श्रुति और अनुभव पर आधारित है। **ज्ञानं चैकात्म्य दर्शनम्** इस भगवद्वाक्य के अनुसार एकात्म्य दर्शन ही ज्ञान है और यह दर्शन अनुभव है केवल वाणी का विलास नहीं है। जो इस स्थिति के योग्य नहीं है उनके लिए रामानुज का भक्तिमार्ग ही श्रेयस्कर है। यह भी मुक्ति का एक सोपान है, परम कल्याण प्रदायक और निरापद आश्रय है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति शंकराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों की ऋणी है। श्रुतियों के रहस्यों को दोनों आचार्यो ने विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकाशित किया और अधिकार भेद से परम कल्याण पथ प्रदर्शित किया।

संपर्क: सनसिटी कॉलोनी सी 55 सैलाना रोड़, रतलाम 457001, म.प्र.

## भारतीय ज्ञान परंपरा में महामाहेश्वर का

# भारतीय आचार्य परंपरा में अद्वैत और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का शैव-संगम

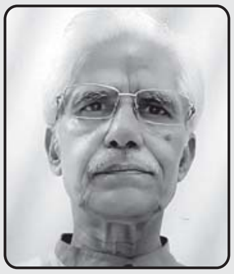

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

महामाहेश्वर आचार्य अभिनव गुप्त के भारतीय चिंतन धारा को प्रदत्त अभिदान पर विचार पूर्व अद्वैत, प्रत्यभिज्ञा और वैष्णव परंपरा के उल्लेखनीय आचार्यों के स्मरण पूर्वक में पुण्यश्लोक आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल के वर्ष 2017 के उस 'आकाश-पत्र' को यहां उद्धृत करना चाहता हूँ जिसमें उन्होंने अभिनव गुप्त के भोपाल में शताब्दी-स्मरण संदर्भ पर एक सारगर्भित टिप्पणी की थी-

(प्रेषक- आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल २० जून २०१७ )

पंडित प्रवर प्रभुदयाल जी,जय सियाराम !

आपने मुझे अन्तरिक्ष मार्ग से डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का आलेख 'अथ श्री अभिनवगुप्त चरितम्' भेजा और आग्रह किया कि मैं इस पर एक टिप्पणी लिखूं। आप जानते हैं कि मैं समीक्षक नहीं हूं, पाठक हूं। एक पाठक की ओर से उसकी अपनी बात प्रस्तुत है:-

प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक (डॉ. राधा वल्लभ त्रिपाठी) ने अभिनव गुप्त के लगभग प्राप्त पूरे ग्रन्थों में दी हुई उनके जीवन से संबंधित सामग्री का उपयोग किया है। 'कैन्वास' छोटा है, व्यक्तित्व बड़ा है, पर लेखक ने जिस कुशलता से श्री अभिनव गुप्त की कथा गढ़ी है, पाठक के मुंह से वरवश प्रशंसा निकल पड़ती है। अभिनव गुप्त का रहस्यमय जन्म, उनका फक्कड़पन, उनकी कथा-व्यथा और उनके अन्तःस्थित मनोभावों को लेखक ने बड़ी बारीकी से देखा है और निपुणता से उकेरा है। विद्वानों को अभिनव गुप्त के मूल ग्रन्थों में स्वयं उनके द्वारा सूक्ष्मता से सृजित उनके जीवन प्रसंगों के विविध दृश्य अवश्य मिल जायेंगे पर वे जीवन की पृथक-पृथक झांकियां मात्र हैं। सर्वांगपूर्ण जीवन चरित्र वहां नहीं मिलेगा।यह तो लेखक की प्रतिभा है कि उन बिखरे मोतियों को चुनकर यथा-स्थान सन्निहित कर एक भव्य जीवन वृत्त का स्वरूप यहाँ प्रस्तुत किया है।अभी कुछ ही दिनों पहले राजधानी के भारत भवन में श्री अभिनव गुप्त पर उनका सहस्त्राब्दी समारोह आयोजित किया गया था। बड़ा कोलाहल हुआ, पर उपलब्धि के रूप में कुछ भी हाथ लगा नहीं। जयरथ के वचन याद अवश्य आये-

**'यस्तर्कान्तर विश्रुत श्रुततया, द्वैताद्वयज्ञानवित्,**
**सोऽस्मिन् स्यादधिकारवान् कलकल प्रायं परेषां वचः ।।**

देर से सही पर आज यह लेख लिखकर लेखक ने इस महान् उत्सव को 'मधुरेण' समापन कर सुधीजनों को तृप्ति दी है। तदर्थ उन्हें अनेक साधुवाद। लेखक ने इस आलेख में लिखा है कि "अभिनव गुप्त काल की चक्राकार, आवर्ती, शंखवलयाकार और तरंगाकार गतियों को तो स्वीकार करते ही हैं, वे उसकी एकरेखीय गति को भी स्वीकार करते हैं।" इस कथन में जहां आचार्यवर की तल-भेदी दृष्टि और जागरूकता उजागर की है वहीं एक पाठक के मन में जिज्ञासापूर्ण प्रश्न भी उछाल दिया है।

विद्वान लेखक के मन में देश-काल की गतियों में उचित सामंजस्य साधकर अपनी प्रतिभा एवं ज्ञान के ताने-वाने से वृहत् कैनवास पर अभिनव जीवन गाथा को अधिक परिपूर्ण रूप में सृजन का विचार तो इन गतियों में घुमड़ रहा है ! क्या ही अच्छा हो यदि यह पाठक की कल्पना रूपान्तरित हो और प्रथम सहस्त्राब्दी के रस सर्वश्रेष्ठ महान् चिन्तक की जीवन गाथा राष्ट्रभाषा भाषियों के लिये सुलभ बने।

लेखक ने चिन्ता प्रकट की है कि आधुनिक विद्वानों का ध्यान अभिनव गुप्त के जीवन वृत्त की ओर नहीं गया है, वाणभट्ट की ओर गया है। धीरे से कारण भी बताया है। यह मात्र संकेत है। इसके दूरगामी अर्थ है। लेखक का अभिप्राय अलग हो सकता है पर पाठक तो निस्संकोच कह ही सकता है। किस कारण तो स्वयं आचार्य अभिनव गुप्त ने ही संकेत से बता दिया है। एक स्थान पर वे कहते हैं -

**''पाषाणायितवृत्तयः पुनरमी ये शास्त्रवन्ध्या नराः .......**
**किम् तौ ये प्रविमर्शदूरशिखरारोहक्रमेपुंगवः ?''**

फिर वे दुबारा कहते हैं, बताते हैं- ..................**''लक्षै कोपि स कश्चिदेव सफली कुर्वीत्! यत्नं मम्''।** उन महामाहेश्वर को शायद आभास हो गया था कि सहस्त्राब्दी बीतने पर लाखों में कोई एक मेरे श्रम को सफल करेगा। लगता है कि वह क्षण आ गया है। इति शम्।

मुझे यहां अपने मन्तव्य को अधिक स्पष्टता से समझने और अभिव्यक्त करने के आशय से आदि शंकर से आरंभ भारतीय विचार-साधना की स्मार्त परंपरा के अद्वैत दर्शन में इस प्रत्यभिज्ञान के संलय पर किंचित् विचार आवश्यक प्रतीत होता है। इतना तो स्पष्ट है कि श्रुति के स्मृति प्रसार से पञ्च देव- गणेश, सूर्य, शिव, पार्वती और विष्णु भारतीय उपासना के आधारभूत देवता हैं जो लोक और परलोक की सिद्धि में सहायक रहे हैं। इस लोक मूलक उपासना के समानांतर उपनिषदों से आरंभ तत्त्व ज्ञान की वैचारिक सरणि क्रांत-दर्शी आचार्य वर्ग की सृष्टि और स्रष्टा के गहन और

सूक्ष्मतर स्तरों की पड़ताल में विचारकों को सक्षम बनाती रही है। भगवान वादरायण, गौड़पाद, गोविंदपाद आदि की इस उर्वर भूमिका में आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता और ईशादि प्रमुख एकादश उपनिषदों के भाष्य द्वारा वेद के इन महावाक्यों में प्रतिपादित योग, सांख्य, पूर्व मीमांसा, न्याय और वैशेषिक के परे एक परम सत्ता की शोध में संलग्नता प्रकट की –

**1. प्रज्ञानं ब्रह्म :** ऋग्वेद — ऐतरेय उपनिषद (3.3)

**2. अहं ब्रह्मास्मि :** यजुर्वेद — बृहदारण्यक उपनिषद (1.4.10)

**3. तत्त्वमसि :** सामवेद — छांदोग्य उपनिषद (6.8.7)

**4. अयमात्मा ब्रह्म:** अथर्ववेद — माण्डूक्य उपनिषद (2)

**"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" निरालम्बोपनिषद् (श्लोक 35)** पर आधारित आदिशंकर के 'ब्रह्मज्ञानवलीमाला' के निम्न श्लोक को प्राय: उनके ही उद्घोष के रूप में सर्वत्र प्रचारित किया जाता है –

**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।**
**अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः॥ २०॥**

भारतीय ज्ञान धारणा की अनुवर्तिनी इस व्यतिरेक अनुसंधान प्रक्रिया में छान्दोग्य उपनिषद के इस अन्वय उद्घोषणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता - **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म": (छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1)** जो प्रायः एक दूसरे की पूरक ही हैं। भगवान् वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत के प्रथम श्लोक के प्रथम पद में "परम सत्य" के अन्वीक्षण में इसीलिए जैसे कहा है- यतोऽ न्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ: स्वराट्। अर्थात् जो अन्वय के इतर (व्यतिरेक) आदि प्रक्रिया से यथा प्रकट स्वप्रकाश से पूर्ण तत्त्वज्ञ है !

यहाँ इस दर्शन की बृहत्तर भूमिका में जाने के स्थान पर अभिप्रेत मात्र यह है कि आदिशंकर के उत्तरवर्ती कश्मीरी शैव और भारत के अभ्यंतर में प्रोद्भूत 'वैष्णव" संत परंपरा पर इसका क्या प्रभाव पड़ा, इसकी संक्षिप्त तुलना का एक विवरण इस प्रकार बनता है –

स्मार्त: अद्वैत वेदान्त – ब्रह्म ही एकमात्र सत्य

कश्मीरी शैव: प्रत्यभिज्ञा – शिव ही चेतन सत्ता का मूल

वैष्णव: विशिष्टाद्वैत – ब्रह्म विष्णु रूप में, जीव व जगत उसका अंश

**ईश्वर की प्रकृति**

**स्मार्त:** निर्गुण ब्रह्म, सगुण उपासना साधन

**कश्मीरी शैव:** शिव – सगुण-निर्गुण समन्वय

**वैष्णव:** विष्णु – सगुण ब्रह्म, अनंत गुणों से युक्त

**मुक्ति की परिभाषा**

**स्मार्त:** आत्मा का ब्रह्म में लय

**कश्मीरी शैव:** शिवस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा

**वैष्णव:** भगवद्सायुज्य – विष्णु के धाम में निवास

**साधना का मार्ग**

**स्मार्त:** ज्ञानयोग, उपनिषदों का मनन

**कश्मीरी शैव:** तंत्र, ध्यान, शिव की उपासना

**वैष्णव:** भक्ति, प्रपत्ति, श्रीवैष्णव अनुशासन

**प्रमुख ग्रंथ और आचार्य**

**स्मार्त:** ब्रह्मसूत्र भाष्य – शंकराचार्य

**कश्मीरी शैव:** तंत्रालोक – अभिनवगुप्त

**वैष्णव:** श्रीभाष्य – रामानुजाचार्य

आदिशंकर की स्मार्त पञ्चदेवोपासना में समयाचार शैव पक्ष प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सर्वदा सन्निकट है। अपने प्रसिद्ध दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में वे गुरु द्वारा शिष्य को परम शिवत्व के प्रत्यभिज्ञान की क्षमता प्रदान कराते हुए कहते हैं –

**राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्।**
**सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्॥**
**प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते।**
**तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥ ६**

अर्थात् जो (परमात्मा), माया के आवरण से ढंका होने के कारण राहु ग्रस्त सूर्य और चन्द्रमा के समान (अप्रकाशित) हो जाता है, और इन्द्रियों तथा वृत्तियों के लीन हो जाने से सुषुप्ति (गहरी नींद) में केवल 'सन्मात्र' (सत्-रूप) पुरुष बनकर रहता है, और जो जागने के समय **'मैं सोया था'** इस प्रकार **'प्रत्यभिज्ञायते'** (पहचाना जाता है), उन श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति को यह मेरा नमस्कार है।

कश्मीरी शैव दर्शन के ही अनुरूप वे शिव और शक्ति की परमेश्वरता में अपनी सौन्दर्यलहरी में तंत्र और सौन्दर्य की अभिव्यंजना का अदभुद रसायन इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

**गतास्ते मञ्चत्वं दुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः।**
**त्वदीयानांभासां प्रतिफलनरागारुणतया शरीरी शृंगारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्॥ ९२॥**

-है मंच तुम्हारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर
निर्मल-आभा शंकर हैं इसके माया-पट
तेरी अरुणिम-द्युति से प्रतिबिम्बित होकर ज्यों
दृग मूर्तिमंत रसपति का कौतुक करते। (काव्यानुवाद)

**अभिनव गुप्त में दर्शन और तंत्र का समन्वय**

अभिनव गुप्त की रचना तंत्रालोक एक विश्वकोशीय ग्रंथ है जिसमें तंत्र, योग, साधना और दर्शन का समन्वय है। उन्होंने साधना को केवल क्रिया नहीं, आत्मबोध का मार्ग माना।

**शक्तिपातो यदा देवि जीवस्य परमेश्वरात्।**
**तदा तद्वशगः साक्षात् शिवभावं निगच्छति॥ (तंत्रलोक)**

(जब परमेश्वर से जीव को शक्तिपात होता है, तब वह शिवभाव को प्राप्त करता है।)

**रस और सौंदर्यशास्त्र में अभिनवगुप्त**

अभिनव भारती में उन्होंने रस को केवल भाव नहीं, बल्कि आत्मा की सौंदर्यात्मक लय बताया। उन्होंने कहा कि रस की अनुभूति एक सार्वभौमिक

भाव है, जो दर्शक के भीतर व्यंजना द्वारा जागृत होता है।

**रसः साक्षाद् ब्रह्मस्वादः नाट्ये सञ्जायते ध्रुवम्।**
**यत्र भावो न विशिष्टो न च व्यक्तो न च लौकिकः।।**

(रस ब्रह्मस्वाद के समान है, जो नाट्य में उत्पन्न होता है, जहाँ भाव लौकिक नहीं होता।)

**साधना और आत्मबोध**

अभिनवगुप्त ने साधना को शिव के साथ तादात्म्य की प्रक्रिया माना। उन्होंने शिवोपाय, शक्तोपाय और आणवोपाय जैसे मार्गों की व्याख्या की।

**न चास्य बन्धो न च मोक्ष एव स्वभावतो यः शिवः स एव।**

(न तो उसका बंधन है, न मोक्ष—जो स्वभावतः शिव है, वही सब कुछ है।)

इस प्रकार अभिनवगुप्त का अभिदान भारतीय चिंतनधारा का वह सेतु हैं जो तंत्र और वेदांत, सौंदर्य और साधना, तर्क और अनुभूति को जोड़ता है। वे उस परंपरा के प्रतिनिधि हैं जिसमें ज्ञान केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि आत्मानुभूति है। अंत में शिवोपनिषद् के इस उद्धरण से इस विचार यात्रा का उपसंहार करता हूँ -

**यः स्वात्मनि शिवं पश्येत् स एव परमेश्वरः।**
**न तस्य बन्धो न च मोक्षो न च दुःखं न च सुखम्।।**

काव्यशास्त्र को हुए अभिनवगुप्त के अवदान के संदर्भ में भी यहाँ यत्किंचित अनुचिंतन विधेय हो जाता है। उन्होंने अपने लगभग एक सदी पूर्व के काव्य शास्त्र के आचार्य आनंद वर्धन के ध्वन्यालोक पर ध्वन्यालोचन टीका में आनन्दवर्धन के सिद्धांतों की व्याख्या और विस्तार का कार्य किया। इसके मुख्य विषय के रूप में उन्होंने ध्वनि सिद्धांत के काव्य में व्यंज्यार्थ को प्रधान मानने वाले दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक के चार उद्योत (अध्याय) में तीन भाग: कारिका, वृत्ति, और उदाहरण द्वारा **मुख्य प्रतिपादन:** काव्य में ध्वनि (व्यंजना शक्ति) को सर्वोपरि माना गया है। इसमें रसध्वनि, अलंकारध्वनि, वस्तुध्वनि जैसे भेदों की चर्चा है। इसके अनुसार काव्य की उत्कृष्टता व्यंग्यार्थ की स्पष्टता और रस की अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है। इसकी टीका की विशेषताओं में कश्मीर के रसराज्य परंपरा से जुड़ी टीकात्मक शैली प्रयुक्त हुई। अभिनवगुप्त ने ध्वनि सिद्धांत को रसानुभूति से जोड़ा जिसके अनुसार काव्य का चरम लक्ष्य रसास्वादन है। उन्होंने ध्वनि के **44** भेदों की भी चर्चा की, जो आनन्दवर्धन की अपेक्षा अधिक विश्लेषणात्मक है। इस प्रकार ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त की लोचन-टीका न केवल आनन्दवर्धन के अभिव्यंजनावाद को दार्शनिक गहराई प्रदान करती है, अपितु रस-सिद्धान्त को प्रत्यभिज्ञा के आलोक में प्रतिष्ठित करती है। यह टीका काव्य के रहस्य को केवल व्याख्यायित नहीं करती, अपितु साधक को रसास्वादन के माध्यम से आत्मानुभूति की ओर उन्मुख करती है।

लेखक : अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थातम् 35,
सम्पर्क: ईडन गार्डन, चूना भट्टी, कोलार रोड, भोपाल 462016
मो. 9425079072

समवेत

# गुजरात के एकता नगर में राहुल श्रीवास के वाद्यों की प्रतिकृतियों की प्रदर्शनी ले किया आकर्षित

गुजरात के एकता नगर में 'भारत पर्व' के अंतर्गत मध्य प्रदेश के राहुल श्रीवास 40 प्रकार के वाद्ययंत्रों की छोटे आकार वाली प्रतिकृतियां बना कर अपनी अनोखी कला से सभी का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। दुनिया की सबसे ऊंची प्रतिमा 'स्टेच्यू ऑफ यूनिटी' के परिसर में इन दिनों भारत की अनेकता में एकता की झलक देखने को मिल रही है। सरदार वल्लभभाई पटेल की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में भारत सरकार और गुजरात सरकार के सहयोग से एक से 15 नवंबर के दौरान एकता नगर में भव्य 'भारत पर्व' का आयोजन किया गया है। भारत पर्व में मध्य प्रदेश की कला का प्रतिनिधित्व एकता नगर में भारत पर्व उत्सव के दौरान मध्य प्रदेश पर्यटन विभाग के समन्वय से राज्य सरकार ने श्री श्रीवास को एक विशेष स्टॉल आवंटित किया है, जहां वह अपने वाद्यों का प्रदर्शन और बिक्री कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि लोगों की ओर से बहुत ही अच्छा समर्थन मिल रहा है। उन्होंने गुजरात सरकार के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए कहा कि इस आयोजन से हमारे जैसे छोटे उद्योगकारों को एक बड़ा मंच उपलब्ध हुआ है। उनके स्टॉल पर देश के विभिन्न राज्यों के पर्यटक उत्साहपूर्वक आते हैं। छोटे आकार के वाद्यों का आकर्षण हर किसी को मंत्रमुग्ध कर देता है। श्री श्रीवास की कला केवल एक व्यवसाय ही नहीं है, बल्कि आत्मनिर्भर भारत के सपने का प्रतिबिंब भी है। वेस्ट मटेरियल से कलात्मक और उपयोगी वाद्य बनाने की उनकी शैली 'वोकल फॉर लोकल' और 'मेक इन इंडिया' के संदेश को जीवंत करती हैं। एकता नगर के इस भारत पर्व-2025 के दौरान उनके जैसे कलाकार भारत की हस्तकला, लोकसंगीत और आत्मनिर्भरता की भावना को उजागर कर रहे हैं। हस्त शिल्पी कलाकार का हुनर ....मानव संग्रहालय भोपाल, लोकरंग भोपाल, तानसेन समारोह ग्वालियर, आर्ट ऑफ लिविंग बेंगलुरु, सूरजकुंड हरियाणा के बाद अब...। राहुल श्रीवास की वाद्य- प्रतिरूप प्रदर्शनी गुजरात के स्टैचू ऑफ यूनिटी प्रागंण, भारत पर्व में ! (इस खूबसूरती का क्या मोल हो सकता है...।

राहुल श्रीवास सम्पर्क: 9200300006

पुस्तक : समीक्षा

# आचार्य मिश्र की कृति 'भारतीय ज्ञान परम्परा - विविध आयाम' उपयोगी और महत्त्वपूर्ण - डॉ. शर्मा

**पुस्तक विवरण-**

पुस्तक शीर्षक : भारतीय ज्ञान परम्पराः विविध आयाम

लेखक : आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

समीक्षक : आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशन : सम्राट विक्रमादित्य शोध पीठ, (उपक्रम संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश)

मूल्य : ₹300/-

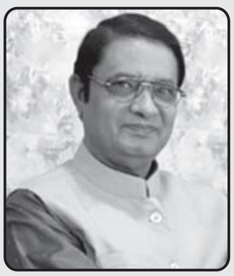

आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

भिलाई/ वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, कालिदास, तुलसीदास और स्वामी विवेकानन्द आदि की वैचारिक पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय शिक्षानीति (2020) अर्थात् भारतीय ज्ञान परम्परा केन्द्रित है। हमारे ज्ञान विज्ञान की शाखा प्रशाखायें इसके अभिन्न हिस्से हैं। वर्तमान में हमारे सभी विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं विद्यालयों के विद्यार्थी गण इससे जुड़े हैं। इस के आधार पर किये जाने वाले पठन-पाठन से युवा भारत अपनी जड़ों से जुड़ सकेगा। राष्ट्रीय सांस्कृतिक निष्ठा में भी उनकी अभिरुचि बढ़ रही है। महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थान भोपाल के अध्यक्ष एवं तुलसी मानस प्रतिष्ठान भोपाल की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'तुलसी मानस भारती' के प्रधान सम्पादक आचार्य प्रभुदयाल मिश्र द्वारा **विरचित भारतीय ज्ञान परम्परा - विविध आयाम** शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई है। महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, संस्कृति विभाग, म.प्र शासन, उज्जैन से प्रकाशित इस कृति की भूमिका में शोधपीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी के अनुसार असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की की ओर एवं मृत्यु से अमरता की ओर अग्रसर होना भारतीय ज्ञान परम्परा का सारतत्त्व है। बृहदारण्यक उपनिषद् में ऐसा वर्णन है कि- **असतो मा सद्गमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय!! एवं मृत्योर्मा अमृतं गमय !!!**

धर्म, संस्कृति और साहित्यिक प्रसंग में भोपाल प्रवास के समय आचार्य पं प्रभुदयाल मिश्र जी से उनकी ये महत्त्वपूर्ण कृति सौभाग्य वश मुझे सुलभ हुई। आचार्य मिश्र जी ने इस पुस्तक के अट्ठारह अध्यायों और प्रायः पौने दो सौ पृष्ठों में ज्ञान के पर्याय वेद, आस्तिक षड्दर्शन और नास्तिक दर्शन त्रय, सार्वभौमिक ज्ञान गीता, योग और ध्यान परम्परा, प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति, भारतीय कलायें, ब्रह्माण्ड विज्ञान और सृष्टि रचना, रामराज्य की भूमिका और रामायण सन्दर्भ, प्रकृति और पर्यावरण का वैदिक पृथिवी सूक्त एवं संस्कृत की अथाह शब्द सम्पदा आदि शीर्षकों के माध्यम से रोचक भाषा शैली में ज्ञानवर्धक प्रामाणिक उदाहरणों से जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे पाठकों को आकर्षित कर आनन्द प्रदान करते हैं। वेदों, उपनिषदों और रामायण आदि के साथ लेखक ने गूगल, विकीपीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) आदि सुलभ स्रोतों का भी यथास्थान उपयोग किया है। उल्लेखनीय है कि विश्व संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ यूनेस्को ने अपनी स्मृति पंजी में श्रीमद्भगवद्गीता और भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को विश्व धरोहर घोषित कर पंजीकृत किया है। इधर छत्तीसगढ़ के रामगढ़ सरगुजा में विश्व की प्रथम नाट्यशाला है। इस पुस्तक में भी लेखक ने श्रीमद्भगवद्गीता को सार्वभौमिक ज्ञान बताते हुये आइंस्टीन, महात्मा गान्धी, इमर्सन, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द एवं थोरो आदि भारतीय वैदेशिक चिन्तकों के विचार रखे हैं। इस कृति के पूर्व भी वे अध्यात्म, दर्शन और साहित्य पर अनेक पुस्तकें लिख चुके हैं। प्रशासनिक सेवा से निवृत्त श्री मिश्र छत्तीसगढ़ में भी सेवायें दीं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और पूरे राष्ट्र को भारतीय ज्ञान परम्परा से अवगत कराकर देश को नई पहचान दिलाई हमारे इतिहास पुरुष पं. माधव राव जी सप्रे ने। प्रथम हिन्दी मासिक पत्रिका **"छत्तीसगढ़ मित्र"** के प्रकाशन का श्रीगणेश भी पं. सप्रे जी ने किया था। सप्रे संग्रहालय भोपाल के संस्थापक संयोजक पद्मश्री विजय दत्त श्रीधर के अनुसार आचार्य प्रभुदयाल मिश्र की ये पुस्तक अपने पाठकों को अस्मिता, अस्तित्व और आत्मबोध के अमृत सरोवर में अवगाहन करायेगी। इस कृति की ये सार्थकता है। **निष्कर्षतः शिक्षा के क्षेत्र में ये महत्त्वपूर्ण कृति आचार्यों और अध्ययनार्थियों हेतु विशेष उपयोगी है।**

एम.ए. हिन्दी, संस्कृत एवं हिन्दी शिक्षाविद्,साहित्यकार/लेखक(से.नि.प्रचार्य उ.शि.)
शिवायनम्-533/4 स्मृतिनगर भिलाई-490020 मो.94255-53499, 74153-06201

पुस्तक : समीक्षा

# राष्ट्रीय चेतना का उद्घोष करती कविताएँ

**पुस्तक विवरण-**

पुस्तक शीर्षक : वतन हमारा हिन्दुस्तान (कविता संग्रह)
लेखक : सदाशिव कौतुक
समीक्षक : डॉ. प्रताप सिंह सोढ़ी
प्रकाशन : श्री विनायक प्रकाशन, इंदौर
पृष्ठ : 120 + 4 = 124
मूल्य : ₹250/-

डॉ. प्रताप सिंह सोढ़ी

आरम्भ से कविता में वक्त भी रफ्तार के साथ-साथ चलने की अद्भुत क्षमता मौजूद रही है। यही वजह है कि संकट के माहौल में भी कविता पूरी ऊर्जा के साथ मानवीय सवेदना और सोच की अभिव्यक्ति का जरिया रही है संवेदना का सम्बन्ध मन की अनुभूति से है। जब मानवीय संवेदना सहज रूप से अपनी आकर्षक सादगी के साथ काव्य का जामा पहन लेती है तो अपने शब्द बिम्बों के सहारे नया स्वरुप प्रस्तुत करती है। श्री सदाशिव कौतुक साहित्य जगत के एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं। वे लम्बे समय से साहित्य की अनेक विधाओं में सृजन कर रहे हैं। पचहत्तर वर्षो से विभिन्न विधाओं में उन्होंने इकहत्तर पुस्तकों का सृजन कर साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है और देश की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं द्वारा उन्हें 55 सम्मानों से सम्मानित किया है।

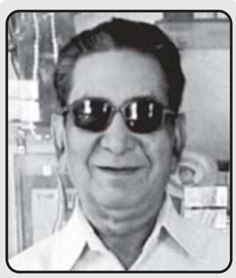
लेखक
सदाशिव कौतुक

वतन - हमारा हिन्दुस्तान काव्य संग्रह हाल ही प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में उनकी 62 कविताएँ हैं कौतुकजी के पास कविता के जरिये अपनी बात कहने का अपना तेवर एवं अपनी भाषा है। संघर्ष के साथ गतिशील जीवन एवं देश में विभिन्न दृश्यों एवं समस्याओं का कोलाज उनकी कविताओं में प्रस्तुत हुआ है। ये कविताएँ जागरुकता के शिखरों एवं राष्ट्रीय चेतनाओं एवं देशप्रेम की भावनाओं का उद्घोष करती है और अंतस में पसरे सन्नाटे को बाहर निकालती है।

संग्रह की पहली कविता "भारत माँ की हम संतान, वतन हमारा हिन्दुस्तान" मन के भीतर के भावों से निकली राष्ट्र प्रेम की एक ध्वनि है या यू कहें कि एक आग है. एक विद्रोह, एक प्रतिज्ञा है जो देश के दुश्मनों को भस्म करने का शंखनाद करती है। पडोसी देश को चेतावनी है कि भारत के इस स्वर्ग को हम से कोई नहीं छिन या कोई छू नहीं सकता। देश भक्ति, जुनून एवं जज्बा बहुत गहरा उभरकर आया है। इस कविता में कवि देश के तिरंगे झडे को अमर एवं कोटि-कोटि आँखों का तारा मानता है। यह ऋषियों, मुनियों एवं वीरों का देश है। देश की सीमा की रक्षा के लिए हर नौजवान जान न्यौछावर करने के लिए कटिबद्ध है। भारत हमारी पूज्यनीय माँ है और उस की रक्षा एवं उसके दूध की लाज बचाने के लिए हम तैयार हैं और रहेंगे।

खुशियों का बागवान दुनियाभर में हिंदुस्तान कविता भारत माता को महानता के गुणों का यशोगान करती है। भारत विश्व गुरु रहा है। भारत के वेद, उपनिषद्/पुराण एवं उसकी संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। कदि को अपने देश की महानता पर गर्व है। उसकी मान्यता है कि देश से बढ़कर कोई नहीं है। देश है तो जीवन है मानव कर उसकी सुरक्षा एवं खुशहाली का। यह वह हिन्दुस्तान है' कविता में भारत के विश्वशांति/अहिंसा एवं नफरत के नापाक इरादों को ध्वस्त करने का पुरजोर आव्हान है। वन्दे मातरम् देश की आराधना का जागरण गीत है। ये कोई नारा नहीं है। ये तो उसकी वन्दना का मूलमंत्र है। देश पर शहीद होने और उसकी रक्षा करने का प्रतिज्ञा-पत्र है। हम एकता के सूत्र में बंधे एवं सूत्र में गायें, दीन-हीनों की सेवा हो और देश के सैनिकों का सम्मान करें। हमारा देश धर्म निरपेक्ष है सभी धर्मो का सम्मान हमारे संविधान की सर्वोच्च प्राथमिकता रही है। देश विश्व का सबसे बडा प्रजातंत्र देश है। मध्यप्रदेश को लोकमाता अहिल्याबाई पर गर्व है। जन-जन की प्रिय, कल्याणकारी माँ अहिल्या देशवासियों के लिए पूज्यनीय है।

रेल' कविता प्रतीकात्मक स्वर मुखरित करने का संदेश देती है कि पूर्व से लेकर पश्चिम तक भारत में नागरिक एक हैं। और वह अपनी भीतर सब को समाहित करती है।

दीपावली कविता देश में फैले अंधकार को परास्त करने एवं उसे उजाले

से भरने खुशियों का संदेश देती है ये दीवाली यूँ ही नहीं आई। आजादी को रक्त की नदी पार करके ही इसे हासिल किया गया है। शहीदों की शहादत ने ही इसे हमें सौंपा है। इन्सान बनों कविता विश्वबंधुत्व की भावना जागृत करती है। भ्रूण हत्या कविता में कवि भ्रूण हत्या को अपराध मानता है, मानवता के मस्तक पर कलंक है। ईश्वर की अमानत पर डाला है। नारी की अस्मिता एवं उसकी सुरक्षा पर गहरा प्रहार है। इसे दूर करने के लिए कवि बेचैन एवं चिंतित है। 'आत्म-विश्वास कविता मनुष्य में उत्पन्न आत्म विश्वास को जीवन की आपत्तियों के निराकरण उसे उन्नत जीवन का सबसे बड़ा संबल मानता है। 'बेटियां घर की रोमक होती है उन्हें बेदों की तरह स्नेह एवं अधिकार मिलना चाहिए ये ही केन्द्रिय भाव है बेटियां कविता का। रक्तदान महान पुण्यदान है। ये प्राणों का रक्षक है मानवता का संरक्षक है। गाँव के हाल ग्रामीण स्थितियों एवं समस्याओं की ओर संकेत करती, राष्ट्रभाषा हिन्दी हमारी आन-बान एवं शान, फूल चढ़ाने आता एक सशक्त कविता है जो कवि के अन्तेनिहित भावों का सजीव आईना है। कवि की तमन्ना है जारजू है। झगड़ा कवि दूध और शराब के संवादों में उसकी समस्याओं, विसंगतियों बदले जीवन मूल्यों, खंडित होती संवेदनाओं का प्रयोगात्मक दस्तावेज है। होली, दम मानव का छूट नक्सलवाद / सौगात कविताएं बेहद प्रभावित करती हैं।

वैचारिक प्रतिबद्धता की दृष्टि से श्री सदाशिव कौतुक मानवता / देशप्रेम एवं संघर्ष के प्रति सचेत है। उनकी कविताओं में समाज, राष्ट्र/विश्व एवं सम्पूर्ण मानवता के दिग्दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं के रंग नेचुरल है, उनकी कविताओं से गुजरते हुए ताप का अनुभव होता है, आक्रोश है और आस्था के साथ चेतावनी भी हैं। निस्संदेह यह काव्य संग्रह साहित्य जगत में चर्चित होगा। शुभकामना।

मो. 9109761722

समवेत

# आर्टिस्ट्री एंड लेगेसी ऑफ गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास' संगीत-उत्सव सम्पन्न

ग्वालियर घराने के संगीत महर्षि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्य एवं उनकी संगीत परंपरा के प्रमुख शास्त्रीय गायक गायनाचार्य पंडित नारायण राव व्यास "नाना" के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर केंद्रित एक कार्यक्रम - 'आर्टिस्ट्री एंड लेगेसी ऑफ गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास' का आयोजन दिल्ली स्थित इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (आईआईसी) के सी.डी. देशमुख हॉल में 25 सितंबर, 2025 को किया गया। इस आयोजन को 'व्यास संगीत अकादमी, मुम्बई' ने 'आईआईसी दिल्ली' के साथ मिलकर किया। कार्यक्रम का प्रारंभ पंडित विष्णु दिगम्बर द्वारा रचित प्रार्थना 'जय जगदीश हरे के सामूहिक गायन से हुआ जिसका निर्देशन डॉ. विनीत गोस्वामी ने किया। कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण पं. नारायण राव व्यास के बारे में संस्कार पब्लिकेशन, मुम्बई द्वारा प्रकाशित गायनाचार्य पंडित नारायणराव स्मृतिग्रन्थ 'ॐ नारायणाय नमः' का विमोचन और पंडित जी के सुयोग्य सुपुत्र-शिष्य व हमारे गुरुजी संगीताचार्य पंडित विद्याधर व्यास द्वारा पंडित जी के संगीत-जीवन पर पीपीटी प्रजेंटेशन का रहा। इस अवसर पर आदरणीय गुरुजी पंडित विद्याधर व्यास व उनके कुछ शिष्यों का संक्षिप्त गायन भी हुआ। गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास की स्मृति को समर्पित इस आयोजन में उनके जीवन के हर पहलू पर उनके सुपुत्र पंडित विद्याधर व्यास द्वारा पी. पी. टी. के माध्यम से प्रकाश डाला गया , जिसमें उनकी संगीत साधना , संगीत चरित्र , संगीत दूरदृष्टि , व संगीत शुद्धिकरण जैसी अनेकों बातों का पता चल पाया। बहुत सारी ऑडियो रिकॉर्डिंग सुनकर हर श्रोता संगीतसागर में गोते लगाने लगा। यह भी अनुभव हुआ कि किस प्रकार पंडित जी ने उस समय तीन से चार मिनट में ग्वालियर की अष्टांग गायकी को समाहित कर उसे जनसुलभ करवाया। इसके पश्चात संगीत नाटक अकादमी की चेयरपर्सन - विदुषी संध्या पुरेचा एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव - श्री सच्चिदानंद जोशी अपने विद्वतापूर्ण संभाषण में पंडित जी के सांगीतिक योगदान व वर्तमान संगीत परिस्थितियों का वर्णन किया। इस महोत्सव में संस्कार प्रकाशन द्वारा प्रकाशित व प्रोफसर सुनीरा कासलीवाल जी के निर्देशन में तैयार पंडित जी पर प्रकाशित स्मृति ग्रंथ का भी लोकार्पण किया गया। बीसवीं सदी के हिंदुस्तानी संगीत को और संगीत के प्रचार-प्रसार में पंडित जी के बहुआयामी प्रयासों को जानने-समझने के लिए यह एक पुस्तक ही नहीं बल्कि एक दस्तावेज है। इसे बहुत ही अच्छी तरह आदरणीया गुरु माँ प्रोफेसर सुनीरा कासलीवाल ने संपादित किया है। कुल मिलाकर पठनीय व संग्रहणीय पुस्तक है। स्मृतिग्रन्थ विमोचन के उपरांत पंडित विद्याधर व्यास जी के शिष्यों डॉ विनीत गोस्वामी ( राग - पटदीप) , श्री आनंद ओक ( राग- गुंजीकान्हड़ा) , डॉ ऋचा वर्मा (राग- मुल्तानी), डॉ. सानिका गोरेगांवकर (राग - सोहनी) व डॉ. गतिकृष्ण (राग - देशकार) के द्वारा पंडित नारायणराव व्यास जी द्वारा गायी गई बंदिशों का तीन से चार मिनट में ही बहुत ही आकर्षक प्रस्तुतिकरण किया गया, जिसकी उपस्थित विद्वान श्रोताओं ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। उसके बाद पंडित विद्याधर व्यास जी ने उनके काका पंडित शंकरराव व्यास द्वारा रचित - राग - भवानी की उसी बंदिश का ग्वालियर की अष्टांग शैली में गायन किया जिसका गायन पंडित नारायणराव व्यास ने अपने रिकॉर्ड में किया था। इस राग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें आरोह - अवरोह में चार स्वरों का ही प्रयोग किया गया है। कार्यक्रम के अंत में राग भैरवी में 'रचा प्रभु तूने ये संसार सारा... ' प्रार्थना का सामूहिक गायन हुआ । इस संगीत स्मृति महोत्सव में पद्मभूषण विदुषी शन्नो खुराना, विदुषी कृष्णा बिष्ट, विदुषी प्रोफेसर स्वतंत्रबाला शर्मा, विदुषी पंकजमाला शर्मा एवं श्री मधुप मुद्गल सहित दिल्ली क्षेत्र के सभी मूर्धन्य संगीत कलाकार उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती साधना श्रीवास्तव ने किया। धन्यवाद ज्ञापन इस कार्यक्रम की प्रस्तोता प्रोफेसर सुनीरा कासलीवाल ने किया। - प्रस्तुति: श्री शिवजी पाण्डेय 'शिवम'

कला-चिन्तन

# अभिनंदन नया वर्ष और नव

आगामी दिसम्बर -जनवरी 2026 के अंक में नए वर्ष का अभिनंदन करते हुए हम एक नया स्तम्भ 'कला-चिन्तन' प्रारम्भ करने जा रहे हैं ,जिसके स्तम्भकार होंगे विज्ञान और कला के दुर्लभ संयोग के अनूठे साधक एवं चिन्तक और बहु आयामी प्रतिभा के धनी रक्षा मंत्रालय से सेवानिवृत्त हुए पेशे से इंजीनियर रहे किन्तु समानान्तर रूप से कलाओं के अनेक रूपों को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर उसे बख़ूबी संजीदगी से जीने वाले कला- क्षेत्र की शख़्सियत श्री चन्द्र मोहन। जबलपुर ,मध्यप्रदेश में जन्में आप का अधिकांश कार्यक्षेत्र दिल्ली रहा एवं वर्तमान में गुरु ग्राम निवासी आपने कई वर्षों तक आकाशवाणी, दिल्ली के प्रतिष्ठित सजीव (लाइव) कार्यक्रम "आज सुबह" के प्रस्तोता और इसके अलावा आकाशवाणी के लिए विभिन्न विषयों पर वृत्त रूपक (फीचर) का निर्माण कर श्रोताओं में ख़ासी लोकप्रियता हासिल की, 12 आकाशवाणी वार्षिक पुरस्कार भी प्राप्त किए। कई प्रतिभाशाली हस्तियों, मशहूर फ़िल्मी कलाकारों और राजनेताओं से साक्षात्कार कर उन्हें कला-जगत के दिलों तक पहुंचाया। इसके साथ-साथ एक बेहतरीन लेखक, कार्टूनिस्ट और ग्राफिक डिज़ाइनर के रूप में भी आपके विविध प्रकाशन एवं कार्य उल्लेखनीय हैं । आपके कार्टून कई प्रतिष्ठित अंग्रेजी-हिंदी समाचार -पत्रों और पत्रिकाओं में सतत् प्रकाशित होते आये हैं।आपका दिल्ली की प्रतिष्ठित पत्रिका 'प्रेस ज़ोन'के अक्टूबर अंक में गांधी जयंती के विशेष अवसर पर अहमदाबाद की प्रख्यात चित्रकार श्रीमती कल्पना पालखीवाला का उनके महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट ' बापू गीतिका ' पर सद्य प्रकाशित साक्षात्कार एवम् बापू के जन्मदिवस और दशहरा के समान तिथि होने पर केंद्रित समसामयिक कार्टून भी दृष्टव्य है।

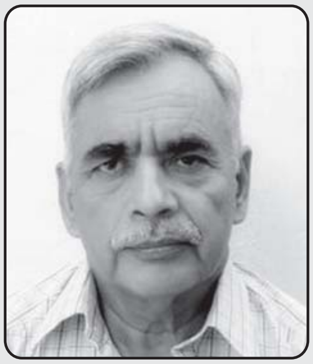

स्तंभकार
चन्द्र मोहन

आपकी पारिवारिक विरासत एवं कला के विविध आयामी साध्य प्रमुख पहलुओं और कार्यो को दृष्टिगत करें तो आप के पिता श्री मदन लाल मनचंदा एक प्रख्यात लेखक और पत्रकार थे, जिन्होंने हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू में 7 किताबें लिखीं और उन्हें उर्दू अकादमी पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। उनकी एक किताब "रियलिटी डिलाइट्स" जो वास्तविक जीवन की घटनाओं पर आधारित है, जिसका विमोचन डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने किया था। उनकी लेखन -शैली अलग थी। चंद्र मोहन उनके लेख एवं कहानियाँ आदि का प्रकाशन हेतु टंकण कर उन पर चित्र बनाने के साथ डिजाइनिंग भी किया करते थे अतएव आपकी अप्रत्यक्ष रूप से लेखन -कला एवं चित्रकारी आदि

स्केच

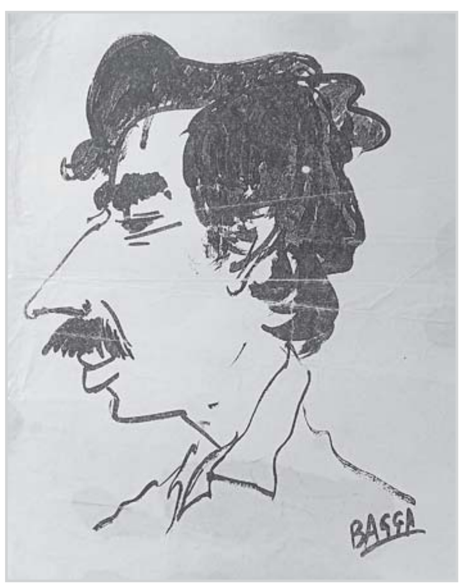


कार्टूनिस्ट बग्गा का कार्टून

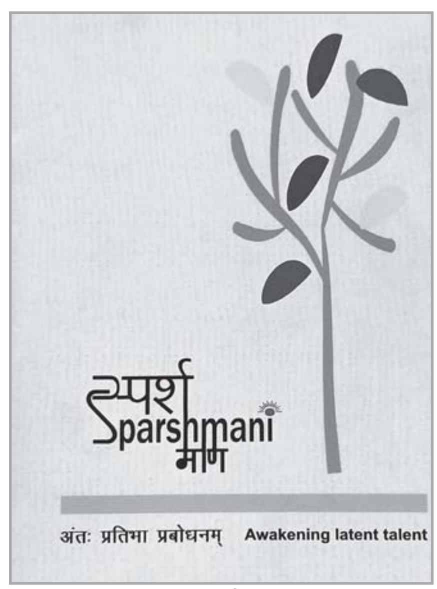


ग्राफ डिज़ाइन

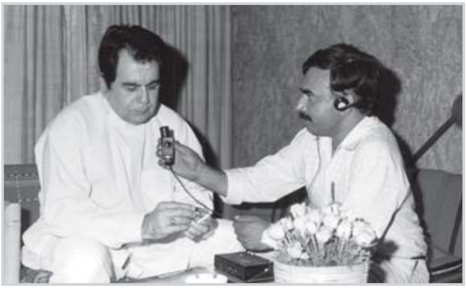

कलाकार दिलीप कुमार से साक्षात्कार

आकाशवाणी वार्षिक पुरस्कार सूचना प्रसारण मंत्री श्री एच के एल भगत से मुलाकात

अरुणिमा सिन्हा एवरेस्ट शिखर को फतह करने वाली पहली विकलांग महिला से साक्षात्कार

प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास पिताश्री के इन्ही प्रेरणास्पद कार्यों में सहभागी होते हुए स्वाभाविक रूप से स्वतः ही होता गया जो अब आपके जीवन का अहम् अंग बन गए।आपको भी पिता जी की भाँति ही विभिन्न विषयों पर संजीदगी से गहन अध्ययन करना और लिखना पसंद रहा है, जिसकी कोई औपचारिक शिक्षा नहीं लेने के बावजूद भी सतत् जिज्ञासा , गहन अध्ययन एवं शोध- प्रवृत्ति से प्राप्त अनुभवों ,तत्परता एवं सक्रियता ने आपको तराश कर कुन्दन बना दिया और आपने लेखन, चित्रकारिता, कार्टून एवं डिजाइनिंग एवं नाट्य संबंधी विविध कार्यों आदि को कुशलता पूर्वक सम्पादित कर कला- प्रेमियों का दिल जीत लिया।इन क्षेत्रों में आप कला की बहुरंगी विभिन्न सर्जनाओं द्वारा नित अपनी दैनिक चर्या की सुंदर कायनात रचते हैं।

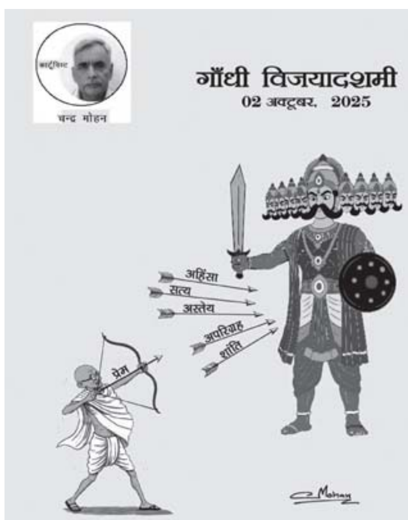


ऑल इंडिया रेडियो के कार्यक्रम 'हमारे मेहमान' के लिए कला-संस्कृति, राजनीति ,चिकित्सा विज्ञान तथा कई अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों और जानी-मानी हस्तियों के 100 से अधिक साक्षात्कार किए।

आपका कला के साथ खेलों में भी उत्कृष्ट कार्य रहा ,मसलन आप लंबी दूरी के धावक भी रहे और अपने स्कूल- कॉलेज में अध्ययन -काल और रक्षा मंत्रालय में सेवा के दौरान इसमें भाग लिया और पुरस्कार जीते। एक समय आपने १० किमी की दौड़ में दिल्ली राज्य में दूसरा स्थान भी प्राप्त किया था।आपने रक्षा मंत्रालय के दिल्ली स्थित कार्यालयों में सांस्कृतिक संयोजक के रूप में भी काम किया और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन के अलावा अंतर मंत्रालयी नाट्य - प्रतियोगिताओं में अभिनय और निर्देशन -कार्य कर अनेक पुरस्कार भी जीते।

इस विलक्षण प्रतिभा के कारण ही आपको दो बार महानिदेशक, डीक्यूए (एन) और महानिदेशक तटरक्षक द्वारा प्रशंसा पत्र भी प्रदान किये गये।ऑल इंडिया रेडियो (प्रसार भारती) के लिए रेडियो -नाटकों और संगीत - कार्यक्रमों की रिकॉर्डिंग, निर्माण और संपादन भी किए।आप अपना सौभाग्य मानते हैं कि आपको रेडियो की प्रमुख हस्ती श्री सतेन्द्र शरत, मुख्य निर्माता नाटक, (केन्द्रीय नाटक एकांश) ऑल इंडिया रेडियो और श्री भारत रत्न भार्गव जैसे दिग्गजों के साथ रेडियो नाटक के संपादन का मौका भी मिला।प्रसिद्ध रंगमंच व्यक्तित्व और दिल्ली आर्ट थिएटर की संस्थापक शीला भाटिया द्वारा मंचित नाटको के लिए ध्वनि प्रभाव भी डिज़ाइन किए। इसके अलावा भी आप ध्वनि और प्रकाश -व्यवस्था सहित तकनीकी निर्देशन की क्षमता में अन्य रंगमंच नाट्य-समूहों के साथ सक्रिय रूप से जुड़े रहे।स्वयं के नाट्य-समूह "सार्थक" के कुछ नाटकों में अभिनय और निर्देशन भी किया है।

आगामी नव वर्ष के नव स्तम्भ कला- चिंतन में आपके इस विलक्षण व्यक्तित्व और कृतित्व के इन्ही बहु क्षेत्रीय अनुभवों, सृजन- कार्य , अध्ययन, शोधों एवं नवीन सोच के साथ महत्वपूर्ण दिशा - निर्देश का लाभ जिज्ञासु सुधि पाठक उठा पाएंगे !

शास्त्रीय संगीत के गायक , गायकी एवं घरानों पर केंद्रित आगामी विशेषांक में आपके स्तम्भ' कला- चिंतन 'का विषय अत्यंत महत्वपूर्ण एवं रोचकता लिए हुए समसामयिक एवं ज्वलन्त होगा ,जिसका शीर्षक होगा "भारतीय शास्त्रीय संगीत की आत्मा 'घराना' : लुप्त होती परम्परा की चुनौतियाँ"

आगामी स्तंभों में भी कला-संसार के उन महत्वपूर्ण छुए- अनछुए पहलुओं का वैचारिक धरातल पर खुली दृष्टि से अध्ययन कर पाएंगे, जिसमें ललित कलाओं की विविध विशिष्ट विधाओं, उसके साधकों की प्रतिभा-साधना और उनकी प्रस्तुतियों के वैशिष्ट्य, समसामयिक कला-संदर्भों, वर्तमान कला-परिदृश्य, लुप्तप्राय कलाओं, परम्पराओं के साथ नवीन प्रयोगों एवं संभावनाओं पर सार्थक चिंतन के साथ उस पर गंभीर दृष्टि एवं उसकी वैज्ञानिकता तक पाठक पहुँच पाएंगे, जिससे वे कलाओं के वास्तविक मर्म को समझ पाएंगे। सुस्वागत।

भँवरलाल श्रीवास
प्रधान संपादक, कला समय, भोपाल

## कला समय संस्था द्वारा संस्कृति पर्व 8 एवं 9 के प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन सम्पन्न
## ( सहयोग : संस्कृति संचालनालय, मध्यप्रदेश शासन )

### संस्कृति पर्व-8
**विषयः बचपन**

22-23 सितम्बर 2025

स्थान- मोहनिया सभागार गाँधी भवन, पॉलिटेक्निक कॉलेज चौराहा, भोपाल

### संस्कृति पर्व-9
**विषयः साहित्य का भक्तिकाल और सामाजिक जागरण**

30 सितम्बर 2025

स्थान- सरदार वल्लभ भाई पटेल, पॉलिटेक्निक कॉलेज का सभागार, भोपाल

**आयोजक : कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाजसेवा समिति, भोपाल ( म.प्र. )**

कला समय KALA SAMAY Magazine Post-1843566884/2025-28 अक्टूबर-नवम्बर 2025 ● आवरण सहित 100 पृष्ठ RNI. No. MPHIN/2017/73838

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास